B.A. Political Science (DDE)

Semester –III

Paper Code – BA3006-III

INDIAN GOVERNMENT & POLITICS – I

भारतीय सरकार और राजनीति – I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)

NAAC 'A^{+}' Grade Accredited University

Copyright © 2003, 2020; Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year: 2021

Semester-III

Syllab- Book Mapping Table

भारतीय सरकार और राजनीति–1

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	भारतीय संविधान का निर्माण	4–72
	भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय संविधान के स्त्रोत भारतीय संविधान की विशेषताएँ संविधान की प्रस्तावना मौलिक अधिकार मौलिक कर्तव्य राज्य–नीति के निर्देशक तत्व	
इकाई–2	केन्द्र राज्य संबंध	73–167
	केन्द्र राज्य संबंध उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुतरावलोकन राजनैतिक दलः राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दल	
इकाई–3	लघु व दीर्घ उत्तरीय प्रश्न भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय संविधान के स्त्रोत भारतीय संविधान की विशेषताएँ संविधान की प्रस्तावना मौलिक अधिकार मौलिक कर्तव्य राज्य–नीति के निर्देशक तत्व केन्द्र राज्य संबंध उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुतरावलोकन राजनैतिक दलः राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दल	168–176

इकाई –1

भारतीय संविधान का निर्माण

1.0 इकाई का परिचय

यह पाठ्यक्रम भारत में संविधानिक सरकार और लोकतंत्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में आपको जानकारी प्रदान करता है। यह संविधान में उल्लेखित लोकतांत्रिक मूल्यों के बारें में आपको परिचित कराता है तथा नागरिकों के बीच संबंधो, राज्य की विभिन्न इकाईयों के बीच संबंधों जैसे केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकार और राज्य के विभिन्न अंगों के बारें में जानकारी प्रदान करता है। जैसा कि आप इस पाठ्यक्रम के विभिन्न अध्यायों में पढ़ेंगे, भारतीय संविधान का निर्माण स्त्रोत, विशेषताएँ, संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार इत्यादि। प्रत्येक अध्याय का परिचय दिया गया है। अध्याय के अंत में अभ्यास हेतू प्रश्न दिए गए हैं। प्रत्येक अध्याय को पढ़ने के बाद आप इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास कर सकते हैं। पाठ्यक्रम के अंत में कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ सूची भी दी गई है। आपको सलाह दी जाती है कि आप इसका इस्तेमाल करें।

1.1 इकाई का उद्देश्य

- सवैधानिक स्थानाओं के बारें में जानना।
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि को समझना।
- संविधान के अंतर्गत प्रस्तावना तथा मूल अधिकारों को जानना।
- केन्द्र– राज्य संबंधों के बारें में जानना।

1.2 भारतीय संविधान का निर्माण

1.2.1 परिचय

भारत के संविधान को 26 नवम्बर 1949 को अपनाया गया। अर्थात्, इस दिन संविधान सभा ने इसे अंतरिम रूप दिया। लेकिन यह दो महीने बाद यानि 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। हालांकि संविधान के कुछ प्रावधान जैसे नागरिकता चुनाव, अस्थायी संसद एवं अन्य संबंधित प्रावधान 26 नवंबर 1949 को ही लागू हो गए थे। दो महीने बाद अर्थात 26 जनवरी 1950 को इसे इसलिए लागू किया गया था, क्योंकि इसी दिन यानि 26 जनवरी 1930 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत की आजादी का उत्सव मनाया था। यह अध्याय भारतीय संविधान की सरंचना के महत्वपूर्ण बिन्दुओं से संबंधित है।

1.2.2 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप यह समझेंगे

- संविधान सभा के गठन के पूर्व संविधान निर्माण के चरण।
- संविधान सभा के प्रतिनिधित्व का स्वरूप।
- संविधान सभा की समस्याएं व समाधान।

1.2.3 भारतीय संविधान के विकास की प्रक्रिया

भारतीय संविधान निर्माण की माँग सर्वप्रथम कांग्रेस ने 1934 में की जिसे शिमला सम्मेलन 1945 में पुनः दोहराया गया। आखिरकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अंग्रेजी सरकार ने इस माँग को स्वीकार कर लिया और संसदीय डेलीगेशन की सिफारिश में कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया।

कैबिनेट मिशन 24 मार्च 1946 को दिल्ली पहुँचा। लार्ड पैथिक लारेंस सर स्टेफर्ड क्रिप्स और ए. बी. एलेक्जैण्डर मिशन के सदस्य थे। मिशन ने भारत को विभिन्न नेताओं से बातचीत शुरू की और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को विश्वास दिलाया कि वार्तालाप के बाद ही किसी योजना को अन्तिम रूप दिया जाएगा। परन्तु कांग्रेस अटूट भारत चाहती थी जबकि मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाने का मन बना चुकी थी। इसलिए मिशन ने अपनी ही ओर से एक योजना बनाई जिसके तहत राज्यों का संघ, संघ तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन आदि शामिल थे।

इस योजना के तहत भारत को तीन अनुभागों में बांटा गया :

अनुभाग ए			
प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	कुल
मद्रास	45	4	49
बम्बई	19	2	21
उत्तर प्रदेश	47	8	55
बिहार	31	5	36

(केंद्रीय प्रान्त) सी. पी.	16	1	17	
उड़ीसा	9	0	9	
कुल	167	20	187	
		अनुभाग–बी		
प्रान्त	सामान्य	सिक्ख	मुस्लिम	कुल
पंजाब	8	4	16	28
उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रान्त	0	0	3	3
सिंध	10	3	4	17
कुल	9	4	22	35
		अनुभाग–सी		
प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	कुल	
बंगाल	27	33	60	
आसाम	7	3	10	
कुल	34	36	70	

अनुभाग ए. में शामिल प्रान्तों में हिन्दू बहुमत, बी. में मुस्लिम बहुमत तथा सी. में पुनः हिन्दू बहूमत था।

इस योजना के अतिरिक्त मिशन ने संविधान निर्माण के लिए संविधान–सभा का प्रस्ताव भी रखा। इसके लिएः–

1. प्रत्येक प्रान्त को उसकी जनसंख्या के आधार पर संविधान–सभा में स्थान दिया जाए। लगभग 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि निर्वाचित हो।
2. संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष हो। सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा किया जाए।
3. प्रत्येक पान्त के स्थान पर उस प्रान्त की विभिन्न जातियों की जनसंख्या के आधार पर दिए जाए।
4. केवल तीन मतदाता संघ बनाए जाए :

   (अ) साधारण

   (ब) मुस्लिम

   (स) सिक्ख (केवल पंजाब में)
5. संविधान का निर्माण होने तक देश का शासन अन्तरिम सरकार द्वारा चलाया जाए।

इस प्रकार कैबिनेट मिशन की प्रस्तावित योजना के अनुरूप जुलाई 1946 में संविधान सभा का चुनाव हुआ जिसमें मुख्य मुकाबला कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग में था। कुल 232 सीटों में से 212 सीटें कांग्रेस और इसके समर्थकों ने जीती। मुस्लिम लीग को केवल 73 सीटे प्राप्त हुई।

संविधान सभा की दल–गत रूप सरंचना इस प्रकार थी :

दल	हिन्दू	टनुसूचित जाति	मुस्लिम	एंग्लो इंडियन	फारसी	पिछड़े कबीले	ईसाई	कुल
कांग्रेस	156	29	4	3	3	4	6	205
मुस्लिम			73					73
यूनियनिस्ट	1	1	1					3
कृषक प्रजा			1					1
साहिद जीरगा			1					1
अनुसूचित जाति		1						1
संघ								
सिक्ख (रिक्त					2		2	4
साम्यवादी	1							1
जमींदार	3							3
वाणिज्य एवं उधोग	2							2
कुल	163	31	80	3	6	6	292+4 सिक्ख	296

स्त्रोत : जे. आर. सिवाच : भारतीय सरकार एवं राजनीति

संविधान सभा में कांग्रेस के आधिपत्य को देखते हुए जिन्हा ने 29 जुलाई 1946 को अपनी स्वीकृति वापिस ले ली। परन्तु इसके बहिष्कार के बाद भी संविधान सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया।

पहली सभा

संविधान सभा का पहला सम्मेलन 9 सितम्बर 1946 को हुआ जिसमें कुल 296 सदस्यों ने भाग लिया। सचिदानन्द सिन्हा को सभा का अस्थाई प्रधान चुना गया 13 सितम्बर 1946 को संविधान सभा ने एक '' उद्देश्य प्रस्ताव'' पारित किया जिसमें मुख्य बातें थी :–

a) भारत में स्वतंत्र एवं सार्वभौम गणराज्य स्थापित किया गया।

b) सभी व्यक्तियों को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समानता दी जाए।

c) सभी व्यक्तियों को कोई भी व्यवसाय अपनाने, भाषण एवं लिखने, किसी भी धर्म एवं मत को अपनाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति एवं पिछड़े वर्गों के हितो की सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रयत्न होना चाहिए।

1.2.4 समितियों की नियुक्ति

उद्देश्य प्रस्ताव को पारित करने के बाद संविधान सभा ने कुछ समितियाँ नियुक्त की ताकि वे संविधान के विभिन्न पहलुओं पर गहन विचार करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

मसौदा समिति की नियुक्ति

विभिन्न समितियों की रिपोर्ट के आधार पर संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा ने बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में सात सदस्यों की मसौदा समिति का गठन किया। इस समिति ने 21 फरवरी 1948 को संविधान का पहला मसौदा प्रस्तुत किया जिसमें 243 धाराएँ और 13 सूचियाँ शामिल थी। इसे जनता की राय जानने के लिए भेजा गया। जब इस मसौदे की अत्यधिक आलोचना हुई तो मसौदा समिति ने दूसरा मसौदा तैयार किया जिसमें 315 धाराएँ और नौ सूचियाँ थी। इसे संविधान सभा के सामने 21 फरवरी 1948 को रखा गया। अन्तिम प्रारूप में 395 धाराएँ और 8 सूचिया रखी गई कुल मिलाकर संविधान सभा सत्र बुलाए जिनमें 167 दिन लगे। इस प्रकार संविधान निर्माण में 2 वर्ष ग्यारह महीने और अठारह दिन लगे।

संविधान सभा की कार्य प्रणाली

संविधान सभा ने अपना कार्य 20 से भी ज्यादा समितियों के माध्यम से किया। इनमें से ज्यादातर स्थाई समितियाँ थी। परन्तु मसौदा समिति ने संविधान निर्माण के अन्तिम क्षणो तक कार्य किया। इस समिति में ज्यादातर वकील लोग शामिल थे। संविधान सभा में विधानपालिका के समरूप कार्य प्रक्रिया अपनाई गई। सवैंधानिक प्रावधानों को एक बिल के भाग ही माना गया और तीन वाचन एवं समितियों के माध्यम से पारित किया गया। किन्तु वास्तव में निर्णय, निर्माण की शक्तियाँ कांग्रेस नेताओं में निहित थी। कांग्रेस–कार्य– समिति द्वारा ही मसौदा समिति के सभी अहम–निर्णयों को हरी झण्डी दिखाई गई।

प्रजातान्त्रिक कार्य प्रणाली

संविधान सभा ने प्रजातान्त्रिक तरीके से अपना कार्य किया। इसके सदस्यों द्वारा 7635 संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए जिनमें से 2473 पर सभा ने वाद–विवाद किया गया। इसलिए इसने 2 वर्ष 11 महीनों और 18 दिन का समय लिया जबकि अमेरिका का संविधान 4 महीनें में बनकर तैयार हो गया था। कनाड़ा में 2 वर्ष का समय लगा। वहाँ पर अधिक संशोधन प्रस्तावों की समस्या नहीं थी। भारतीय संविधान सभा में सदस्यों की अधिक संख्या और लम्बी एवं खुली बहस के परिणामस्वरूप संविधान बनाने में अधिक समय लगा। इसके निर्माण पर 64 मिलियन रूपये की लागत आई।

1.2.5 सर्वसम्मति का सिद्धांत

संविधान सभा का दृष्टिकोण सर्वसम्मति के सिद्धांत पर आधारित था। सर्वसम्मति का अर्थ है जो भी निर्णय लिए जायें वे सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से लिए जाएँ। ग्रेनविल आस्टिन का कहना है, '' सर्वसम्मति इस तथ्य को मान्यता देती है कि बहुमत का शासन यदि नैतिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण नही है तो भी राजनीतिक विवादों में राजनीतिक दृष्टि से ठीक नहीं है ; क्योंकि उनमें मानवीय भावनाएँ पड़ी होती हैं।'' (Consensus is the recognition of the fact that majority rule if not morally unjust would be politically unwise in political conflicts in which human emotions are very deeply involved.) के. जी. मशरूवाला (K.G. Mashruwala) का मत था कि '' 49 के विरूद्ध 51 के बहुमत से लिया गया निर्णय एक उपयुक्त निर्णय नहीं माना जाएगा।'' पं. जवाहरलाल

नेहरू ने संविधान सभा के सदस्यों से कहा था, '' आप जल्दबाजी न करें और जहाँ तक सम्भव हो एक राय से निर्णय करें।'' इसी भावना से प्रेरित होकर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बहस को स्थगित करके समझौते के लिए समय दिया करते थे, ताकि किसी पर जबरदस्ती कोई निर्णय न लादा जाए। संविधान निर्माता अच्छी तरह से समझते थे कि वहीं संविधान टिकाऊ हो सकता है जो सर्वसम्मति या लगभग सर्वसम्मति पर आधारित हो।

सर्वसम्मति के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए गए। प्रथम, कांग्रेस विधानमण्डल दल की बैठकों में, संविधान दल की बैठकों में संविधान की प्रत्येक धारा पर खुलकर विचार होता था। इन बैठकों में डॉ. अम्बेडकर, अय्यर और आयंगर जैसे गैर–कांग्रेसी भी सम्मलित होते थे। द्वितीय, संविधान निर्माण से संबंधित सभी महत्वपूर्ण समितियों में विभिन्न समुदायों, वर्गों तथा हितों को प्रतिनिधित्व दिया गया था। संविधान सभा की सबसे महत्वपूर्ण समिति प्रारूप समिति (Draft Committee) थी और इसके 9 सदस्यों में से केवल एक सदस्य श्री मुन्शी कांग्रेसी थे। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर थे जो कांग्रेस के कटु आलोचक थे। संविधान सभा की समिति में पहले विचार होता था और सर्वसम्मति से निर्णय लेने का प्रयास किया जाता था ताकि वह सदस्य यह न समझे कि बहुमत ने उसके सुझाव का निरादर किया। तृतीय, संविधान सभा में शक्ति के केन्द्र पं. नेहरू और पटेल अपने मतभेदों को दूर कर लेते थे तो संविधान सभा में सर्वसम्मति से निर्णय लेना आसान हो जाता था। पं. नेहरू और पटेल अपने मतभेदों को आपसी बातचीत से दूर करने का प्रयास करते थे। चौथे, सर्वसम्मति से निर्णय लेने के लिए कई बार कांग्रेस पार्टी व्हिप (whips) जारी किया करती थी। जब व्हिप जारी किया जाता था तब मतों पर नियन्त्रण होता था। आस्टिन का कहना है कि, '' संविधान की भाषा संबंधी धाराओं पर सर्वसम्मति बनाने के लिए व्हिप का सहारा लेना पड़ा था!''

एम. वी. पायली (M.V. Pylee) ने लिखा है, '' संविधान सभा में वाद–विवाद को पूरा प्रोत्साहन मिला, आलोचना के प्रति सहनशीलता प्रकट की गई, लम्बे वाद–विवाद के प्रति असन्तोष नहीं दिखाया गया, अपने विचार दूसरों पर लादने एवं शीघ्रता से कार्य समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। यह एक पूर्ण लोकतान्त्रिक प्रक्रिया थी, जिस पर भारतीय लोग गर्व कर सकते हैं।'' ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार तीन तत्त्वों ने सर्वसम्मति निर्णय लेने में सहायता प्रदान की,– एकता का वातावरण, आदर्शवाद का वातावरण और राष्ट्रीय उद्देश्य का वातावरण।

संविधान सभा में सर्वसम्मति से निर्णय लिए जाने के मुख्य उदाहरण हैं– संघीय व्यवस्था, भाषायी प्रावधान और अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यवस्थाएँ आदि।

1. संघीय व्यवस्था : संविधान सभा ने भारत की संघीय व्यवस्था पर फरवरी, 1974 में विचार प्रारम्भ किया और नवम्बर, के प्रतिनिधियों और प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधिों को सन्तुष्ट किया जा सके। ऐसी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया कि न तो कोई प्रान्त संघ से अलग हो सके और न ही संघ को बनाएँ रखने के लिए दमन शक्ति का प्रयोग करना पड़े। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ' संघीय शक्ति समिति' (Union Powers Committee) तथा प्रान्तीय संविधान समिति में प्रान्तों के महत्वपूर्ण नेताओं (मिन्तर, वी. टी. कृष्णामाचारी और रामास्वामी मुदालियर) को सम्मलित किया गया था। संघीय प्रारूप समिति, संघीय शक्ति समिति, संघीय कैबिनेट के सदस्य, प्रान्तीय मुख्यमंत्रियों तथा शिक्षा और वित्तमन्त्रियों के बीच बैठकें होती रहती थी। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संघीय व्यवस्था पर सर्वसम्मति होने का महत्वपूर्ण कारण भारत का विभाजन था। भारत के विभाजन के बाद शक्तिशाली केन्द्र के लिए लगभग सर्वसम्मति थी और इसलिए संघीय व्यवस्था के साथ शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था सर्वसम्मति से की जा सकी।

2. भाषा से संबंधित प्रावधान : भाषा से संबंधित प्रावधान भी सर्वसम्मति से निर्णय के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। भाषा की समस्या का ऐसा हल ढूँढने का प्रयास किया गया, जिसे सभी सामान्य रूप से स्वीकार कर ले और यह प्रयास तीन वर्षों तक किया गया। संविधान सभा की अन्तिम बैठक के प्रारम्भ में सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि वह भाषायी प्रावधानों को मतदान के लिए नहीं रखेंगे क्योंकि यदि कोई निर्णय समस्त देश को स्वीकार न हुआ तो उसको लागू करना कठिन होगा। लम्बे वाद–विवाद के बाद भाषा की समस्या पर निर्णय लिए गए।

3. अल्प संख्यकों से संबंधित प्रावधान : अल्पसख्यंकों की समस्याओं को हल करने के लिए लम्बे वाद–विवाद के बाद सर्वसम्मति से निर्णय लिए।

4. प्रस्तावना : संविधान सभा ने प्रस्तावना और उद्देश्य–प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

5. स्ंसद से संबंधित प्रावधान : संसद के संगठन, कार्यों एवं शक्तियों पर खुले रूप से विचार किया गया और अन्त में सर्वसम्मति से निर्णय लिए गए।

6. समायोजन का सिद्धांत (Principle of Accomodation) : आस्टिन के अनुसार भारत के संविधान निर्माण में मौलिक योगदान समायोजन का सिद्धांत है। ग्रेनविल आस्टिन ने समायोजन की परिभाषा इस प्रकार दी है : ' समायोजन दो विरोधी धारणाओं में समझौता व सामंजस्य करने की योग्यता और तत्त्वों को परिवर्तित किए बिना उसको संचालित करना है, समायोजन ऐसे दो सिद्धांतों का मेल है। जो गैर– भारतीयों को विशेष रूप से यूरोपीय और अमेरीकी पर्यवेक्षकों को विरोधी दिखाई देते हैं।''

(Accomodation is the ability to reconcile, to harmonise and to make work without changing their content, apparently incompatible concepts, at least concepts that appear conflicting to the non-indian and specially to European or American observer.) वास्तव में संविधान सभा के सदस्यों ने व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए समायोजन के सिद्धांतों को अपनाया। समायोजन के सिद्धांत के कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार है :

1. संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था के बीच समन्वय : साधारणतया संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था को परस्पर विरोधी माना जाता है। एक अमरीकी या इंग्लिश संविधानवेता यह कहेगा कि या तो एकात्मक शासन प्रणाली को अपनाया जा सकता है या फिर संघात्मक शासन प्रणाली को। इंगलैंड में एकात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है, जबकि अमरीका में संघात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है। परन्तु भारतीय संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। हमारे संविधान निर्माताओं ने संघात्मक व्यवस्था के साथ–साथ केन्द्र को इतना शक्तिशाली बनाया है, ताकि किसी भी स्थिति का सामना किया जा सके।

2. गणतंत्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्रमण्डल की सदस्यता : 1947 ई. तक यही समझा जाता था कि गणतन्त्रीय राज्य राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं बन सकता, क्योंकि गणतन्त्रीय व्यवस्था और राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को परस्पर विरोधी माना जाता था। भारतीय संविधान सभा ने 1946 ई. में निर्णय लिया कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य होगा। भारत के कहने पर ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भी स्वीकार की। संविधान सभा में, बी. एन. राव ने कहा था, '' राष्ट्रमण्डल की धारणा का स्पष्टतया विकास होता जा रहा है और यह अब इस स्तर पर पहुँच चुका है जिसमें गणतन्त्रात्मक संविधान वाले राज्य भी अपना स्थान पा सकते हैं।''

3. केन्द्रीकरण और पंचायती राज के बीच समन्वयः संविधान सभा के कुछ सदस्य पंचायती राज के समर्थक थे, जबकि कुछ शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में थे। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा कुछ अन्य पंचायती व्यवस्था को अपनाने के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि व्यस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर ग्राम पंचायती व्यवस्था को अपनाने के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि व्यस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर ग्राम पंचायतों और नगरपालिका बोर्डों की स्थापना की जाए। पंचायते और बोर्ड अपने प्रतिनिधि चुनकर उच्चतम संस्थाओं में भेजें और इस प्रकार संसद का निर्माण किया जाए। परन्तु दूसरी ओर पं. जवाहर लाल नेहरू तथा संविधान सभा के अधिकांश सदस्य शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के पक्ष में थे। अन्त में समायोजन के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए शक्तिशाली केन्द्र और पंचायती व्यवस्था के बीच समन्वय किया गया। संघ तथा प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में केन्द्रीकरण के सिद्धांत को स्वीकार किया गया और प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था का कार्य प्रान्तीय व्यवस्थापालिकाओं के क्षेत्राधिकार में रखा गया तथा दूसरी ओर राज्यनीति के निदेशक सिद्धांतों में पंचायती राज की स्थापना की बात कही गई।

4. मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानः संविधान सभा में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते थे। एक दृष्टिकोण यह था कि जितने अधिक अधिकारों का समावेश संविधान में हो सके, किया जाना चाहिए। इन अधिकारों को सीधे न्यायालयों द्वारा लागू किया जाए। परंतु दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार कुछ मौलिक अधिकारों का ही अर्थात मुख्य अधिकारों का ही संविधान में समावेश किया जाना चाहिए। इन दोनों दृष्टिकोणों पर बहुत वाद–विवाद हुआ, अन्त में समायोजन के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए बीच का मार्ग खोज लिया गया। मुआवजे की व्यवस्था में भी बहुत वाद–विवाद हुआ और इस समस्या का भी समायोजन द्वारा हल कर लिया गया।

5. राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध मेंः संविधान सभा में राष्ट्रपति के चुनाव पर बड़ा विवाद हुआ। संविधान सभा के कुछ सदस्यों का विचार था कि राष्ट्रपति का चुनाव संसद द्वारा होना चाहिए। अन्त में दोनों में समन्वय किया गया और राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचन मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमें संसद के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं।

डॉ. ओ. पी. गोयल (O.P. Goyal) के मतानुसार, संविधान सभा के सदस्यों ने समायोजन के सिद्धांत का प्रयोग उतना नहीं किया है जितना कि ग्रेनविल आस्टिन ने बताया है। जिन सिद्धांतों का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है वे हैं– समझौते (Compromise), अनुकूलन (Adaptation) और समक्षता (Confrontation) के सिद्धांत। संविधान सभा के सदस्यों में परस्पर समक्षता (Confrontation) भी थी, विशेषकर सम्पति के अधिकार पर।

6 परिवर्तन के साथ चयन की कला (The Art of Selection with Modification) : संविधान सभा का दृष्टिकोण ' परिवर्तन के साथ चयन' के सिद्धांत पर आधारित था । संविधान सभा के सदस्यों का दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर उदारवादी था। संविधान निर्माताओं का यह विचार था कि भारत के लिए एक उत्तम तथा व्यवहारिक संविधान बनाया जाए जो सुचारू ढंग से कार्य कर सके और देश की प्रगति के लिए सजीव साधन सिद्ध हो। अतः संविधान निर्माताओं ने पश्चिम का अन्धानुकरण नहीं किया, बल्कि उन्होंने उन्हीं बातो को लिया जो भारतीय स्थिति व आवश्यकताओं के अनुकूल थी। उदाहरणस्वरूप संविधान सभा ने इंग्लैंड से संसदीय शासन प्रणाली ली, परन्तु इंग्लैंड की एकात्मक व्यवस्था त्याग दिया तथा भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए

संघात्मक व्यवस्था को अपनाया जो अमेरीका के संविधान की देन है, पर इसके साथ ही अमरीका के संविधान की अध्यक्षात्मक प्रणाली का त्याग किया। संविधान सभा ने भविष्य को ध्यान में रखकर संविधान का निर्माण किया। संविधान की संशोधन प्रणाली ' परिवर्तन के साथ चयन' के सिद्धांत का एक सुन्दर उदाहरण है। भाषा संबंधी मामले नये राज्यों की स्थापना, राज्यों के क्षेत्रों में परिवर्तन और उनका विलय आदि संसद के हाथों में रखकर संविधान सभा ने दूरदर्शिता का परिचय दिया।

1.2.6 संविधान सभा की समस्याएँ

संविधान निर्माण के समय सभा को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो इस प्रकार हैः–

1. भारत की विशालता तथा अनेकताः संविधान के निर्माण के समय भारत की जनगणना 36 करोड़ थी। इसमें विभिन्न धर्म, जाति, संस्कृति और भाषाओं के लोग शामिल थे। ऐसे में सभी को राष्ट्रीय एकता में बाँधना कठिन कार्य था।
2. रियासतों की समस्या : 600 रियासतों के नवाब सत्ता छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और प्रजातन्त्र के विरोधी थे। उन्हें एक संघ के नीचे लाना कठिन कार्य था।
3. साम्प्रदायिकता की समस्या : आजादी से पहले यह एक प्रमुख समस्या थी जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। परन्तु संविधान निर्माण करते समय साम्प्रदायिकता जैसी समस्या के उचित समाधान के लिए प्रावधानों की जरूरत थी जिसके लिए धर्म निरपेक्ष व्यवस्था को अपनाया गया लेकिन यह समस्या आज तक बनी हुई है।
4. राजभाषा की समस्या : देश के लिए राजभाषा की समस्या पैदा हुई। बहुसख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को मान्यता दी गई परन्तु यह भी निर्णय लिया कि संक्रान्किाल में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग जारी रहेगा।

   इसके अतिरिक्त कुछ मौलिक प्रश्नों पर मतभेद सामने आए जैसे :–

   1. केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का बटँवारा।
   2. संविधान की व्याख्या करने में न्यायालय की भूमिका।
   3. नागरिकों के अधिकारों और राष्ट्रीय सुरक्षा में सामंजस्य स्थापित करना।
   4. निजी सम्पति के अधिकारों को सामाजिक न्याय से जोड़ना।
   5. सत्ता का विकेन्द्रीकरण।

संविधान निर्माण की आलोचना

संविधान निर्मात्री सभा में कुछ कमियाँ थी जैसेः–

1. यह सर्व–प्रतिनिधि संस्था नहीं थी : इसमें नियुक्त किए गए सदस्यों की संख्या अधिक थी। चुने हुए सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर हुए। जनसंख्या के करीब 28 प्रतिशत व्यक्तियों को मतदान का अधिकार था। सभी व्यक्तियों को वोट डालने का अधिकार नहीं था।
2. कांग्रेस का अधिपत्यः कुल सदस्यों में 205 कांग्रेस से सम्बन्धित थे। संविधान सभा चुनाव में भी कांग्रेस कार्य समिति के इशारे से कुछ व्यक्ति चुने गए। भारत के विभाजन के बाद कांग्रेस का अधिपत्य 82 प्रतिशत हो

गया था। सिब्बन लाल सक्सेना ने शिकायत की है कि इस अधिपत्य के कारण संविधान सभा की कार्यवाही के रूप में सूचीबद्ध किया गया हैं।

3. हिन्दुओं का अधिपत्यः संविधान सभा के 296 सदस्यों में से 163 हिन्दु थे। अन्य वर्गों का प्रतिनिधित्व नाम मात्र का ही था। इसलिए संविधान निर्माण में हिन्दुओं के हितों का ही ध्यान रखा गया।

4. वकीलो का अधिपत्यः भारत के संविधान को वकीलों के लिए स्वर्ग कहा जाता है। कारण है संविधान सभा में वकीलों का अधिपत्य। संविधान को कानूनी प्रक्रिया प्रदान की गई है। यह जनता को अपनी शिकायतों को न्यायालय में ले जाने के लिए प्रेरित करता है और वकीलों के लिए ढ़ेर सारा कार्य जुटाता है। कानूनी प्रकृति के कारण एक साधारण व्यक्ति के लिए संविधान के प्रावधानों को समझना कठिन है।

5. संविधान का बहुत बड़ा आकारः मूलभूत संविधान में 22 भाग, 395 धाराएँ तथा 8 सूचियाँ शामिल थी। इसके अतिरिक्त इनके साथ ढेर सारे उप–प्रावधान, योग्यताएँ, सीमाएँ आदि भी जुडी हुई है। संविधानिक विशेषज्ञों का मानना है कि संविधान का आकार छोटा एवं स्पष्ट होना चाहिए इसकी भाषा उस देश की आम जनता की समझ से परे नहीं होनी चाहिए।

6. संविधान निर्माण में लम्बा समयः नजीरूद्दीन अहमद ने मसौदा समिति में बोलते हुए कहा था कि समिति के टालमटोल रवैये के कारण संविधान निर्माण में काफी समय लगा है क्योंकि यह समिति दोषपूर्ण संशोधनों को भी ईमानदारी एवं हिम्मत से वापिस नहीं करवा सकी और न ही उनके विकल्प ढूंढ सकी। इसलिए काफी लम्बा समय लगा। जबकि दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में एक वर्ष, कनाड़ा के संविधान में 2 वर्ष का ही समय लगा।

7. यह स्वदेशी कम विदेशी अधिक हैः भारतीय संविधान स्वदेशी कम और विदेशी अधिक है। इसलिए इसे उधार लिया गया थैला भी कहां जाता है। परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान कर्म–योग्य है, लचीला है और इस कदर मजबूत है कि सारे देश को एक सूत्र में बाँधे रख सकता है। इसमें आवश्यकता पड़ने पर संशोधन किए जा सकते हैं अब तक इसमें 93 संशोधन हो चुके हैं।

1.2.7 निष्कर्ष

संविधान निर्माण के मुख्यतौर पर दो चरण थे। प्रथम 1857 से 1935 तथा दुसरा 1946 से 1949, ब्रिटिश राजशाही को सत्ता मिलने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के शासन के विभिन्न अधिनियम लागू किये। इनमें भारतीयों को भी विभिन्न शासन के संस्थानों के प्रतिनिधित्व दिया गया। इसका मूल मकसद था अपनी उपनिवेश हितों को पूरा करना न कि लोकतांत्रिक अधिकारों को प्रदान करना। ब्रिटिश सरकार ने अंततः भारतीयों के लिए एक संविधान सभा का गठन किया। संविधान सभा में विभिन्न उप–समितियों के सुझाव एवं निर्णय को अंतत संविधान में शामिल कर लिया गया।

1.2.8 मुख्य शब्दावली

- संविधान सभा
- संघीय
- प्रस्तावना
- केन्द्रीयकरण
- राष्ट्रमंडल

1.2.9 अभ्यास हेतू प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत के संविधान को अपनाने एवं लागू करने में क्या अंतर है?
2. भारत के संविधान को कब अपनाया गया तथा इसे कब लागू किया गया?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विकास की प्रक्रिया व समस्याओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. संविधान सभा की समितियों के कार्यों का वर्णन कीजिए।

1.2.10 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.

- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.3 भारतीय संविधान के स्त्रोत (Sources of Indian Constitution)

1.3.1 परिचय

किसी भी देश का संविधान विशुद्ध रूप से मौलिक नहीं हो सकता क्योंकि संविधान का निर्माण करते समय अन्य देशों की शासन प्रणालियाँ, विधि प्रालेखों, रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं को मध्य नजर रखा जाता है। अर्थात् भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल प्रावधानों को संविधान में शामिल कर लिया गया। इसके साथ ही संविधान निर्माताओं ने भारतीय भौगोलिक परिवेश में घटित सभी प्रकार की घटनाओं को ध्यान में रखा। अर्थात् भारतीय संविधान के विभिन्न स्त्रोत है जो कि निम्न हैः–

1.3.2 उद्देश्य

- भारतीय संविधान के स्त्रोतों के बारे में जानना।
- संविधान सभा के बाद विवादों को जानना।
- 1935 का भारत सरकार अधिनियम को समझना।

1.3.3 भारतीय संविधान के स्त्रोत–

1. 1935 का भारत सरकार अधिनियम (Govt. of India Act, 1935): 1935 का भारत सरकार अधिनियम भारतीय संविधान का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। संविधान का आकार उसकी विषय–सूची तथा भाषा पर 1935 के अधिनियम की गहरी छाप है। प्रो आइवर जैनिंग्स (Prof. Ivor Jennings) के कथानुसार, '' भारतीय संविधान पर 1935 के अधिनियम का प्रभाव इतना अधिक है कि उसकी बहुत सी धाराओं का ज्यों का त्यों ही संविधान में रख लिया गया है'' (The Constitution derives directly from the Governement of India Act, 1935 from which, in fact,many of its provisions are copied textually). तुलनात्मक दृष्टिकोण से 1935 के अधिनियम की लगभग 200 धाराओं को ज्यों का त्यों थोड़ा बहुत परिवर्तन करे संविधान में लिया गया है। वर्तमान संविधान की धारा 352, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को बाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण संकटकाल की घोषणा करने का अधिकार है, 1935 के अधिनियम की धारा 102 का ही रूप है। इसी प्रकार वर्तमान संविधान की धारा 251, जिसमें संघी तथा राज्य सरकारों के कानूनों के परस्पर विरोधी होने के विषय पर प्रकाश डाला गया है, बहुत सीमा तक 1935 के अधिनियम की 107 धारा की प्रतिलिपि है। वर्तमान संविधान की धारा , 356 जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को राज्यों में सवैंधानिक मशीनरी के फेल होने पर संकटकाल की घोषणा करने का अधिकार है, 1935 के अधिनियम की धारा 92 से मिलती है। वर्तमान संविधान में केन्द्र और राज्यों में किया गया शक्तियों के विभाजन में तीन सूचियाँ दी गई थी : संघ–सूची, राज्य–सूची तथा समवर्ती सूची। संघ सूची में 59, राज्य–सूची में 54 तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गए हैं। इसके अतिरिक्त शक्तियों के विभाजन का आधार वही है जो कि 1935 के अधिनियम के लिए अपनाया गया था। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा कुछ प्रान्तों में दो सदनों की व्यवस्था की गई थी। 1935 के अधिनियम की तरह नए संविधान में प्रान्तों के निम्न सदन को विधानसभा और उपरि सदन को विधानपरिषद् का नाम दिया गया है। इन धाराओं के अतिरिक्त अनेक ऐसी धाराएँ है जो 1935 के अधिनियम से ली गई हैं। स्पष्ट है कि 1935 के अधिनियम नए संविधान का महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

2. विदेशी संविधान (Foreign Country) : हमारे संविधान निर्माताओं का लक्ष्य एक अच्छे संविधान का निर्माण करना था, इसलिए उन्होंने बिना संकोच के विदेशी संविधानों से जो संस्थाएँ व नियम लिए उसका वर्णन इस प्रकार है।

(क) ब्रिटिश संविधान(British Constitutions): क्योंकि इंग्लैंड के साथ भारत के राजनीतिक सम्बन्ध बहुत लम्बे समय तक रहे, इसलिए स्वाभाविक था कि संविधान निर्माता ब्रिटिश शासन व्यवस्था को मुख्यतः अपना स्त्रोत बनाते। संसदीय शासन प्रणाली ब्रिटिश की देन है। भारत का राष्ट्रपति इंग्लैंड के राजा या रानी की तरह सवैंधानिक मुखिया है। भारत के मन्त्रीमण्डल की शक्तियाँ व स्थिति लगभग वही है जो ब्रिटिश मन्त्रीमण्डल की है। ब्रिटिश की तरह कानून के शासन की व्यवस्था को अपनाया गया है।

(ख) अमेरीकी संविधान (American Constitution) : अमरीकी संविधान की प्रस्तावना से भारतीय संविधान की प्रस्तावना मिलती–जुलती है। भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ, उप–राष्ट्रपति का पद इत्यादि अमरीकी संविधान से मिलते हैं।

(ग) कनाडा का संविधान (Canadian Constitution): कनाडा के संविधान का भी भारत के संविधान पर काफी प्रभाव पड़ा हैं। कनाडा के संघीय राज्य की भांति भारत को ' राज्यों का संघ' (Union of States) कहा गया है। हमारे संविधान में केन्द्र और राज्यों में शक्तियों का बटँवारा कनाड़ा के मॉडल के आधार पर किया गया है। दोनों देशों में अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र को दी गई हैं।

(घ) जर्मन संविधान (German Constitution): नए संविधान में राष्ट्रपति को जो संकटकालीन शक्तियाँ दी गई है, वे जर्मनी के वाईमर संविधान से ली गई हैं।

(ड) आयरलैंड का संविधान (Irish Constitution): आररिश संविधान से भारतीय संविधान–निर्माताओं ने राज्यनिति के निर्देशक सिद्धांतों को लिया है। राज्य सभा में कला, साहित्य, विज्ञान, सामाजिक सेवा के क्षेत्र में से प्रतिष्ठित व्यक्तियों को मनोनीत करने का विचार भी आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया।

(च) दक्षिणी अफ्रीका का संविधान (Constitution of South Africa) : संविधान में संशोधन करने की विधि तथा राज्यसभा में सदस्यों की चुनाव विधि दक्षिण अफ्रीका से ली गई है। उपलिखित संविधानों के अतिरिक्त अनेक अन्य संविधानों से भी बहुत कुछ लिया गया है।

3. 1948 का मसौदा संविधान (Draft Constitution of 1948) : भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत 1948 का मसौदा संविधान है जिसे डा. अम्बेडकर की अध्यक्षता में मसौदा समिति ने तैयार करके 21 फरवरी, 1948 को संविधान सभा के प्रधान डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को प्रस्तुत किया। इस मसौदा–संविधान में 315 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियाँ थी। इस मसौदा–संविधान पर संविधान सभा में काफी वाद–विवाद हुआ। सदस्यों द्वारा लगभग 7635 संशोधन प्रस्ताव पेश किए गए जिनमें से 2473 प्रस्तावों पर विचार हुआ और इनमें से कई प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया गया। अन्त में जो नया–संविधान तैयार किया गया उसके 395 अनुच्छेद तथा 9 अनुसूचियाँ हैं। इसमें अधिकांश अनुच्छेद मसौदा–संविधान से ही लिए गए हैं।

4. भिन्न–भिन्न समितियों की रिपोर्ट (Reports of Different Committees): संविधान सभा ने मसौदा समिति की स्थापना से पूर्व अनेक समितियों की स्थापना की थी, जिनमें मुख्य इस प्रकार थीः

(क) संघीय शक्तियों की समिति (Union Power Committee)

(ख) संघीय संवैधानिक समिति (Union Constitution Committee)

(ग) प्रान्तीय संवैधानिक सम्बन्धी समिति (Provincial Constitution Committee)

(घ) अल्पसंख्यकों तथा मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee on Minorities and Fundamentals Rights)

संघ तथा राज्यों में वित्तीय सम्बन्धों की समिति (Committee on Financial Relations between Union and States)

इन समितियों ने विचार–विमर्श के पश्चात् अपनी रिपोर्ट संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत की। उन पर वाद–विवाद के पश्चात् सदस्यो द्वारा आवश्यक संशोधन रखे गए। संविधान सभा ने इन भिन्न–भिन्न समितियों की रिपोर्टों के आधार पर ही संविधान सभा में मसौदा संविधान (Draft Constitution) प्रस्तुत करते हुए अम्बेडकर ने कहा था कि कुछ एक विषयों को छोड़कर मसौदा समिति ने संविधान सभा के निर्देशों के अनुसार ही मसौदा–संविधान तैयार किया है। हमारे संविधान के अनेक अनुच्छेदों का आधार ही ये रिपोर्ट हैं जो विभिन्न समितियों द्वारा प्रस्तुत की गई है।

5. संविधान सभा का वाद–विवाद (Debates of Constitution Assembly): संविधान सभा की विभिन्न समितियों के वाद–विवाद तथा संविधान सभा के अन्दर वाद–विवाद संविधान का एक उपयोगी स्त्रोत है तथा उच्चतम न्यायालय ने इनका उपयोग किया है। गोपालन के अभियोग में संविधान सभा की रिपोर्ट का उद्धरण दिया गया था।

6. 1950 का संविधान (Constitution of 1950): भारतीय शासन प्रणाली का पता हमें मुख्य रूप से उस संविधान या प्रलेख से लगता है जो संविधान सभा द्वारा बनाया गया था और जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ था। यह संविधान हमारी संवैधानिक व्यवस्था का मुख्य आधार है।

7. संशोधन (Amendments): भारतीय संविधान के लागू होने के बाद आज तक 84 संशोधन हो चुके हैं और इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन संशोधनों द्वारा 1950 ई. के संविधान में काफी परिवर्तन हुआ है। इसमें बहुत सी बातों की वृद्धि हुई है। प्रथम संशोधन द्वारा नागरिकों की स्वतन्त्रताओं पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जाने की व्यवस्था की गई सातवें संशोधन राज्यों को पुर्नगठन (Re-organisation) हुआ और उच्च न्यायालयों के सेवा–निवृत जजों को वकालात करने का अधिकार दिया गया (परन्तु जिस उच्च न्यायालय से सेवानिवृत हुए हों उसी में नहीं)। आठवें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों को 1960 से 1970 तक बढ़ाया गया था। 13वें संशोधन द्वारा नागालैंड (Nagaland) राज्य की व्यवस्था की गई। 15वें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालयों के जजों की पदावधि 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई। 19वें संशोधन द्वारा चुनाव सम्बन्धी अपीलों को चुनाव न्यायाधिकरण के स्थान पर उच्च न्यायालयों को भेजे जाने की व्यवस्था की गई। 21 वें संशोधन द्वारा सिन्धी भाष को भारतीय भाषाओं की सूची में जोडा गया और 22वें संशोधन द्वारा असम राज्य में एक पहाडी स्वायत्त राज्य को बनाए जाने की व्यवस्था की गई जो अन्त में 'मेघालय' (Meghalya) के नाम बन चुका है। 23 वें संशोधन के अनुसार संसद को यह अधिकार

दिया गया है कि वह संविधान के किसी भाग को, जिनमें मौलिक अधिकारों का भाग भी शामिल है, शोध सकती है। 25वें संशोधन के अनुसार राजा–महाराजाओं के प्रिवी पर्सो (Prity purses) तथा विशेषधिकारों का समाप्त किया गया है। 27वें संशोधन द्वारा संविधान में परिवर्तन भी हुआ है और बढ़ोतरी भी। इनके अध्ययन के बिना संविधान का पूर्ण अध्ययन नहीं हो सकता।

26 अप्रैल, 1975 को संविधान के 36वें संशोधन द्वारा सिक्किम को भारत का 22वां राज्य बनाया गया। 1976 में 42वां संशोधन किया गया। इस संशोधन में 59 धाराएँ हैं और इसके द्वारा संविधान में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके भारत को प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, प्रजातन्त्रीय गणराज्य घोषित किया गया है, मौलिक कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, राजनीति के निर्देशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों की अपेक्षा प्रधानता दी गई है, उच्च न्यायालयों की शक्तियों को सीमित किया गया है, इत्यादि। 43वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेदों 32A, 131A, 144A, 226A तथा 228A को हटाया गया है ताकि सर्वाच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को वहीं अधिकार पुनः दिया जा सके जो उनके पास 42वें संशोधन से पूर्व था। 44वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 1990 तक बढ़ा दी गई। 52वें संशोधन द्वारा दल–बदल की बुराई को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। 61वें संशोधन द्वारा मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है 62 वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 2000 ई. तक बढ़ा दी गई 63वें संशोधन द्वारा 59वें संवैधानिक संशोधन को रद्द किया गया है। 64वें संशोधन द्वारा राज्यों के 55 भूमि सुधार और भूमि सीमा कानूनों का संविधान की नौवी अनुसूची में शामिल किया गया। 67वें संशोधन तथा 68वें संशोधन द्वारा 6–6 महीने के लिए पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई गई। 69 वें संशोधन द्वारा संघीय क्षेत्र दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (National Capital Territory) घोषित किया गया। इस संशोधन के अन्तर्गत दिल्ली के लिए विधानसभा, मुख्यमंत्री तथा मन्त्रीपरिषद की व्यवस्था की गई है। 71वें संशोधन द्वारा नेपाली, मणिपुर तथा कोंकणी को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। 72वें संशोधन द्वारा त्रिपुरा की विधानसभा में अनुसूचित कबीलों के लिए 20 सीटे सुरक्षित रखी गई हैं। तथा 74वें संशोधनों द्वारा पंचायती राज–संस्थाओं तथा नगर–पालिकाओं संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया है। इन संस्थाओं की अवधि 5वर्ष निश्चित की गई है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटे सुरक्षित रखी गई है। 75वें संशोधन द्वारा राज्य स्तर पर (Rent Tribunal) की व्यवस्था की गई। 76वें संशोधन द्वारा तमिलनाडु में 69 प्रतिशत आरक्षण लागू करने सम्बन्धी व्यवस्था की गई। 77वें संशोधन द्वारा सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के लिए पदोन्नित के मामले में भी आरक्षण की व्यवस्था की गई। 78वें संशोधन द्वारा राज्यों के कुछ भूमि सुधार कानून संविधान की नौंवी अनुसूची में शामिल किए गए। 79वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन–जातियों के लिए संसद एवं विधानसभाओं में सन् 2010 तक आरक्षण बढ़ा दिया गया। 80वें संशोधन द्वारा केन्द्र और राज्यों में राजस्व का पुनर्वितरण किया गया। राज्यों की राजस्व की भागीदारी में वृद्धि की गई । 81वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जाति और जन–जाति के लिए आरक्षित व्यवस्था (बैकलॉग) शक्तियों को आरक्षण की पचास फीसदी सीमा के बाहर रखने की व्यवस्था की गई। 82वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों को मैडिकल तथा अभियांत्रिक अनुशासन में योग्यताप्रदायी (Qualifying) अंकों में रियायत दी गई। 83वें संशोधन का सम्बन्ध अरूणाचल प्रदेश में पंचायती राज में आरक्षित स्थानों से है। 84वें संशोधन द्वारा तीन नए राज्यों'– झारखंड, छत्तीसगढ़ तथा उत्तरांचल का निर्माण किया गया।

8. संसद अधिनियम (Acts of Parliaments): संविधान की बहुत सी बातों का पता संसद द्वारा पास किए गए विभिन्न अधिनियमों से चलता हैं। संविधान में बहुत से ऐसे अधिनियम व उपबन्ध है जिन्होंने संसद को विस्तार से बातें निश्चित करने का अधिकार दिया है। ऐसे अधिनियमो से भी संविधान की बहुत–सी बातें निश्चित हुई है। ऐसे अधिनियमों में से मुख्य नीचे दिए गए हैं:

1. निरोधक नजरबन्दी अधिनियम, 1950 (Prevemtove Detention Act, 1951)
2. 1950, 1951 का जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम (Representation of People's Act, 1950-51)
3. 1951 का वित्त आयोग का अधिनियम (Finance Commission Act, 1951)
4. 1951 का राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति चुनाव अधिनियम (Presidential and vice-Presidential Election Act, 1951)
5. भारतीय नागरिकता अधिनियम (Indian Citizen Act, 1951)
6. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, (State Reorganisation Act, 1956)
7. सर्वाच्च न्यायालय (न्यायधीश संख्या) अधिनियम, (Supreme Court (Number of Judges) Act, 1956)
8. बाम्बे पुनर्गठन अधिनियम (Bombay Reorganisation Act, 1956)
9. नागालैंड राज्य अधिनियम (State of Nagaland Act, 1962)
10. सरकारी राज्य अधिनियम (Official Languages Act, 1963)
11. पंजाब पुनर्गठन अधिनियम (The Punjab Re-organisation Act, 1966)
12. 1967 का गैर–कानूनी गतिविधियों से बचाव सम्बन्धी एक्ट (The Unlawful Activities Prevention Bill, 1967)
13. 1971 का आन्तरिक सुरक्षा स्थापित रखने सम्बन्धी एक्ट (Maintenance of Internal Security Act, 1971)
14. 1974 का विदेशी मुद्रा की रक्षा तथा स्मललिंग से बचाव सम्बन्धी एक्ट (The Conservation of the Foreign Exchange and Prevention of Smugling Activities Act)
15. 1977 का राष्ट्रपति और उप–राष्ट्रपति के चुनाव के विवादों से सम्बन्धित एक्ट (Presidential and Vice-Presidential Poll dispute Act , 1977)
16. 1979 का विशेष न्यायालयों सम्बन्धी कानून (Special Court Act,1979)
17. 1980 का राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी कानून (National Security Act, 1980)
18. 1988 धार्मिक संस्थाएँ दुरूपयोग से बचाव, (Prevention of Misuse Act, 1988)

19. 1988 लोगों के प्रतिनिधित्व एक्ट (संशोधन) (The Representation of the People's (Amendment) Act,1988)

20. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार कानून 1992 (The Government of National Capital Territory Act, 1992)

21. राज्यपाल वेतन, भत्ते और विशेषाधिकार संशोधन कानून (The Governor's Emoluments, allowances and Privileges Amendment Act 1992)

22. राष्ट्रपति और उप–राष्ट्रपति चुनाव (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1997 (Presidentail and vice presidential) (Second Amendment, Act 1992) इसके बाद भी कई अधिनियम पास किए गए।

9. न्यायिक निर्णय (Judicial Decision) : अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश ह्यूज ने कहा है,'' हम संविधान के अधीन है परन्तु संविधान वह है जो न्यायधीश कहते हैं।'' यह बात भारत में भी लागू होती है। यहाँ संविधान का विकास न्यायपालिका के कई नियमों द्वारा भी हुआ है। भारतीय न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या तथा उसकी रक्षा करने का अधिकार और उत्तरदायित्व सौंपा गया है। अब तक बहुत से मुकद्दमें में सर्वोच्च ने संविधान के बहुत से उपबन्धों की व्याख्या की है और उनका एक निश्चित अर्थ बताया है गोपालन बनाम मद्रास राज्य नामक मुकद्दमें में सर्वाच्च न्यायालय ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सीमा के बारें में निर्णय दिया है। बंगाल कम्युनिस्टी कम्पनी लिमिटेड वि☺ बनाम राज्य नामक मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि सर्वोच्च न्यायालय को अपने पहले निर्णय को रद्द करने या लागू होने से रोकने का पुरा अधिकार है। मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि मौलिक अधिकारों राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांतों पर प्राथमिकता प्राप्त है। चिन्तामन राव के मुकद्दमें में संविधान की धारा 19 में दिए गए 'उचित प्रतिबन्धों' शब्दों की व्याख्या की गई है। शायद सबसे महत्वपूर्ण निर्णय गोलकनाथ केस का था जिसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय ने यह फेसला दिया कि संसद कोई ऐसा कानून नहीं बना सकती जिसके अनुसार नागरिकों के मौलिक अधिकरों में कमी हो, परन्तु संसद ने 24वां संशोधन पास करके सर्वोच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लगाई गई सीमा को दूर कर दिया और मौलिक अधिकारों में संशोधन पास करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। 1973 ई. में केशवानन्द भारती केस में सर्वोच्च न्यायालय ने गोलक नाथ मुकद्दमें में दिए अपने निर्णय को रद्द कर दिया और यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है, पर संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। मिनर्वा मिल्स के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने 9मई, 1980 को यह निर्णय दिया कि संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति असीमित नहीं है।

10. नियम, विनियम, आदेश आदि संसद के प्रत्येक सदन को यह अधिकार है कि अपनी कार्यविधि को नियमित करने के लिए तथा कार्य चलाने के लिए स्वयं नियम बनाए। इसी प्रकार राष्ट्रपति को भी अधिकार की स्थितियों के सम्बन्ध में भी नियम बनाता है तथा वह संघीय क्षेत्रों की शान्ति तथा उत्तम प्रशासन के लिए भी नियम बनाने का अधिकार रखता है। इस प्रकार के नियम, विनियम तथा आदेश भी संविधान के स्त्रोत बन जाते हैं।

11. प्रथाएं : वैसे तो भारत का संविधान एक लिखित संविधान है और इस प्रथाओं व रीति–रिवाजों के लिए कोई सीान नहीं, परन्तु प्रथाएँ प्रत्येक देश में अपना सीान बना ही लेती है और भारतीय संविधान भी इससे अछूता नहीं रह सका है। संविधान के लागू होने से लेकर अब तक भारत में बहुत सी संवैधानिक प्रथाए प्रचलित हो गई है। वैसे तो राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और वह अपने कार्यों के िलए संघीय सरकार के प्रति ही उत्तरदायी है तथा राष्ट्रपति को हटा भी सकता है। परन्तु अब यह प्रथा चल गई है कि संघीय सरकार राज्यपाल की नियुक्ति करते समय संबंधित राज्य सरकार से परामर्श करती है और परामश22 कवह राज्यपाल को हटा भी देती है। गर्वनर उस राज्य का निवासी नहीं होना चाहिए जिस राज्य में उसकी नियुक्ति की जा रही हो। संविधान में मन्त्रीपरिषद का वर्णन किया गया है, न कि मन्त्रीमण्डल का। मन्त्रीमण्डल प्रथा पर आधारित है। 42वें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति मन्त्रीमण्डल का परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं था, परन्तु प्रथा के अनुसार 22 कवह मन्त्रीमण्डल का परामर्श मानने के लिए बाध्य है। यह भी प्रथा पर आधारित है कि राष्ट्रपति उसी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है, जिसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। 1977 ई. में लोकसभा के अध्यक्ष को दो बार सर्व–सम्मति से चुनकर एक स्वस्थ परम्परा आरम्भ की गई। 1980,1985,1989,1991,1996 और 1999 में अध्यक्ष को सर्वसम्मति से चुना गया। इन प्रथाओं के अतिरिक्त अन्य प्रथाओं का भी विकास हो चुका है।

12. संवैधानिक विशेषज्ञों के विचार : समस्त देशों में संवैधानिक विशेषज्ञों तथा लेखकों के विचारों का बहुत आदर किया जाता है। यह विचार भी संवैधानिक कानून का एक स्त्रोत है। उदाहरणतः ब्रिटिश संविधान के सम्बन्ध में ब्लैकस्टोन , डायसी, जैनिंगस के विचारों को बड़ी महता दी जाती है। डायसी की प्रसिद्ध पुस्तक ' संविधान का कानून' जैनिंगस की ' कानून तथा संविधान' तथा मेय की ' पार्लियामैंटरी प्रक्टिस' का उदाहरण प्रायः दिया जाता है। विदेशी तथा भारतीय बहुत 22 कवह22खकों ने भारतीय संविधान पर महान् ग्रंथ रचे हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्ध निम्नलिखित हैंः

1. ऐलैग्जैंडरोविक्स, '' भारत का संवैधानिक विकास
2. जैंनिग्स, ' भारत के संविधान की कुछ विशेषताएँ'
3. बसु, ' भारतीय संविधान'
4. शुक्ला, भारतीय संविधान पर टिप्पणियाँ
5. ए. बी. लाल, ' भारतीय संसद'
6. डी. डी. बसु, ' भारतीय संविधान पर टिप्पणियाँ

निष्कर्ष

उपर्लिखित इन सभी बातों से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान का पूर्ण ज्ञान केवल उसी प्रलेख से नहीं हो सकता जो कि 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया था बल्कि इसके अतिरिक्त इसके और भी कई साधन हैं और वे काफी महत्वपूर्ण हैं। इन अन्य साधनों के अध्ययन के बिना भारतीय संविधान का अध्ययन पूर्ण है।

जैसे–जैसे भारतीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता गया है, वैसे ही संविधान में परिवर्तन व विकास संसदीय कानून, न्यायिक निर्णयों, प्रथाओं, संशोधनों आदि द्वारा हआ है और हो रहा है।

1.3.4 भारत का संविधान 1935 के अधिनियम की कार्बन कॉपी

भारत के संविधान ने एक उत्तम तथा व्यवहारिक संविधान बनाने के लिए संसार के प्रसिद्ध संविधानों की छानबीन की, उन्होंने विदेशी संविधानों से बहुत कुछ लिया, पर उनका अधिक झुकाव भारतीय अधिनियम, 1935 की ओर ही रहा। इस अधिनियम ने एक संघीय सरकार की व्यवस्था की थी तथा यह अधिनियम ब्रिटिश सरकार का सबसे लम्बर कठिन अधिनियम था। उसका उद्देश्य भिन्न–भिन्न संरक्षणों के अनुसार भारतीयों को शक्ति देना था। चाहे इस अधिनियम का संघीय भाग लागू न किया जा सका, केवल प्रान्तीय भाग ही लागू किया जा सका, तथापि भारतीय जनता उसकी धाराओं से परिचित थी। इसके अतिरिक्त यह 1935 का अधिनियम ही था, जो उपयोगी संशोधन के साथ 1947 से 1950 तक भारत के संविधान के रूप में प्रचलित रहा, इसलिए स्वभाविक ही था कि हमारे संविधान निर्माता 1935 के अधिनियम से प्रभावित होते।

इस सम्बन्ध में प्रायः कहा जाता है कि भारतीय संविधान पर बहुधा 1935 के अधिनियम की गहरी छाप है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से 1935 के अधिनियम की लगभग 200 धाराओं को ज्यों का त्यों थोडा बहुत परिवर्तन करने संविधान में ले लिया गया है। प्रो. आईवर जैनिग्स के शब्दानुसार, '' भारतीय संविधान पर सन् 1935 ई. के अधिनियम का प्रभाव इतना अधिक है कि इसकी बहुत–सी धाराओं को ज्यों का त्यों रख लिया गया है।'' डॉ. पंजाब राव देशमुख ने तो यहाँ तक कहा है,'' संविधान निश्चिततः 1935 का अधिनियम है, केवल इसमें व्यस्क मताधिकार जोड़ा गया है,'' इसमें संदेह नहीं कि हमारा संविधान अपनी रूपरेखा तथा भाषा में 1935 के अधिनियम के साथ बहुत मिलता–जुलता है तथा उसका ऋणी भी है।

1. वाक्य रचना सम्बन्धी समानताः 1935 के अधिनियम तथा नवीन भारतीय संविधान में वाक्य रचना सम्बन्धी समानता निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हैः

   (क) वर्तमान संविधान की 256 वीं धारा में यह कहा गया है कि प्रत्येक राज्य की कार्यकारिणी की शक्ति प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा, जिससे संसद द्वारा बनाए गए कानूनों का निश्चित रूप से पालन हो। केन्द्र कार्यकारी शक्ति को इस सम्बन्ध में, राज्य सरकारों को आवश्यक आदेश देने का अधिकार प्राप्त हो गया संविधान की इस धारा की भाषा तथा 1935 के अधिनियम की 126वीं धारा की भाषा में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता।

   (ख) नवीन संविधान की 352वीं धारा, जिनका राष्ट्रपति की संकटकालीन घोषणा से सम्बन्ध है, अपनी वाक्य रचना में 1935 के अधिनियम की 102वीं धारा से मिलती जुलती है। इसी प्रकार संविधान की धारा 251, जिसकें संघ तथा राज्य सरकारों के कानूनों के परस्पर विरोधी होने के विषय पर प्रकाश डााला गया है, बहुत सीमा तक 1935 के अधिनियम की 107 वीं धारा की प्रतिलिपि है।

   (ग) संविधान की धारा 356, जिसमें संवैधानिक मशीनरी के राज्यों में फेल हो जाने से उत्पन्न संकट का वर्णन किया गया है, अपनी वाक्य रचना में अधिनियम के अनुच्छेद 92 से मिलती जुलती हैं।

2. सिद्धांतों तथा क्रिया में एकरूपता : सिद्धांतों तथा क्रिया की दृष्टि से भी 1935 ई. के अधिनियम तथा नवीन संविधान में बहुत एकरूपता है। दोनों की तुलना करने पर पता चलता है कि नवीन संविधान में इस सम्बन्ध में अधिनियम की बहुत सी बातों को ग्रहण किया है, जिनमें से कुछेक का वर्णन इस प्रकार हैः

(क) संघीय व्यवस्थाः 1935 ई. के अधिनियम द्वारा जिस सर्व–भारतीय संघ को सीापित करने का सुझाव दिया

गया था, वह अपनी बनावट में संसार के दूसरे संघो से अलग था। भारतीय संविधान ने भी जिस संघ की सीापना की है, वह अपने प्रकार का है, इसके अतिरिक्त भारतीय संघ अपनी रूपरेखा में बहुत सीमा तक अधिनियम द्वारा प्रस्तावित संघ से मिलता जुलता है।

(ख) शक्तियों का विभाजनः 1935 के अधिनियम क्षरा शक्तियों का विभाजन किया गया था। इस सम्बन्ध में तीन विषय सूची, प्रान्तीय सूची, संघ सूची, समवर्ती सूची थे। संघ–सूची में 59, राज्य–सूची में 54 तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गए थे। नवीन संविधान में भी इसी प्रकार शक्तियों का विभाजन किया गया है तथा संघ–सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची में क्रमशः 97,66 तथा 47 विषय रखे गए है। इसके अतिरक्ति शक्तियों के विभाजन का आधार लगभग वही है जो कि 1935 के अधिनियम के लिए अपनाया गया है।

(ग)केन्द्र अधिक शक्तिशाली : 1935 के अधिनियम द्वारा संघ में केन्द्र को बहुत शक्तिशाली बनाने का आयोजन किया गया था। गर्वनर–जनरल को प्रान्तीय क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के लिए इतनी शक्ति दी गई थी 24 कवह इनके आधार पर संघात्मक सरकार को एकात्मक सरकार में बदल सकता था। नवीन संविधान में भी इसी प्रकार की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति के संकट काल की घोषणा करने पर संघीय संविधान संशोधन किए बिना एकात्मक सरकार में बदला जा सकता है।

(घ) द्विसदनीय विधानमण्डल : 1935 के अधिनियम ने केन्द्रीय तथा भारतीय प्रान्तों में दूसरे सदन का प्रतिबन्ध किया था। वर्तमान संविधान में भी संसद को द्विसदनीय बना दिया तथा राज्यसभा के रूप में उपरिसदन की सीापना की गई थी। इसी प्रकार अनुच्छेद 168 के अनुसार कई राज्यों में भी द्विसदनीय विधान सभाएँ सीापित की गई हैं।

(ड) संसदीय शासन प्रणाली : 1935 के अधिनियम में भारतीय संविधान में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है और इस व्यवस्था पर 1935 के अधिनियम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(च) 1935 के अधिनियम की भान्ति हमारे नवीन संविधान में कई प्रकार के सरंक्षण की आज्ञा दी गई है, जिनमें से कुछ निर्वाचन आयोग , लोक सेवा आयोग, परिगणित जातियों के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी अधिकारों के रूप में हैं। सर्वोच्च न्यायालयों पर नियंत्रण का अधिकार तथा केन्द्रीय सरकार की राज्य सरकारों के शासन को अपने अधिकार में लेने की व्यवस्था आदि भी भारतीय संविधान में दिए गए सरंक्षण हैं। सत्य बात यह है कि संविधान के निर्माण से पहले 1935 ई. का अधिनियम भारतवर्ष का संविधान था। नवीन संविधान की रचना करते समय इसको पूर्ण रूप से दृष्टिविगत कर देना असम्भव था, विशेषकर जबकि संविधान के निर्माता ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासकीय ढांचे को अपनाने के पक्ष में थे तथा अधिनियम द्वारा बनाए गए संविधान को वर्तमान संविधान में सीन देना बुद्धिमता थी। प्रारूप कमेटी के प्रधान डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में कहा था, '' मैं इस बात में किसी प्रकार की लज्जा अनुभव नहीं करता कि हमने नवीन संविधान रचना करते हुए 1945 के अधिनियम की बहुत सी बातों को अपनाया है। किसी अच्छी बात को अपनाते हुए हमें डरना नहीं चाहिए। दूसरे संवैधानिक सिद्धांत किसी विशेष व्यक्ति अथवा देश के एकाधिकार नहीं।

नवीन संविधान : 1935 ई. के अधिनियम का गौरवमय तथा विस्तृत रूप नहीं है : चाहे संविधान में 1935 के अधिनियम की कुछ धाराओं को अपनाया गया है फिर भी नवीन संविधान उस अधिनियम का एक गौरवपूर्ण और विस्तृत रूप नहीं भावात्मक दृष्टि से नवीन संविधान अधिनियम से बहुत भिन्न है।

1. सबसे पहले 1935 का अधिनियम एक ऐसा संविधान था, जिसे ब्रिटिश संसद ने भारतवर्ष के लिए बनाया था।

इसको भारतीयों की इच्छा के विपरीत उन पर थोप दिया गया था। इसकी वास्तविक शक्ति ब्रिटिश सरकार तथा गर्वनर जनरल तथा तथा गर्वनरों के हाथ में थी। इसके विपरीत भारत का वर्तमान संविधान स्वतंत्र राष्ट्र का संविधान है तथा इसकी सत्ता भारतीय नागरिकों के पास है। भारतीयो को अपने संविधान संविधान की रचना करना इस बात को सूचित करता है कि विदेशी राज्य समाप्त हो गया है तथा राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय अपने भाग्य के स्वयं विधाता है। अमरनन्दी के कथानुसार, '' 1935 के अधिनियम पराधीन लोगों को विदेशी शासकों द्वारा दी गई सीमित स्वशासन की रियासत थी जबकि भारतीय संविधान स्वतंत्रता राष्ट्र द्वारा अपने मामलों को नियमित करने वाला एक मौलिक कानून है।'' के सन्थानम के अनुसार, '' यद्यपि 1935 के अधिनियम की बहुत सी धाराएँ अपने शाब्दिक रूप में ली गई है, परन्तु संविधान का आधार बदल चुका है। प्रभुसत्ता ब्रिटिश संसद के हाथों से निकल कर भारतीय लोगों के पास है৷

2. नवीन संविधान में मौलिक अधिकार तथा राज्य के निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों की व्यवस्था करके संविधान ने भारतीय नागरिकों को नवीन मान दिया गया है। जबकि सरकार के निदेशक सिद्धांतों से भारत में कल्याणकारी राज्य को सवैंधानिक अधिकार दिया गया है। 1935 के अधिनियम में इस प्रकार की कोई विशेषता न थी।

3. 1935 ई. के अधिनियम के अधीन वोट का अधिकार बहुत सीमित था। तथा ब्रिटिश भारत के लगभग 14 प्रतिशत नागरिक ही चुनाव में भाग लेते थे। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम द्वारा साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली की व्यवस्था की गई थी। परिणामस्वरूप, भारतीय जनता पृथ्क–पृथक वर्गों , श्रेणियों तथा हितों में विभक्त हो गई थी, नवीन संविधान ने इस राष्ट्र विरोधी प्रणाली को समाप्त कर दिया है तथा इसके सीान व्यस्क मताधिकार की सीापना की है। अब भारत के प्रत्येक उस नागरिकों को जिसकी आयु 18 वर्ष तथा इससे अधिक है, वोट का अधिकार प्राप्त है, तथा वह सरकार बनाने में भाग ले सकता है।

4. नवीन संविधान ने भारत में ससंदीय सरकार का उचित प्रबंध किया है। केन्द्र तथा राज्यों में कार्यपालिका को विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है तथा मन्त्रीमण्डलों को शासन की वास्तविक शक्ति दी गई है। राष्ट्रपति तथा गर्वनरों के पास विशेष शक्तियाँ नहीं है। वे नाममात्र के मुखियाँ हैं। 1935 के अधिनियम में ऐसी कोई धारा न थी। केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल का, जिसको गर्वनर जनरल के शासन प्रबंध में सहायतार्थ बनाया गया था। शासन प्रबंध पर विशेष प्रभाव नहीं था और गर्वनर जनरल सवैंधानिक मुखिया होने के सीान पर अपने क्षेत्र में तानाशाह था। उसके प्रति शक्तिशाली होने के कारण कार्यपालिका का विधानपालिका के सम्मुख उत्तरदायित्व निरर्थक था। राज्य क्षेत्र में भी अधिनियम द्वारा सीापित की गई उतरदायी सरकार मूलतया त्रुटिपुर्ण थी।

5. 1935 के अधिनियम के अधीन संघीय विधानपालिका तथा राज्य विधानमंडल को संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में कोई शक्ति नहीं दी गई थी। संविधान के संशोधन का अधिकार केवल ब्रिटिश संसद को था, परन्तु नवीन संविधान के संशोधन का अधिकार भारतीय संसद को दिया गया है। कुछ विशेष धाराओं के संशोधन के लिए राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति भी लेनी आवश्यक है।

6. 1935 के अधिनियम की अपनी प्रस्ताव नहीं थी। इसमें 1919 ई. के अधिनियम न्यायालय नहीं था, परन्तु वर्तमान संविधान की अपनी बड़ी महत्वपूर्ण प्रस्तावना है।

7. 1935 के अधिनियम के अधीन भारत का संघीय न्यायालय नहीं था, क्योंकि इसके निर्णयों के वि☺ प्रिवी

कौंसिल के पास अपील की जा सकती थी, परन्तु नए संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम न्यायालय है। इसके निर्णयों के वि☺ कहीं अपील नहीं की जा सकती।

8. 1935 के अधिनियम के अधीन साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली को लागू किया गया था। ताकि विभिन्न धर्मों के लोगों में फूट डालकर शासन किया जा सके, परन्तु संविधान के अन्तर्गत संयुक्त चुनाव प्रणाली को लागू किया गया है।

1.3.5 निष्कर्ष :

उपर्युक्त वर्णन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि नवीन संविधान में 1935 के अधिनियम की बहुत सी धाराओं को अपनाया गया है, फिर भी यह अधिनियम का गौरवमय तथा विस्तृत रूप नहीं है। इसलिए डॉ. पंजाब राव देशमुख के इस कथन में, '' नवीन संविधान तथा 1935 के अधिनियम में वयस्क मताधिकार को छोड़कर कोई अन्तर नहीं,'' कोई विशेष वनज नहीं।

1.3.6 मुख्य शब्दावली

- अधिनियम
- संविधान सभा
- संशोधन
- प्रथाएँ
- द्विसदनीय

1.3.7 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत सरकार अधिनियम 1935, अन्य पूर्व अधिनियमों से किस प्रकार भिन्न था?
2. भारतीय संविधान के प्रमुख स्त्रोतों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

1.3.8 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.

- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएँ

1.4.1 परिचय

संविधान को एक सामाजिक दस्तावेज माना गया है क्योंकि इसमें देश की ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाएँ प्रतिबिंबित होती हैं। जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि यदि कोई संविधान आम जनता के जीवन, उद्देश्य, आशाएँ एवं जरूरत पर ध्यान नहीं देता तो वह खोखला हो जाता है। भारत के संविधान में न केवल सरकारी मशीनरी की स्थापना को ध्यान में रखा गया है बल्कि इसे परिवर्तन एवं विकास का यन्त्र माना गया है। इसके माध्यम से भारत में प्रजातांत्रिक, समाजवादी , धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की स्थापना की गई है ताकि न्याय, स्वतन्त्रता, समानता एवं इसके बन्धुत्व के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इसके द्वारा राज्य को नीति निर्देश दिए जाते हैं ताकि एक कल्याणकारी सरकार का स्वप्न साकार हो सकें।

1.4.2 उद्देश्य

- संविधान के अर्थ को जानना।
- संविधान की विशेषताओं को समझना।
- संविधान निर्माण की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझना।
- भारतीय संविधान में नागरिकों अधिकारों व कर्तव्य को जानना।

1.4.3 संविधान का अर्थ व विशेषताएँ

साधारण शब्दों में संविधान का अर्थ 'सीमित सरकार' से है अर्थात् सरकार पर कुछ विशेष प्रतिबन्ध होते हैं। संविधान वैधानिक नियमों, रीति रिवाजों और प्रथाओं का दस्तावेज है जिसकी परिधि में सरकार कार्य करती है।

संविधान की विशेषताएँ

संविधान की विशेषताओं का विषय अति महत्वपूर्ण पहलू माना गया है। क्योंकि इसका अध्ययन करने के पश्चात् किसी भी देश के राष्ट्रीय उद्देश्यों , कार्यों एवं कार्यक्रमों , परियोजनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सरंचना, सरकार की विचारधारा, प्राथमिकताएँ, कार्य प्रक्रिया और कार्य उपायों का पता चलता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक एवं प्रशासनिक स्वरूप तथा संस्कृति का ज्ञान भी मिल जाता है।

सुभाष कश्यप ने कहा है कि भारत का संविधान एक व्यापक दस्तावेज है, वह कई तरीकों से एक अद्भूत वस्तु है और इसे किसी विशेष मॉडल में फिट नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसमें :–

1. कठोरता एवं लचीलापन दोनों पाए जाते हैं।
2. यह संघात्मक एवं सकात्मक तत्वों का मिश्रण है।
3. इसमें संसदीय एवं अध्यक्षात्मक व्यवस्थाओं के तत्व विराजमान हैं।
4. यह संसदीय सम्प्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता में सामंजस्य स्थापित करता है।

एम. वी. पायली ने संविधान की निम्न विशेषताएँ बताई हैः–

1. लोकप्रियता सम्प्रभुता
2. मौलिक अधिकार
3. राज्य नीति निर्देशक सिद्धांत
4. समाजवाद
5. धर्मनिरपेक्ष
6. न्यायिक स्वतन्त्रता
7. संघात्मक
8. मंत्रिमंडलीय सरकार

विभिन्न विचारकों के विश्लेषण के बाद संविधान की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार दिया जा सकता है :–

(i) विश्व में लम्बा संविधान

भारतीय संविधान की अदभुत विशेषता यह है कि यह सबसे लम्बा संविधान है 1950 में इसके लागू करने के समय इसमें 8 सूचियाँ और 395 धाराएँ थी। 2003 में हमारे संविधान में 12 सूचियाँ हो गई हैं। जबकि अमेरीका के संविधान में मूलतः 7 धाराएँ, आस्ट्रेलिया में 12 धाराएँ हैं।

1. इसमें विभिन्न वर्गों के लिए विशेष प्रावधान रखे गए हैं जैसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति, पिछडा वर्ग, इसाई, एंग्लों– इण्डियन, भाषा वर्ग आदि।
2. इसमें नागरिकों के मौलिक अधिकारों और उन पर भी लगी सीमाओं आदि का विस्ता से वर्णन किया गया है।
3. इसमें संघीय सरकार उवं राज्यों के बीच वैधानिक , प्रशासकीय और वितीय शक्तियों के विभाजन का विस्तार से वर्णन किया गया है।
4. उत्तरी–पूर्वी राज्यों के लिए संविधान में विशेष प्रावधान रखे गए हैं।
5. इसमें राज्य नीति निर्देशक तत्व और मौलिक कर्तव्यों पर अलग–अलग अध्याय जोडे गए हैं।
6. इसमें आपातकालीन शक्तियों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है, आदि :

(ii) कठोरता और लचीलेपन में सन्तुलन : संविधान का स्वरूप संघात्मक होने के कारण इसे कठोर होना पड़ता है। परन्तु यह बात भी सत्य है कि अधिक कठोरता इसके अस्तित्व के लिए खतरनाक हो सकती है। इसलिए भारतीय संविधान में कठोर और लचीले तत्व विराजमान हैं। इंग्लैंड का संविधान सबसे लचीला संविधान माना जाता है। भारत का संविधान कठोर संविधान इसलिए है कि धारा 368 के तहत इसके कुछ प्रावधानों को संशोधित करने के लिए केन्द्र तथा राज्यों की संयुक्त मंजूरी चाहिए। जैसे राष्ट्रपति का चुनाव, सुप्रीम कोर्ट, केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का बटँवारा आदि। इन सभी विषयों के लिए संसद के प्रत्येक सदन के हाजिर सदस्यों का बहुत या कुल सदस्यों का स्पष्ट बहुमत चाहिए। इसके साथ ही आधे से अधिक राज्यों का अनुमोदन होना भी जरूरी है। भारत का संविधान

लचीला इसलिए है कि इसके कई प्रावधानों को संशोधित करने के लिए सामान्य वैधानिक प्रक्रिया अपनाई जाती है। उदाहरणतया, राज्यों का पुनर्गठन , नए राज्यों का गठन, विधानपालिका के ऊपरी सदन को समाप्त करना, नागरिकता आदि।

पिछले 52 वर्षों में संविधान में 93 संशोधन इसके लचीलेपन का प्रमाण है। लेकिन साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि इसके मुलभूत ढाँचे में संशोधन नहीं किया जा सकता। जिसमें प्रजातन्त्र, संघात्मक एवं गणराज्य, धर्म निरपेक्षता, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष चुनाव आदि शामिल है।

(iii) आत्मा से सकारात्मक, स्वरूप से संघात्मक : भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गई है। इसलिए इसे संघात्मक की बजाए 'संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। डी. एन. बनर्जी ने कहा है कि '' भारत का संविधान संघात्मक होते हुए भी एकात्मकता की ओर झुका हुआ है। ऐसा देश की एकता तथा अखण्डता को बनाए रखने के लिए किया गया है।' के. सी. वीहर ने भी इसे अर्ध–संघात्मक संविधान माना है। यहाँ पर केन्द्रीय संसद राज्यों के नाम, सीमा बदल सकती हैं और उन्हें समाप्त कर सकती है। संघ को किसी दशा में भंग नहीं किया जा सकता और न ही कोई राज्य अलग संविधान की माँग कर इससे अलग हो सकता है। संकटकालीन शक्तियाँ एकात्मक व्यवस्था का प्रमाण है। राज्यों के राज्यपाल के एजेन्ट के रूप में काम करते हैं। दूसरी और संविधान में संघात्मक व्यवस्था की विशेषता विराजमान है जैसे केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का लिखित रूप में बँटवारा, केन्द्र तथा राज्यों का अलग प्रशासनिक क्षेत्राधिकार, दोनों के बीच विवाद होने की दशा में स्वतन्त्र न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है।

(iv) संसदीय सरकार की स्थापना : भारत में अमेरीका की अध्यक्षात्मक व्यवस्था की जगह इंग्लैंड की संसदीय व्यवस्था अपनाई गई है। । इसके तहत् मन्त्रीमंडल अपने कार्यकलापों के लिए संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। यदि मन्त्रीमंडल संसद का विश्वास खो देती है तो उसे सत्ता छोड़नी पड़ती है। यहाँ पर संसद की रचना में लोकसभा + राज्यसभा + राष्ट्रपति शामिल होता है। हालांकि राष्ट्रपति केवल नाम मात्र का मुखिया माना जाता है। जबकि प्रधानमंत्री और उसका मन्त्रीमंडल वास्तविक रूप से कार्यपालिका के कार्य सम्पन्न करता हैं।

(v) मौलिक अधिकार एवं राज्य नीति निर्देशक सिद्धांत : अमेरीका की भांति भारत में मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है क्योंकि किसी भी प्रजातान्त्रिक समाज में नागरिकों के पास होना आवश्यक माना गया है। इन्हें भारत का अधिकार क्षेत्र (मैगना कार्य) कहा गया है। सरकार पर प्रतिबन्ध रखने के लिए मौलिक अधिकारों को सात श्रेणियों में बाँटा गया है, जैसे : (अ) समानता का अधिकार (ब) स्वतन्त्रता का अधिकार (स) शोषण के विरूद्ध अधिकार (द) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (क) संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (ख) निजी सम्पति का अधिकार (ग) संवैधानिक उपचारों का अधिकार। परन्तु सन 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा निजी सम्पति के अधिकार को समाप्त कर दिया गया है। जो समाजवाद की ओर एक अग्रसर कदम माना गया।

परन्तु इन अधिकारों पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए गए हैं जैसे नागरिकों को दी गई स्वतन्त्रता देश की सुरक्षा और सामान्य कल्याण को निरस्त नहीं कर सकती। भाषण की स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है

कि हम दूसरों को गाली दे सकते हैं। कुल मिलाकर मौलिक अधिकार व्यक्ति के चहुँमुखी विकास के लिए अवसर प्रदान करते हें परन्तु दूसरे व्यक्ति के हितो की लागत पर नहीं।

इसी प्रकार संविधान में राज्य नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है जिन्हें आर्थिक अधिकारों का नाम भी दिया गया है क्योंकि ये आर्थिक सत्ता के केवल कुछ पूंजीपतियों के हाथों में केन्द्रीयकरण के विरूद्ध हैं। आर्थिक शक्ति का समाज के विभिन्न वर्गों में प्रसार होना चाहिए।

इन सिद्धांतों के माध्यम से सरकार एवं इसकी विभिन्न संस्थाओं को कुछ निर्देश दिए जाते हैं कि वे कानून निर्माण प्रक्रिया में इनका ध्यान रखे। इनके द्वारा प्रशासन के लिए आचार–संहिता स्थापित की जाती है। जो उन्हें अपनी मर्जी से कार्य–प्रणाली में अपनानी चाहिए। ये सिद्धांत संविधान की प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रेरणा प्रदान करते हैं।

इन सिद्धांतों में राज्य की विभिन्न क्रियाओं जैसे सामाजिक, आर्थिक, कानूनी , शैक्षणिक एवं अंतराष्ट्रीय समस्याओं को शामिल किया गया है। कुल मिलाकर ये सिद्धांत एक नए प्रजातान्त्रिक भारत की नींव रखते हैं, लोगों की न्यूनतम जरूरतों को उजागर करते हैं और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना चाहते हैं।

मुख्य निर्देशक सिद्धांतों में (क) सामान्य कार्य के लिए समान वेतन (ख) सभी नागरिकों को जीवन निर्वाह के साधनों का समान अधिकार (ग) स्वास्थ्य संचरण और शोषण से सुरक्षा (घ) अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रयास (ड) ग्राम पंचायतों की स्थापना और विकास (च) कार्यपालिका ओर न्यायपालिका का पृथ्यकरण (छ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को प्रोत्साहन आयरलैंड के संविधान से लिया गया है।

(vi) स्वतन्त्र न्यायपालिका और न्यायिक पुनर्निरीक्षण : भारत में अमेरीका के विपरीत सारे देश के लिए एकीकृत न्याय व्यवस्था की गई जिसके शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय विराजमान है। इसके निर्णय देश के समस्त न्यायालयों पर बाध्य हैं। संघात्मक व्यवस्था होने के कारण केन्द्र तथा राज्यों के बीच उत्पन्न झगड़ों का निपटारा न्यायपालिका द्वारा किया जाता है। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का सरंक्षक कहा जाता है।

देश की विधानपालिका द्वारा और प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा पारित कानूनों एवं आदेशों को उस समय असंवैधानिक घाषित किया जा सकता है यदि ये संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हों। इस प्रकार भारत की संसद इंग्लैंड की तरह सम्प्रभु नहीं है। जहाँ न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार नहीं है। स्वतन्त्र न्यायपालिका का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा करना है।

(vii) सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार : संविधान की धारा 326 के तहत बिना किसी शैक्षणिक योग्यता, लिंग–भेद सम्पति, भाषा एवं जाति के भेदभाव के बिना सभी वयस्क व्यक्तियों को मतदान का अधिकार दिया गया है। ऐसा भारत की ज्यादातर जनता का अशिक्षित एवं गरीब होने के कारण किया गया। भारत में वयस्क मताधिकार इंग्लैंड और अमेरीका से ज्यादा व्यापक है। यहाँ आम जनता को सम्प्रभु माना गया है और वे ही सत्ता का स्त्रोत है। और उन्हें सरकार के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार सौंपा गया है। अनुसूचित जाति एंव जनजातियों के लिए विधानमंडलों में स्थान आरक्षित किए गए हैं। आजादी से पहले प्रचलित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है।

(viii) धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना : 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'धर्म निरपेक्ष' शब्द जोड़ दिया गया है जिसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई धर्म–विशेष नहीं है। दूसरे शब्दों में जनता को किसी भी धम्र को अपनाने और उपासना करने की स्वतन्त्रता है धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव संविधान की धारा 15 के तहत् प्रतिबन्धित है। इसके ठीक विपरीत पाकिस्तान समेत कई अरब देशों ने अपने आप को इस्लामिक धर्म–पंथी घोषित कर दिया है। एलगजैन्डरोविज के अनुसार '' भारत एक धर्म–निरपेक्ष राज्य है जहाँ सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है।'' धार्मिक रूप से अल्पसख्यकों को अपनी इच्छानुसार शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार दिया गया है।

परन्तु यह स्पष्ट किया गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने धर्म पालन के नाम पर दूसरों के धर्म का विरोध या अनादर न करे। वर्तमान एन. डी. ए. सरकार किसी न किसी स्वरूप में हिन्दुत्व का पक्ष लेकर धर्म निरपेक्षता पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है।'' अब इसे एक राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(ix) संकटकालीन प्रावधानों की व्याख्या : संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए संविधान में कुछ शक्तियों का वर्णन किया गया है जो भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं। ये तीन प्रकार की हैं :–

(क) राष्ट्रीय आपातकाल : जब देश को युद्ध , बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह का खतरा हो तो संविधान की धारा 352 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जा सकती है।

(ख) राज्यों में संवैधानिक संकट : जब राज्यों की सवैंधानिक मशीनरी फेल हो जाए अर्थात् राज्य का प्रशासन अंसवैधानिक गतिविधियों से चलाया जाए तो धारा 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

(ग) वित्तीय आपातकाल : जब किसी राज्य में दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक संचालन के लिए वित्त संकट आ जाए तो संविधान की धारा 360 के तहत आपातकाल की घोषणा की जा सकती है।

(x) संविधान पर विदेशी प्रभाव की छाप : संविधान का निर्माण करते समय सभी श्रेष्ठ संविधानों की सहायता ली गई और उनसे लिए गए प्रावधानों की भारतीय परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार ढालने की कोशिश की गई। हमने मुख्यतया ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विटरजरलैंड, आयरलैंड एवं दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों से काफी प्रावधान उधार लिए।

संविधान का संसदीय स्वरूप और क्रियान्वयन नियम हमने ब्रिटेन के संविधान से लिए हैं। संविधान की प्रस्तावना, मूलाधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, संशोधन प्रक्रिया आदि पर अमेरीकी संविधान की छाप है राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, राष्ट्रपति के चुनाव के लिए निर्वाचक मण्डल आदि पर आयरलैंड के संविधान का प्रभाव है। कनाड़ा के संविधान का असर 'संघ' शब्द तथा अवशेष शक्तियों का केंद्र तथा राज्यों के विवादों का निपटारा करने की व्यवस्था बहुत कुछ आस्ट्रेलिया के संविधान से मिलती है। राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ जर्मन संविधान की देन हैं।

(xi) एकल नागरिकता : हमारी नागरिकता केवल भारतीय है न कि राज्य स्तर पर कोई अलग नागरिकता है। अमेरिका में दोहरी नागरिकता प्रदान की गई है। लेकिन भारत में देश की एकता व अखंडता के परिपेक्ष में एक समान–शासन व्यवस्था का निरूपण किया गया है। नागरिकता विनियमन किया गया है। नागरिकता का विनियम करने का अधिकार केवल संघीय संसद को है, राज्यों को नहीं।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त समय परिवर्तन एवं जनता की आवश्कता के अनुसार संविधान अतिरिक्त विशेषताएत्र ग्रहण कर सकता है।

1.4.4 भारतीय संविधान की आलोचना

संविधान सभा के कई सदस्यों ने इसे पश्चिम की गुलामी पसन्द नकल का नाम दिया जो कि भारतीय दशाओं के अनुकूल नहीं थी। अन्य कुछ सदस्यों ने शंका जाहिर की थी कि संविधान लागू होने के कुछ वर्षों बाद बिखर जाएगा। संविधान की आलोचना की मुख्य बातें इस प्रकार हैः

1. जैनिंग ने कहा कि हमारा संविधान काफी लम्बा एवं पेचीदा है। और अन्य देशों के लिए गए प्रावधानों को अच्छी प्रकार नहीं चुना गया है
2. 1935 के अधिनियम की फोटो कापी : अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया था कि प्रारूप समिति ने अधिकतर भाग 1935 के अधिनियम से उठाया है। और ये प्रावधान मुख्यतया प्रशासनिक व्याख्या से सम्बन्धित है।
3. वकीलों के लिए स्वर्ग : संविधान की प्रारूप समिति में वकीलों का आधिपत्य होने के कारण इसमें कानूनी–दाव पेचों को अधिक महत्व दिया गया है। यह जनता को न्यायिक प्रक्रिया की ओर धकेलता है। और मुकद्दमेबाजी को बढ़ावा देता है जिसमें वकीलों के लिए ढेर सारा कार्य उत्पन्न हो जाता है। इसकी भाषा एवं प्रक्रिया कानूनी है।
4. गैर–गाँधीवाद पर आधारित : गाँधी जी ग्राम–स्वराज चाहते थे और उनका विकास माडल कुटीर एवं घरेलु उद्योगों पर आधारित था। वे मूल ईकाई स्तर पर योजना एवं कार्यक्रमों का निर्माण चाहते थे जिनमें आम जनता की भागीदारी हो। वे पश्चिमी विचारधारा और शासन तन्त्र के पक्ष में नहीं थे। हमारे संविधान में उनके प्रावधानों को कोई स्थान नहीं दिया गया।
5. पूर्ण केन्द्रीयकरण पर आधारित : संविधान में केन्द्र को शक्तिशाली स्थान दिया गया है और राज्यों की स्थिति काफी कमजोर एवं आश्रित की रखी गई है। योजना एवं वित्तीय प्रणाली केन्द्रीयकृत है।
6. अभारतीयों पर आधारित : प्राचीन भारतीय राजनीति का चरित्रण संविधान में कहीं भी नहीं मिलता। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने इस बात ओर ध्यान दिलाया कि भारतीय प्रथाओं के स्थान पर हम अंगेजी बैंड को प्राथमिकता दे रहे हैं। जिन आदेशों पर भारतीय संविधान आधारित है वह भारतीय भावना से मेल नहीं खाते।

1.4.5 निष्कर्ष

इन आलोचनाओं के बाद भी यह कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया–अफ्रीका के आजाद हुए लगभग 150 देशों में से भारत से ही संसदीय प्रजातन्त्र सर्वाधिक सफल है। समय की आवश्यकता के अनुसार इसमें आवश्यक संशोधन किए गए हैं। बी. आर. अम्बेडकर का यह कथन सत्य है कि संविधान तो किसी देश को सरकारी तन्त्र प्रदान कर सकता है इसे प्रभावशाली तरीके से चलाना व्यक्तियों पर निर्भर करता हैं।

1.4.6 मुख्य शब्दावली

- संसदीय
- न्यायिक पुननिरिक्षण

- प्रभुसत्ता
- नागरिकता
- सामाजिक न्याय

1.4.7 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय संविधान का अर्थ से आप क्या समझते है तथा विचारकों ने भारतीय संविधान की कौन–कौन महत्वपूर्ण विशेषताएँ बताई है, वर्णन कीजिए।

1.4.8 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.

- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.5 संविधान की प्रस्तावना

1.5.1 परिचय

प्रत्येक देश के संविधान की अपनी एक प्रस्तावना होती है जिसके द्वारा संविधान निर्माण के उद्देश्य, समाज की आवश्यकताओं और सरकार की विचारधारा का पता चलता है। सी. जे. फ्रेडरिक ने कहा है कि प्रस्तावना के द्वारा जनमत प्रतिबिम्बित होता है और इसी से संविधान अपनी सत्ता को प्राप्त करता है। के. एम. मुन्शी ने प्रस्तावना को राजनीतिक जन्मपत्री का नाम दिया है। संविधान का निर्माण प्रस्ताव के साथ शुरू करना एक सर्वमान्य प्रथाप बन गई है। यहाँ तक संयुक्त राष्ट्र संघ के संविधान में भी प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं होती परन्तु जब संविधान की कोई धारा संदिगध है और उसका अर्थ स्पष्ट नहीं तो न्यायालय इसकी व्याख्या करते समय प्रस्तावना की सहायता ले सकते हैं। परन्तु केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बेरूबारि मामले में दिये गए निर्णय को उतर दिया और कहा कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है और संविधान के उपबन्धों के निर्वाचन में इसका बड़ा महत्व है।

1.5.2 उद्देश्य

- संविधान की प्रस्तावना के अर्थ को जानना
- संविधान की प्रस्तावना की प्रमुख विशेषताओं को समझना।
- संविधान के मूल उद्देश्यों की गहनता को समझना।
- संविधान के लक्ष्यों को पहचानना।
- प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के प्रवेश के कारकों का परीक्षण करना।

1.5.3 प्रस्तावना का अर्थ

इसका अर्थ प्रारम्भिक कथन से है जो किसी भी अधिनियम के मुख्य उद्देश्यों एवं जरूरतों को अभिव्यक्त करता है। सी. जे. अय्यर ने कहा है कि प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के मन की कुंजी है। कि वे क्या करना चाहते थे। भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्र गाडकर का कहना है कि प्रस्तावना संविधान के बुनियादी दर्शन का दस्तावेज है।

1.5.4 प्रस्तावना की ऐतिहासिकता

13 सितम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया जिसमें घोषणा की गई कि :–

(i) संविधान सभा भारत को सर्वप्रथम सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाना चाहती है और इसका शासन चलाने के लिए एक संविधान बनाना चाहती है

(ii) भारत एक 'संघ' होगा।

(iii) केन्द्र तथा राज्यों का कार्य–क्षेत्राधिकार परिभाषित किया जाएगा।

(iv) केन्द्र तथा राज्य अपनी शक्ति आम जनता से प्राप्त करेंगे।

(v) देश के सभी व्यक्तियों को सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक न्याय, समान स्तर, अभिव्यक्ति, धार्मिक, व्यवसाय, संघ निर्माण आदि की स्वतन्त्रता होगी।

(vi) अल्पसंख्यकों , पिछड़े एवं अखण्डता को कायम करने का प्रयास किया जाएगा।

(vii) देश की एकता एवं अखंडता को कायम करने का प्रयास किया गया।

जो 1976 में 42वें संशोधन के पश्चात् इस प्रकार पढ़ी जा सकती है:–

'' हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उनके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति , विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान करने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता सुनिशचित करने, बन्धुत्व को बढ़ाने के लिए दृढ़ संक्लप होकर अपनी इस संविधान सभा में 26 नवम्बर 1949 को इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं''।

महत्व

प्रस्तावना को संविधान की ' आत्मा' माना गया है। सर अर्नेस्ट बार्कर ने प्रस्तावना को देश की सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा का नाम दिया है।

डी. डी. बसु के अनुसार '' प्रस्तावना में संविधान के आदर्श और आकांक्षाएँ निहित हैं, संविधान सभा के सदस्य ठाकुर दास भार्गव ने प्रस्तावना की प्रंशसा करते हुए कहा है कि ' यह संविधानका सबसे मूल्यवान अंग है, संविधान की आत्मा और संविधान का रत्न है, एम. बी. पायली ने कहा है कि 'प्रस्तावना भारतीयों के दृढ़ सक्लप का प्रतीक है जिसमें न्याय, स्वतन्त्रता , समानता, बन्धुत्व के विषय प्रमुख हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट रूप से तीन बातों पर प्रकाश डालती हैं :–

1. संवैधानिक शक्ति का स्त्रोत क्या है ?
2. भारतीय शासन व्यवस्था कैसी है?
3. संविधान के उद्देश्य या लक्ष्य क्या है?

1. संवैधानिक शक्ति का स्त्रोत : प्रस्तावना इन शब्दों से आरम्भ होती है '' हम भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित तथा आत्मार्यित करते हैं।'' इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जनता ने अपनी सम्प्रभुत्ता, इच्छा को इस संविधान के माध्यम से व्यक्त किया है। मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में प्रस्तावना पर अपने विचार प्रकट करते समय ये शब्द कहे थे, '' इस प्रस्तावना में सदन के प्रत्येक सदस्य की यह इच्छा निहित है कि संविधान अपना आधार, अपनी शक्ति और अपनी प्रभुसत्ता लोगों से प्राप्त करे।''

   किन्तु केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बेरूबारी के मामले में दिये गये निर्णय को उलट दिया और यह निर्धारित किया कि कुछ आलोचकों का कहना है कि भारत के संविधान को लोगों का संविधान नहीं कह सकते। इसको न तो भारतीय जनता ने बनाया है और न ही स्वीकार किया था।

संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर ही नहीं हुआ था। और न ही ये प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने गए थे। इसके अतिरिक्त संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान को जनमत संग्रह द्वारा जनता ने स्वीकार नहीं किया था।

निसःदेंह आलोचकों के तर्कों में सच्चाई कुछ ही है, परन्तु इसे अधिक महत्व देना ठीक नहीं है। क्योंकि जिन परिस्थितियों में संविधान का निर्माण हुआ था उस समय न तो वयस्क मताधिकार था और न ही जनमत संग्रह। संविधान के बनने के दो वर्ष बाद ही संसद तथा राज्यों की विधानमण्डलों के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था। संविधान सभा के लगभग सभी सदस्य चुने गए थे। यदि जनता के इन चुने हुए प्रतिनिधियों को यह संविधान स्वीकार न होता तो वे अवश्य ही नया संविधान तैयार करते। जनता भी नए संविधान की माँग कर सकती थी, परन्तु उन्होंनें ऐसी कोई माँग नहीं की। इस प्रकार प्रस्तावना यह संकेत है कि भारत का संविधान लोगों का संविधान है, बिल्कुल सही है। संवैधानिक शक्तियों का स्त्रोत लोग हैं।

2. भारतीय शासन व्यवस्था का स्वरूप : संविधान की प्रस्तावना में हमें भारत की शासन व्यवस्था के स्वरूप का भी पता चलता है। प्रस्तावना में भारत को प्रभुत्व–सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाए जाने की घोषणा की गई हैं। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी व धर्म निरपेक्ष शब्दों को अंकित किया गया है, अतः भारतीय शासन व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

सम्प्रभु राज्य :– प्रस्तावना में भारत को सम्प्रभु राज्य घोषित किया गया है। इसका अर्थ भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है अर्थात् वह किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है। यह सम्प्रभुता भारत की जनता में निहित है।

भारत 15 अगस्त, 1947 से पहले विदेशी सत्ता के अधीन था लेकिन आज भारत को स्वतन्त्र हुए 54 वर्ष बीत गए हैं। जब से लेकर अब तक लोगों ने फिर भी कुछ सुधार किए हैं। लेकिन आज किसी भी विदेशी शक्ति को इसकी विदेश–नीति तथा गृह–नीतियों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यह ठीक है कि भारत आज भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, परन्तु इसकी सदस्यता स्वतन्त्रता पर कोई बन्धन नहीं है। वैसे राष्ट्रमण्डल स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक ऐच्छिक समुदाय हैं, जो पारस्परिक सहयोग तथा सहायता द्वारा अपनी सामान्य समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। प. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, '' भारत को क्षण के लिए भी राष्ट्रमण्डल में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। हम अपनी इच्छा से राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने हैं तथा इच्छानुसार उसे त्याग सकते हैं। कोई भी शक्ति हमें अपनी इच्छा के विपरीत उसका सदस्य बने रहने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।''

(ii) इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत प्रभुत्व सम्पन्न देश हैः 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी शब्दों को जोड़ा गया था। प्रस्तावना में समाजवादी शब्द अंकित करने से सामाजिक तथा आर्थिक तत्व दृढ हो गए हैं। समाजवाद जीवन की एक विधि है। जिसको हमारे देश ने ग्रहण किया है। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी शब्दों को जोडा गया था। प्रस्तावना में समाजवादी शब्द अंकित करने से सामाजिक तथा आर्थिक तत्व दृढ हो गए हैं। समाजवाद जीवन की एक विधि है। जिसको हमारे देश ने ग्रहण किया है। 42वें संशोधन द्वारा राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में कुछ समाजवादी सिद्धांत सम्मिलित किये हैं। उदारहण के लिए अनुच्छेद 39 (f) में यह लिखा गया है कि '' राज्य विशेष रूप से ऐसी नीति का निर्माण करें जिसके द्वारा बच्चों को स्वतन्त्रता तथा गौरव की अवस्थाओं में समग्र रूप से विकसित होने के लिए अवसर तथा सुविधाएँ प्राप्त हो सकें तथा बच्चों तथा युवकों की रक्षा हो सके।'' 39 ए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए 20 सूत्रीय कार्यक्रम अपनाया और इसे लागू करने के लिए राज्यों को कड़े निर्देश दिए गए। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक भाषण में कहा था कि '' हम एक ऐसे समाज का निर्माण करने के लिए यत्न कर रहे हैं जिसमें लोगों को राजनीतिक निर्णय करने तथा आर्थि विकास में भाग लेने में पूर्ण अवसर प्राप्त होंगे। हम चाहेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति को गणना का एक अंक नहीं बल्कि एक विशेष व्यक्तित्व समझा जाए।'' इस प्रकार गरीबों व बेरोजगारों की समस्याओं को हल करने के लिए अनेक कदम उठाए।

(iii) भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य हैः 42वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द अंकित किया गया। धर्मनिरर्पेक्ष की धारणा संविधान में '' विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता'' पदावली में निहित थी। लेकिन अब किसी भी धर्म को विशेष नहीं माना जाना चाहिए। भारत बहुधर्मी राष्ट्र है। किसी को भी धर्म मानने का अधिकार है, कोई किसी भी धर्म को मान सकते हैं और न किसी दूसरे धर्म की आलोचना कर सकता है। लेकिन राज्य धर्म में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

(iii) भारत एक प्रजातान्त्रिक राज्य :संविधान के Preamble में भारत को लोकतन्त्रीय राज्य घोषित किया गया है। इसका अभिप्राय है कि शासन शक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष के हाथों में नहीं बल्कि समस्त जनता के पास है। लोग शासन चलाने के लिए अपने प्रतिनिधियों को चुनतें है और ये प्रतिनिधि अपने कार्यों के लिए समस्त जनता के प्रति उतरदायी होते हैं। भारत के प्रत्येक नागरिक को चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय तथा जाति से सम्बन्धित क्यों न हो सके सबको समान अधिकार प्राप्त हैं।

(iv) भारत एक गणराज्य : प्रस्तावना में भारत को लोकतन्त्र के साथ–साथ गणराज्य भी घोषित किया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि लोकतन्त्र घोषित करने के बाद गणराज्य घाषित करना उचित नहीं हैं। लेकिन ये गलत है क्योंकि एक राज्य लोकतन्त्रीय तो हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह गणराज्य भी है। उदाहरणतया, इंग्लैंड और जापान प्रजातन्त्रीय राज्य तो हैं, परन्तु वे गणराज्य नहीं हैं। गणराज्य की प्रमुख विशेषता यह होती है कि राज्य का मुखिया कोई पैतृक राजा या रानी नहीं होता बल्कि जनता द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में चुना जाता है इस प्रकार भारत गणराज्य है।

न्याय

संविधान का उद्देश्य है कि भारत के सभी नागरिकों को न्याय मिले और जीवन के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक किसी भी क्षेत्र में नागरिकों के साथ अन्याय न हो। इस बहुमुखी न्याय से दो नागरिकों के जीवन का पूर्ण विकास सम्भव है और इसकी प्राप्ति लोकतन्त्रात्मक ढांचे से ही हो सकती है।

(i) आर्थिक न्याय – इससे अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने के समान अवसर प्राप्त हो तथा उसके कार्य के लिए उचित वेतन प्राप्त हो।

(ii) सामाजिक न्याय– इसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए।

(iii) राजनीतिक न्याय : समानता प्रजातन्त्र का मूल आधार है समानता के बिना स्वतन्त्रता एक धोखा है। समानता और स्वतन्त्रता एक दूसरे की पूरक हैं तथा लोकतंत्र में साथ साथ चलती हैं। सभी व्यकितयों को समान अधिकार प्राप्त हैं। धर्म, जाति, लिंग, और रंग रूप के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। सब समान हैं। अनुच्छेद 14 में सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता तथा सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 15 में राज्य किसी भी नागरिक के साथ रंग, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 16 में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 17 में छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है। अनुच्छेद 18 में शिक्षा तथा सैनिक उपाधियों को छोड़कर अन्य उपाधियाँ समाप्त कर दी गई हैं।

(iv) बन्धुत्व : भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बन्धुत्व की भावना को विकसित करने पर बल दिया गया है। साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयवाद, भाषावाद आदि सभी बुराईयों को समाप्त करना है। '' न्याय, स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर निर्मित नए राष्ट्र का उद्देश्य यह था कि सभी यह अनुभव करें वे एक धरती के बच्चें हैं, उनकी मातृभूमि एक है तथा उनका एक ही भ्रातृभाव है।

(v) व्यक्ति गौरव को स्थापित करने का विश्वास :– Preamble में व्यक्ति के गौरव को बनाए रखने की घोषणा की गई है। स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजों ने भारतीयों के गौरव को मान्यता नहीं दी थी और भारतीयों के गौरव को समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया था। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीयों में गौरव बनाए रखने के लिए प्रस्ताव मं इस बात की घोषणा की गई। क्योंकि संविधान–निर्माता अच्छी तरह इस बात को समझते थे कि बिना गौरव अनुभव किए कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए सभी व्यक्तियों को मौलिक अधिकार समान रूप से दिए गए हैं।

(vi) राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता की स्थापनाः अंग्रेजों की 'फूट डालों ओर शासन करो' की नीति के कारण भारत का विभाजन हुआ था, इसलिए संविधान निर्माता भारत की एकता को बनाए रखने के लिए बड़े इच्छुक थे, अतः संविधान की प्रस्तावना में राष्ट्र की एकता को बनाए रखने की घोषणा की गई। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत को धर्म–निरपेक्ष राज्य बनाया गया, सभी नागरिकों को भारत की नागरिकता प्रदान की गई। भारत के संविधान 18 में भारतीय भाषाओं को मान्यता दी गई । 42वें संशोधन द्वारा राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द जोड़ा गया।

1.5.5 प्रस्तावना में संशोधन

गोपालन बनाम मद्रास राज्य मामले में यह कहा गया कि प्रस्तावना जो भारत को एक प्रजातान्त्रिक संविधान प्रदान करती है, कानूनों की व्याख्या करते समय निर्देशित मान लेना चाहिए ओर धारा 21 के तहत बना कोई भी कानून यदि प्राकृति न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करता है तो उसे अवैध करार दे दिया जाए। परन्तु उच्चतम न्यायालय के जजों की बहुमत पीठ ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि धारा 21 के तहत राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द जोड़ा गया।

परन्तु गोपालन के मामले के बाद उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द बदली और खण्डपीठ के बहुमत जजों ने कहा कि प्रस्तावना को ध्यान में रखना चाहिए और धारा 368 के तहत संसद को संविधान के मौलिक ढांचे को संशोधित करने का अधिकार नहीं मिल पाया है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तावना को संविधान का अंग माना और कहा कि इसके साथ खिलवाड नहीं किया जाना चाहिए।

1.5.6 निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना सर्वोतम रूप से लिखी गई है। यह संसार के अन्य संविधानों से बेहतर है जहाँ तक आदर्शों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, इससे संविधान की आत्मा निवास करती है और

भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधने का निश्चय किया ताकि एक नए भारत का निर्माण किया जा सके। हमारे देश में न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व सर्वोपरि रहे हैं। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने प्रस्तावना को संविधान का अमूल्य भाग माना है। इस प्रकार संविधान की प्रस्तावना समानता, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक मूल्यों का स्पष्टीकरण करती है जिन्हें संविधान प्रोत्साहित करता है।

1.5.7 मुख्य शब्दावली

- सर्वैधानिक शक्ति
- धर्म निरपेक्ष
- गणराज्य
- प्रभुसता
- सामाजिक न्याय

1.5.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रस्तावना से आप क्या समझते हैं? इसके ऐतिहासिक आधार का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. धर्म निरपेक्षता, समाजवाद और अखंडता की अवधारणा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

1.5.9 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.

- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.6 मौलिक अधिकार

1.6.1 परिचय

किसी भी लोकतन्त्रीय देश का मुख्य उद्देश्य नागरिकों के व्यक्तित्व का उच्चतम विकास करना है और ऐसा करने के लिए आवश्यक हे उन्हें अधिक से अधिक अधिकार एवं सुविधाएँ दी जाएँ। लास्की ने कहा है कि किसी भी राज्य की पहचान उसके नागरिकों को दिए गए अधिकारों से की जा सकती है। क्योंकि ये मानवीय जीवन का अभिन्न अंग होते हैं। ये किसी भी देश में सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति का कारण बनते हैं। 1215 में इंग्लैंड में जनता ने राजा जॉन को विवश किया कि वे 'मैगना कार्टा' पर हस्ताक्षर करें जिससे उनकी स्वतंत्रताएँ पुनः बहाल हो सकें। इसी प्रकार फ्रांस में 1789 में व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा की गई परन्तु अमेरिका पहला राष्ट्र था जिसने सर्वप्रथम अपने संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल किया।

1.6.2 उद्देश्य

- मौलिक अधिकारों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना।
- मौलिक अधिकारों की प्रमुख विशेषताओं को जानना।
- मौलिक अधिकारों के उचित प्रतिबन्ध को समझना।
- मौलिक अधिकारों की उपयोगिता को जानना।
- मौलिक अधिकारों के महत्व को समझना।

1.6.3 भारत में अधिकारों की उत्पति

सर्वप्रथम लास्की ने अधिकारों की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है पहली बार भारतीय संविधान बिल, 1895 में अधिकारों की माँ की गई। इसके बाद 1917 और 1919 में कांग्रेस ने कई प्रस्ताव पारित किए और अंग्रेजों के समान नागरिक अधिकार एवं स्तर की माँग की गई। श्रीमती एनी बैसन्ट ने भारत के कॉमन वैल्थ बिल, 1925 के माध्यम से और मोती लाल नेहरू समिति ने अपनी रिपोर्ट, 1928 में सिफारिश की कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों को शामिल कर लिया जाएँ। परन्तु साईमन आयोग, 1930 ने इन्हें स्वीकार नहीं किया।

इसके पश्चात् कांग्रेस ने अपने संसदीय कराची सत्र, 1930 में और गांधी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में इन अधिकारों की मांग पुनः की। लेकिन संयुक्त संसदीय समिति 1934 ने इस मांग को फिर रद्द कर दिया ओर कहा कि ऐसा प्रावधान अभी किसी भी अधिनियम में विराजमान नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होते ही सभी बडे कांग्रेस नेताओं को जेल में डाल दिया गया। इसके बाद 1945 में 'सपरू रिपोर्ट' प्रकाशित हुई जिसमें सिफारिश की गई कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों को शामिल कर लिया जाए। इसके बाद संविधान सभा ने मौलिक एवं अल्प संख्यक अधिकारों के बारें में सिफारिश देने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल थे। इस समिति ने एक उपसमिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष जे0 पी0 कृपलानी थे। इस समिति द्वारा अधिकारों की सूची तैयार करते समय अमेरिका के' अधिकार पत्र' (बिल ऑफ राइटस)का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया और इसी कारण भारत के संविधान में दिए गए संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार अमेरीका के अधिकारों से काफी मिलते जुलते हैं।

1.6.4 परिभाषा

संविधान में मौलिक अधिकारों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। परन्तु यदि इसका शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो इन्हें 'मौलिक' इसलिए कहा जाता है कि इन्हें देश के मौलिक कानून अथवा संविधान में शामिल किया गया है, ये न्यायसंगत है, जिन्हें न्यायालय लागू कर सकते हैं, ये सभी नागरिकों को प्राप्त है ये मौलिक इसलिए भी हैं कि सभी सार्वजनिक सत्ताएँ :– केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकार उन्हें मानने के लिए बाध्य हैं। सुभाष कश्यप ने अपनी पुस्तक राजनीति कोष में कहा है कि इन अधिकारों को आसानी से संशोधित नहीं किया जा सकता।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में इन अधिकारों को नैसर्गिक और अप्रतिक्षेय माना है। इस मत की पुष्टि मेनका गांधी मामले में भी की गई है।

इस प्रकार मूल अधिकार वे आधारभूत अधिकार है जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक ही नहीं वरन् अपरिहार्य हैं। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास संभव नहीं है।

संविधान में मूल अधिकारों के समावेश का उद्देश्य उन मूल्यों का सरंक्षण है जो एक स्वतंत्र समाज के लिए अपरिहार्य हैं। न्यायमूर्ति सप्रू ने इन अधिकारों के उद्देश्यों की व्याख्या इस प्रकार की हैः

1. भारत में रहने वाले नागरिकों को अधिकारों की सुरक्षा और समानता प्रदान करना।
2. नगरिकों के व्यवहार, न्याय और निष्पक्षता का एक निश्चित मापदण्ड निर्धारित करना।
3. विशेषाधिकारों को समाप्त करना।

संविधान द्वारा स्वतः निर्धारण

भारत में अमेरिका की भाँति मूल अधिकारों पर निर्बन्धनों के निर्धारण का कार्य न्यायपालिका पर नहीं छोड़ा गया है बल्कि ये स्वयं संविधान में ही निहित हैं। संविधान जहाँ अधिकारों के उपयोग की बात करता हे वहीं उनके उपयोग की सीमा भी निर्धारित करता है। प्रत्येक अनुच्छेद में उन आधारों का उल्लेख किया गया है जिनमें मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं।

मूल अधिकारों के विशिष्ट लक्षण

1. ये न्याय संगत हैं।
2. ये अधिकार पूर्णतः निरपेक्ष नहीं हैं।
3. इन अधिकारों के उपयोग के सम्बन्ध में नागरिकों और विदेशियों में अन्तर किया गया है।

   जैसे कानून के समक्ष समानता, धार्मिक स्वतंत्रता आदि नागरिकों और विदेशियों के लिए समान हैं जबकि भाषण और सम्मेलन की स्वतंत्रता के साथ सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार केवल नागरिकों के लिए हैं।
4. ये निलम्बित किए जा सकते हैं।
5. इनमें संशोधन किया जा सकता है।
6. नागरिक स्वतंत्रताओं पर अधिक जोर दिया गया है।
7. ये अधिकार प्राकृतिक नहीं है।

8. डी० डी० बसु के अनुसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये व्यक्तिगत अधिकारों केवल नागरिकों के लिए हैं।

9. सीमित सरकार की स्थापना पर बल दिया गया है।

1.6.5 भारतीय संविधान में मूल अधिकार

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का वर्णन इसके तीसरे भाग में धारा 12 से 35 तक किया गया है। विभिन्न संवैधानिक संशोधनों के परिणामस्वरूप इनमें अन्य उपधाराएँ भी जोड़ी गई हैं। 44वें संशोधन द्वारा धारा 31 को निकाल दिया गया है जो निजी सम्पति के अधिकार से सम्बन्धित थी। इस प्रकार 7 की बजाए 6 मूल अधिकार बाकी बचे हैं। जो इस प्रकार हैंः–

1. समानता का अधिकार (धारा 14 से 18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 19 से 22)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (धारा 23 से 24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 25 से 28)
5. सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (धारा 29 से 30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (धारा 32)

समानता का अधिकार (14–18)

श्री निवासन के अनुसार इस अधिकार का उद्देश्य नागरिकों को राज्य द्वारा प्रशासनिक और वैधानिक क्षेत्रों में किए जाने वाले भेदभाव पूर्ण व्यवहार से सुरक्षित करना है और सामाजिक असमानता के असंस्कृत रूप को कम करना है। इस अधिकार के माध्यम से भारतीय सीमा में रह रहे सभी व्यक्तियों को कानून के सामने माना गया है। इसकी उत्पति इंग्लैंड में हुई जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति को विशेषाधिकार न देना। कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। भारत ने यह अधिकार आयरलैंड के संविधान से लिया है।

धारा 14 के क्षेत्र की व्याख्याक करते हुए भारत के उच्चतम न्यायालय में निम्न सिद्धांतों की स्थापना की गई हैः

1. समान सुरक्षा का अर्थ है कि समान परिस्थितियों में सबके साथ समान व्यवहार किया जाए और समान कानून लागू हों।
2. कानून बनाने के लिए राज्य तर्क संगत श्रेणियाँ बना सकता है।
3. कानून को चुनौती देने वाले का उतरदायित्व है कि वह प्रमाण सहित इसे साबित करे।

धारा 15 के तहत सामाजिक भेदभाव करने की मनाही की गई है। एम. बी. पायली ने कहा है कि धारा 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव की मनाही करता है परन्तु ये अधिकार धारा 14 से भिन्न केवल भारतीय नागरिकों को ही दिए गए हैं। नागरिकों की दुकानों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों एवं सैर के स्थानों जिनकी राज्य कानून द्वारा अंशतः या पूर्णतया देखभाल की जाती है, किसी भी नागरिक के प्रवेश को अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता।

परन्तु यह धारा राज्य को स्त्रियों, बच्चों, पिछड़ी हुई जातियों के लिए विशेष प्रबन्ध से नहीं रोकती। उदाहरणतया यदि सरकार बच्चों एवं स्त्रियों के लिए अलग पार्क बनाती है और उसमें पुरूषों के प्रवेश पर रोक लगाती है तो इसे अनुचित भेदभाव नहीं माना जाएगा। संविधान सभा के सदस्य के० टी० शाह इस प्रावधान के कट्टर समर्थक थे।

धारा 16 के अनुसार सरकारी नौकरियों में सभी के लिए समान अवसर होंगे परन्तु सरकार निवास सम्बन्धी शर्तें लगा सकती है। पिछड़े वर्गों के लिए स्थान आरक्षित रख सकती है।

धारा 17 में अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान रखा गया है। किसी भी व्यक्ति को अछूत समझना या व्यवहार करना कानूनी अपराध है। इसलिए 1955 में छूआछूत अपराध अधिनियम पास किया गया जिसके तहत ऐसे अपराध करने वाले व्यक्ति को छः महीने का कारावास या 50 रू० जुर्माना हो सकता है। 1976 में इसे संशोधित करके इन प्रावधानों को और कड़ा बना दिया गया है और इस अधिनियम का नाम बदलकर नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम रखा गया है। दण्ड प्राप्त व्यक्ति कोई भी चुनाव लड़ने अयोग्य माना जाता है।

धारा 18 के तहत उपाधियों का उन्मूलन कर दिया गया है ताकि जनता में कृत्रिम भेदभाव फैलाने की परिस्थितियों के ऊपर रहे।

धारा 18 (1) के अनुसार सेना या उन्मूलन या विद्या सम्बन्धी उपाधि के सिवाय और कोई खिताब राज्य प्रदान नहीं करेगा। 18 (2) के अनुसार भारत का नागरिक किसी विदेशी राज्य से खिताब प्राप्त नहीं करेगा। 18 (3) में प्रावधान है कि कोई भी विदेशी व्यक्ति जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद नियुक्त है, भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कोई उपाधि प्राप्त नहीं करेगा।

इस प्रकार धारा 18 निदेशात्मक है आदेशात्मक नहीं, क्योंकि इस की अवलेहना करने वाले व्यक्ति के खिलाफ संविधान में किसी दण्उ व्यवस्था का प्रावधान नहीं किया गया हैं। यह कार्य संसद पर छोड़ दिया गया है। भारत में दी जाने वाली उपाधियों के खिलाफ नवम्बर 1970 में संसद में एक बिल पेश किया गया जो पास नहीं हो सका। परन्तु 1977 में राष्ट्रपति के अध्यादेश द्वारा इन उपाधियों को बन्द कर दिया गया।

स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 19–22)

पायली के अनुसार स्वतंत्रता का अधिकार मौलिक अधिकारों में सर्वाच्च स्थान रखता है और उन्हें ' स्वतंत्रता के अधिकार पत्र' कहा जाता है। 19 का अनुच्छेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके तहत निम्नलिखित व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का वर्णन हैः–

1. विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
2. सभा करने की स्वतंत्रता।
3. संघ बनाने की स्वतंत्रता।
4. भ्रमण करने की स्वतंत्रता।
5. आवास की स्वतंत्रता।
6. व्यापार, व्यवसाय, पेशा करने की स्वतंत्रता।

सातवीं स्वतंत्रता जो सम्पति के अधिकार से संबंधित थी उसे 44वें संविधान द्वारा 1978 से निरस्त कर दिया गया।

परन्तु इन स्वतंत्रताओं के प्रयोग पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं, जैसे भाषण देते समय राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा, प्रभुसत्ता एवं अखण्डता, विदेशी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध आदि को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार एवं नैतिकता, न्यायालय का सम्मान आदि भी मद्देनजर रखे जाने चाहिएँ। किसी भी व्यक्ति को मानहानि एवं हिंसा को प्रोत्साहन देने की छुट नहीं दी जा सकती। किसी सभा के आयोजन में यह आवश्यक है कि यह शान्तिपूर्ण एवं निशस्त्र हो।

धारा 20 के तहत अपराध की दोष–सिद्धि के विषय में सरंक्षण दिया गया है। (1) किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तब दण्डित नहीं किया जा सकता जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाए कि उसने अपराध करते समय किसी प्रचलित कानून का उल्लंघन किया है। (2) अपराध करने वाले व्यक्ति को उतने से अधिक दण्ड नहीं दिया जाएगा जो अपराध करने के समय प्रवृत्त कानून के अधीन प्रावधान है, (3)कोई भी व्यक्ति एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दण्डित नहीं किया जा सकता। (4) किसी भी अपरा में कोई अभियुक्त स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

धारा 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन की सुरक्षा का प्रावधान है। किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण और दैनिक स्वाधीनता से वांछित नहीं किया जा सकता।

मेनका गाँधी मामला 1978 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जीवन का अर्थ है 'गौरवपूर्ण जीवन' न कि केवल 'अस्तित्व'। कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का अर्थ है कि यह तर्क संगत और उचित भी होनी चाहिए। इस मामले में अमेरिका में प्रचलित 'कानून की उचित प्रक्रिया' को भी मद्देनजर रखा गया और मेनका गाँधी के पासपोर्ट को बिना वजह जब्त करने को अवैध ठहराया गया। 1993 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस धारा में शिक्षा का अधिकार भी शामिल किया क्योंकि इसके माध्यम से गौरवपूर्ण जीवन संभव हो सकता है।

धारा 22 में बन्दीकरण तथा नजरबन्दी से बचाव की व्यवस्था की गई है। इसके अन्तर्गत बन्दी व्यक्ति को कुछ संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं और निवारक नजरबन्दी के बारे में व्यवस्था है। जैसे (1) किसी भी गिरफ्तारी के कारण ये यथाशीघ्र अवगत किए बिना बन्दी बना कर नहीं रखा जा सकता है। (2) उसे अपनी पसन्द के वकील से परामर्श करने तथा उससे अपने पक्ष की सफाई दिलवाने के अधिकार से वांछित नहीं रखा जाएगा।(3) उसे गिरफ्तारी के 24 घंटे के अन्दर नजदीक के न्यायाधीश के सामने पेश किया जाएगा।(4) उसे न्यायालय की आज्ञा के बिना 24 घंटे से अधिक हिरासत में नहीं रखा जाएगा।

परन्तु ये अधिकार उन बन्दियों पर लागू नहीं होंगे जो विदेशी शत्रु राष्ट्र के साथ मिले हुए हैं और जिन्हें निवारक नजरबन्दी के तहत गिरफ्तार किया गया है।

निवारक (निरोध) : धारा 22 जो बन्दीकरण तथा नजरबन्दी के बचाव का प्रावधान करती है वही उपधारा (4) में निवारक निरोध का प्रावधान भी प्रदान करती है इसके तहत विधानमंडल को शक्ति दी गई है कि वह राज्य की सुरक्षा के कारणों से संबंधित मामलों के लिए निवारक निरोध कानून बना सकती है। भारतीय संविधान में इसकी कोई परिभाषा नहीं दी गई है। निवारक गिरफ्तारी दण्डाात्मक गिरफ्तारी से भिन्न हैं। क्योकि इसका उद्देश्य व्यक्ति को अपराध करने से रोकना या विरूद्ध करना है और इसमें किसी भी व्यक्ति को सन्देह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता है। अमेरिका एवं इंग्लैंड में ऐसा कोई प्रावधान संविधान में शामिल नहीं किया गया है।

भारत में 1950 में निवारक निरोध अधिनियम बनाया गया। देश में अराजकतावादी तत्वों का जोर होने के कारण 1971 में राष्ट्रपति ने 'आन्तरिक सुरक्षा कानून (MISA) का अध्यादेश जारी किया। जनता सरकार ने 1979 में आवश्यक

वस्तु पूर्ति एवं काला बाजारी निरोध अध्यादेश जारी किया। इंदिरा सरकार ने 1983 में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (NSA) अध्यादेश जारी किया। बाद में टाडा कानून घोषित किया गया। अभी हाल में ही राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोर्चा सरकार ने पोटा (POTA) अधिनियम, 2002 बनाया है जिसे लेकर राज्यों में काफी मतभेद एवं विरोध है।

लेकिन निवारक निरोध कानून के अन्तर्गत विरूद्ध किए गए व्यक्ति को 44वें संविधान संशोधन, 1978 द्वारा कुछ सरंक्षण प्रदान किए गए हैं जैसेः–

1. गिरफ्तारी का कारण जानने एवं अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अधिकार।
2. एक सलाहकार बोर्ड द्वारा निवारक निरोधित व्यक्ति के मामले का पुनर्विलोकन करना।
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (23–24)

धारा 23 के तहत सभी प्रकार के बलात् श्रम और व्यक्तियों की खरीद–फरोक्त को निषिद्ध किया गया है। किसी भी व्यक्ति से उसकी इच्छानुसार कार्य करवाने की मनाही है।

धारा 24 के तहत 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को किसी भी कारखाने या खान में नौकर न रखने और किसी अन्य संकटमय नौकरी में न लगाने का प्रावधान है।

परन्तु राज्य को जनता के हितों के लिए अपने नागरिकों से आवश्क सेवा करवाने पर पाबन्दी नहीं है। राज्य सैनिक, विद्या तथा सामाजिक सेवा की व्यवस्था कर सकता है पर ऐसा करते हुए वह धर्म, मूलवंश, जाति अथवा श्रेणी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

धर्म स्वातंत्रय का अधिकार (25–28)

धारा 25 के तहत अन्तकरण तथा धर्म को अबाध रूप को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गई है। परन्तु राज्य किसी भी धर्म को मानव बलि देने की आज्ञा नहीं दे सकता। धारा 26 के तहत धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता दी गई है परन्तु ऐसा करते समय सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाएगा।

धारा 27 में किसी भी व्यक्ति को कोई ऐसा कर अदा करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता जिसको इकट्ठा करके किसी धर्म विशेष के विकास एवं संचालन हेतु व्यय किया जाए या किसी धार्मिक वर्ग विशेष के लिए खर्च किया जाए।

धारा 28 में सरकारी शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा पर रोक का प्रावधान है।

संविधान में ये सभी प्रावधान धर्मनिरपेक्ष राज्य की ओर इशारा करते हैं परन्तु विभिन्न राजनैतिक दलों और समूहों ने धर्मनिरपेक्ष शब्द की व्याख्या अपनी–अपनी सुविधानुसार की है। परन्तु भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बम्बई मामले 1994 में कहा कि : राज्य को किसी धर्म के प्रति आक्रामक नहीं होना बल्कि सभी धर्मों के प्रति तटस्थ होना है, धर्म का सरकार एवं राजनैतिक दलों द्वारा राजनैतिक प्रयोग न करना। सर्वोच्च न्यायालय ने 1995 में बाबरी मस्जिद मामले में पुनः कहा कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं इसलिए उसके लिए सभी धर्म समान है।

परन्तु नरसिम्हाराव सरकार द्वारा 'नम्र हिन्दुत्व' और वाजपेयी सरकार द्वारा 'हिन्दुत्व' या हिन्दू राष्ट्र का कार्ड चुनावों में पेश करना उचित नहीं है।

सांस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (29–30)

इसके तहत अल्पसंख्यकों को हितों के सरंक्षण तथा शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का मूल अधिकार प्रदान किया गया है।

धारा 29 के तहत अल्पसंख्यक नागरिकों को सांस्कृति एवं शैक्षणिक हितों के सरंक्षण की दो व्यवस्थाएँ हैं :– (1) भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है।(2) राज्य द्वारा घोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाले किसी भी शिक्षा संस्थान में प्रवेश में धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।

धारा 30 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में निम्न व्यवस्थाएँ करती हैः–

1. धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना और संचालन का अधिकार होगा।
2. शिक्षा संस्थाओं को सहायता देते समय सरकार किसी भी संस्था से धर्म या भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी।

1974 में सर्वोच्च न्यायालय ने गुजरात सरकार द्वारा अल्पसंख्कों के शिक्षण–संस्थाओं पर प्रतिबन्धों को नकारते हुए कहा कि इन वर्गों को शिक्षण संस्थान स्थापित एवं संचालन करने का पूरा अधिकार है। 1928 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पति का मौलिक अधिकार समाप्त किए जाने पर धारा 30 में भी संशोधन किया गया ताकि अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की सम्पति को अनिवार्य रूप लेने के लिए कानून का निर्माण करते समय राज्य इस बात का ध्यान रखेगा कि इससे अल्पसंख्यकों के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (32–35)

यह भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण अंग है। अम्बेडकर ने इस अधिकार को संविधान की आत्मका तथा ह्रदय बताया है और इसके बिना संविधान शून्य हो जाएगा। यह अधिकार मौलिक अधिकारों के हनन के मामले में धारा 226 के तहत राज्य के उच्चतम न्यायालय में इसे चुनौती दे सकता है। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न उपचारों का प्रावधान किया गया हैं। जैसेः–

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका
2. परमादेश याचिका
3. प्रतिषेध याचिका
4. अधिकार–पृच्छा याचिका
5. उत्प्रेषण याचिका

(1) बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका :– इसका शाब्दिक अर्थ है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को न्यायालय में पेश करना ताकि कानूनी प्रक्रिया के हिसाब से उसके मामले का निपटारा किया जा सके। ऐसा हिरासत में लेने के 24 घंटे के अन्दर–अन्दर किया जाना चाहिए।

(2) परमादेश याचिका :– इसका अर्थ है किसी अधिकारी को कुछ करने का आदेश देना। यह आदेश उच्चतम न्यायालय

अथवा न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है। उदाहरणतया यदि किसी व्यक्ति को सभी योग्यताएँ पूरी करने पर भर्ती कर लिया गया है तो उसे नियुक्ति पत्र दिया जाना चाहिए। यदि सम्बन्धित अधिकारी ऐसा नहीं करता तो वह व्यक्ति इस याचिका के माध्यम से न्यायालय जा सकता है।

(3) प्रतिषेध याचिका :– इसका अर्थ है रोकना अथवा मनाही करना। यह याचिका उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी की जाती है कि वह अमुक मामले की कार्यवाही बन्द करे जो उसके क्षेत्राधिकार से बाहर है।

(4)अधिकार–पृच्छा याचिकाः– इसका अर्थ है अच्छी प्रकार सूचित करें। यह आदेश वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को देता है कि वह किसी अमुक अभियोग को उसे हस्तांतरित करे। ऐसे क्षेत्राधिकार की कमी और दुरूपयोग के मामले में किया जाता है।

धारा 33 सेना के सदस्यों के प्रति ओर धारा 34 मार्शल लॉ लागू होने की स्थिति में धारा 32 के अपवाद हैं। धारा 35 में संविधान के मूल्य अधिकारों वाले भाग 3 के उपबन्धों को प्रभावी करने के लिए प्रावधानों का वर्णन किया गया है।

1.6.6 मूल्याँकन

मौलिक अधिकारों ने हमारे देश में राजनैतिक और सामाजिक जनतंत्र की स्थापना की है। नागरिकों को प्रदान की गई स्वतंत्रताएँ उनके व्यक्तित्व के विकास में मील का पत्थर साबित हुई हैं। फिर भी इन अधिकारों की कुछ कारणों से आलोचना की गई हैं जैसेः–

(1) ये अधिकार आर्थिक पक्ष पर जोर नहीं देते।

(2) ये अधिकार एक हाथ से दिए गए हैं तो दूसरे हाथ से वापिस ले लिए गए हैं।

(3)निवारक निरोध की व्यवस्था से इन अधिकारों का सार समाप्त होता जा रहा है।

(4)मौलिक अधिकारों की भाषा बड़ी जटिल एवं कठिन है और यह आम नागरिकों जो कि ज्यादातर अशिक्षित है, की समझ से बाहर है।

(5)समानता का अधिकार होते हुए भी राष्ट्रपति, मन्त्रियों, विधानमंडल के सदस्यों और राजदूतों के पास विशेषाधिकार हैं।

1.6.7 निष्कर्ष

अन्त में कहा जा सकता है कि इस अधिकारों के होते हुए भी समाज में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पाए हैं। आज जाति, धर्म, लिंग के आधार पर खुले आम भेदभाव किया जाता है। महिलाओं को द्वितीय दर्जे का नागरिक माना जाता है। आजादी के 55 साल बाद भी अछूतों की हालत दयनीय है। देश की एक–तिहाई जनता गरीबी की रेखा पर बसर करती है। लगभग 2 करोड़ बच्चे बाल मजदूरी करते हैं। धार्मिक एवं जातिगत हिंसा बढ़ रही है।

इस सबका कारण है कि मौलिक अधिकारों को व्यवहार में लाने के लिए नागरिकों को शिक्षा एवं प्रशिक्षण चाहिए। धन का एकत्रण कुछ निजी हाथों में नही होने देना चाहिए। सत्ता में धनी लोग बैठे हैं जो अपने हितों को बढ़ावा देते हैं। जरूरत है 'अवसर' की जब स्वतंत्रता को वास्तविक जामा पहनाया जाए और ऐसी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संस्थाएँ स्थापित की जाएँ जो मजदूर एवं किसानों को गरीबी, अज्ञानता एवं बीमारी से लड़ने में मदद करें।

1.6.7 मुख्य शब्दावली

- समानता
- स्वतंत्रता
- संवैधानिक उपचार
- नजरबंदी
- उत्प्रेषण

1.6.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उतरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में अंकित मौलिक अधिकारों से आप क्या समझते हैं ?
2. भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों की विशेषताओं और महत्व का वर्णन कीजिए।
3. भारतीय संविधान के 42वें संविधान संशोधन के द्वारा किए गए मौलिक अधिकारों का विश्लेषणात्मक व्याख्या कीजिए।

1.6.9 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.

- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.7 मौलिक कर्तव्य

1.7.1 परिचय

अधिकार तथा कर्तव्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। लोकतंत्रीय शासन–व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर है कि नागरिक जहाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों, वहाँ वे अपने कर्तव्यों का पालन भी उतरदायित्व के साथ पूरा करें। अधिकतर लोकतंत्रीय राज्यों, जैसे ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरीका, फ्रांस आदि राज्यों के संविधानों द्वारा नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु वहँ नागरिक शत–प्रतिशत रूप से साक्षर तथा शिक्षित हैं। इस कारण वहाँ के नागरिक जहाँ अधिकारों के प्रति जागरूक हैं वहाँ उतने ही कर्तव्यपरायण भी हैं।

साम्यवादी विचारधारा के राज्यों में, जैसे पूर्व सोवियत संघ, चीन आदि के संविधानों में निश्चित रूप से नागरिकों के मौलिक अधिकारों के साथ कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है।

1.7.2 उद्देश्य

- मौलिक कर्तव्य की प्रकृति एवं उसके अर्थ को जानना।
- संविधान में मौलिक कर्तव्यों के समावेश को समझना।
- मौलिक कर्तव्यों के महत्व को जानना।

1.7.3 भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों की व्यवस्था

भारत का जो संविधान–सभा द्वारा निर्मित करके 26 जनवरी, 1950 को कार्यान्वित किया गया था, उसमें मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं था। भारत जब स्वतंत्र हुआ था उस समय देश की जनता का एक बड़ा भाग निरक्षर था उनको साक्षर बनाने का प्रयत्न जारी था। भारत जैसे नये लोकतंत्र के लिए यह आवश्यक था कि जहाँ संविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक अधिकार दिए गए हैं वहाँ नागरिकों के मौलिक कर्तव्य भी निशचित किए जाएँ। इसी उद्देश्य की पूर्ति संविधान के 42वें संशोधन द्वारा 1976 में की गई। संविधान के भाग चार में 51–A के अनुसार 10 मौलिक कर्तव्य भारतीय नागरिकों के लिए निश्चित किए गए हैं। ये मौलिक कर्तव्य इस प्रकार हैं:

- भारतीय संविधान की पालना करना तथा उसके आदर्शों , संस्थानों, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान करना।
- स्वतंत्रता संग्राम के दौर में जिन आदर्शों को अपनाकर काम लिया गया था, जिनसे प्रेरणा मिली थी, उन पर चलना।
- भारत की प्रभुत्ता, एकता और अखण्डता का समर्थन तथा सुरक्षा करना।
- देश की सुरक्षा करना तथा समय आने पर राष्ट्रीय सेवा के लिए तैयार रहना।
- धार्मिक, भाषायी और प्रादेशिक या वर्गीय विभिन्नताओं को त्याग कर भारत के सारे लोगों में मेल–मिलाप तथा बन्धुता की भावना को विकसित करना तथा स्त्रियों की प्रतिभा को हीन करने वाली प्रथाओं का त्याग करना।

- अपनी मिली–जुली संस्कृति की सम्पन्न परम्परा का सम्मान करना और उसे सुरक्षित रखना।
- वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन जैसे प्राकृतिक वातावरण को उन्नत करना और उनकी रक्षा करना तथा जीव –जन्तुओं के प्रति दया रखना।
- वैज्ञानिक प्रवृति, मानवता तथा अन्वेषण और सुधार की भावना को विकसित करना।
- सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करना और हिंसा को त्यागने का प्रण करना।

  व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्य–कलापों के क्षेत्र में कुशलता का प्रयत्न करना जिससे कि राष्ट्र उच्चतम उपलब्धियों के शिखर पर पहुँच सके।''

1.7.4 मौलिक कर्तव्यों की व्याख्या

मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख संविधान के 51–A अनुच्छेद में किया गया है। जिन दस कर्तव्यों का वर्णन किया गया है उनको स्पष्ट करने के लिए उनकी व्याख्या आवश्यक है।

1. भारतीय संविधान का पालन करना तथा उसके आदर्शों, संस्थानों, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय ज्ञान का सम्मान करना– किसी भी राष्ट्र का सबसे अधिक पवित्र दस्तावेज उस राज्य का संविधान होता है। भारत की संविधान सभा द्वारा जो संविधान निर्मित किया गया, वह भारतीय जनता के लिए एक बहुत ही पवित्र दस्तावेज है। भारत के संविधान सभा द्वारा जो संविधान निर्मित किया गया है। यह संविधान भारतीयों को एक लम्बे स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद प्राप्त हुआ था। इसके द्वारा जहाँ लोकतन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना हुई है, वहाँ नागरिकों को स्वतंत्रताएँ तथा सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने की व्यवस्था भी संविधान द्वारा की गई है। नागरिकों का हित इसी बात में है कि वे संविधान के आदर्शों और उसकी संस्थाओं का पालन करें।

   राष्ट्र का ध्वज और राष्ट्रीय गान राष्ट्र के प्रतीक है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करे। इसके साथ ही राष्ट्रीय गान का भी उचित आदर करे। इनके आदर करने से राष्ट्र का ही एक अंग है।

2. स्वतंत्रता संग्राम के दौर में जिन आदर्शों को अपना काम किया गया था और जिनसे प्रेरणा मिली थी उनका पालन करना– भारतीयों को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एक लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा था। इस संघर्ष के दौरान जहाँ ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कुछ आदर्श निश्चित किए गए थे, वहाँ स्वतंत्र भारत के नव–निर्माण के लिए भी कुछ आदर्श निश्चित किए गए थे। ये आदर्श भारत की धरोहर है। इन आदर्शों में सत्य, अंहिसा, संवैधानिक साधन, लोकतंत्र, धर्म–निरपेक्षता, बंधुता, राष्ट्रीय एकता प्रमुख आदि हैं। प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह इन आदर्शों को अपनाए और उन्हें अपने जीवन का अंग बना ले जिससे कि राष्ट्र की धरोहर सुरक्षित बनी रह सकें।

3. भारत की प्रभुसता, एकता और अखण्डता का समर्थन तथा रक्षा करना– भारत एक राष्ट्र है। राष्ट्र की प्रभुसता, एकता और अखण्डता की सुरक्षा करना प्रत्येक नागरिक का पावन कर्तव्य है। स्वतंत्र भारत के नागरिक का कर्तव्य है कि राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र में कोई ऐसा कार्य न करे जिससे वह देश–द्रोही कहा जाए और उसके कार्यों से देश की अखंडता को खतरा पैदा हो। उदाहरण के लिए

उग्रवादी, चाहे वे पंजाब में हो या कश्मीर में अथवा उतर–पूर्वी राज्यों में, जो हिसांत्मक गतिविधियाँ कर रहे हैं उनसे देश की एकता और अखण्डता का खतरा पैदा हो रहा है। इसलिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र विरोधी तत्वों का सरकार द्वारा दमन कराने में अपना पूरा सहयोग दे।

4. देश की सुरक्षा करना तथा समय आने पर राष्ट्रीय सेवा के लिए तैयार रहना– भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह देश की सुरक्षा करना अपना सबसे महत्वपूर्ण कार्य समझे। राष्ट्र की सुरक्षा में ही नागरिक की सुरक्षा है। यदि राष्ट्र सुरक्षित है तो नागरिक भी सुरक्षित है। सुरक्षित राज्य में ही नागरिक अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। व्यक्ति के विकास से राज्यों के सभी लोगों का विकास होता है। इसलिए नागरिक का कर्तव्य है वह देश की सुरक्षा सम्बन्धी संस्थाओं, और अमेरिका में तो सैनिक सेवा अनिवार्य है परन्तु भारत में नहीं है। भारतीय नागरिकों का कर्तव्य है कि युद्ध की स्थिति में सेना या उससे संबंधित संस्थाओं में भर्ती होकर राष्ट्र की रक्षा के लिए तैयार रहें।

5. धार्मिक, भाषायी और प्रादेशिक या वर्गीय विभिन्नताओं को त्याग कर भारत के सारे लोगों में मेल–मिलाप तथा बन्धुता की भावना को विकसित करना तथा स्त्रियों की प्रतिभा को हीन करने वाली प्रथाओं का त्याग करना (To Promote harmony and spirit of common brotherhood amongst all the people of India transcending religious, linguistic and regional or sectional diversities; to renounce practices derogatory to the dignity of women)- भारत एक विशाल देश है जिसकी वर्तमान जनसंख्या 86 करोड़ से अधिक है। इस विशाल नज समूह में विभिन्न धर्मों, संस्कृति और सभ्यताओं, विभिन्न भाषाओं के लोग निवास करते हैं। देश की एकता और अखण्डता तथा संविधान के निश्चित आदर्शों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सभी लोगों में बंधुता की भावना पैदा हो। इससे देश की एकता मजबूत होगी और राष्ट्र का विकास संभव हो सकेगा। ब्रिटिश शासन की नकारात्मक विरासत 'साम्प्रदायिकता' अब भी भारत के लिए नासूर बनी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक नागरिक धर्म–निरपेक्षता की भावना में आस्था रखते हुए सभी लोगों के साथ भाईचारे से रहें।

   भारत में लोग परम्परावादी और रूढ़िवादी हैं। आधुनिकीकरण के प्रति उनकी प्रवृति कम विकसित हुई है। इसी कारण पुरूष समाज महिला समाज को हीन समझता है। इसलिए विशेष रूप से पुरूष वर्ग का यह कर्तव्य है कि दहेज प्रथा, सती प्रथा, बाल–विवाह प्रथा आदि को त्याग कर महिलाओं का विकास किया जाए।

6. अपनी मिली–जुली संस्कृति की सम्पन्न परम्परा का सम्मान करना और उसे सुरक्षित रखना (To Value and Preserve the Rich Heritage of our Composite Culture) – भारत एक प्राचीन देश है जिसकी संस्कृति में महान् आदर्शों का सम्मिश्रण है। इस संस्कृति का प्रमुख आधार दूसरों के विचारों के प्रदि उदारता और सहनशीलता है। भारत में प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक अनेक विदेशी लोग भारत में आये और बस गए। उनकी अपनी अलग संस्कृति थी जो भारतीय संस्कृति में मिलकर एक मिश्रित संस्कृति बन गई है। जिसे भारतीय विरासत कहा जा सकता है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपनी इस मिश्रित संस्कृति को सुरक्षित रखे।

7. वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन जैसे प्राकृतिक वातावरण को उन्नत करना और उनकी रक्षा करना

तथा जीव–जन्तुओं के प्रति दया करना। (To Protect and Improve the Natural Environment Including Forest, Lakes, Rivers and to have Comapassion for Living Creatures)- प्रकृति ने भारतवासियों को प्राकृतिक सम्पदा बहुत बड़ी मात्रा में प्रदान की है, जो हमारे जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रकृति ने हमें वन, झीलें, नदियाँ, पहाड़ जंगली जानवर दिए हैं। प्रकृति का यह वातावरण मानव जीवन के वह जहाँ जंगलों का विनाश न करे वहाँ झीलों और नदियों का सदुपयोग करे तथा जंगली जानवरों को किसी भी रूप में हत्या न करे।

8. वैज्ञानिक प्रवृति , मानवती तथा अन्वेषण और सुधार की भावना को विकसित करना (To Develop the Scientific Temper; Humanism and the Spirit of Inquiry and Reform)- मनुष्य समाज का विकास मनुष्य की चिन्तनशील प्रवृति के कारण हुआ।खेद है कि भारत की जनसंख्या का एक विशाल भाग रूढ़िवादी होने के कारण अन्धविश्वासी, रीति–रिवाजों और परंपराओं का शिकार है। सामाजिक जीवन में इतनी अधिक कुरितियाँ है जिसके कारण सामाजिक विकास कुंठित हो रहा है। सामाजिक विकास के साथ ही राष्ट्र का विकास संभव हे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्यों के सोचने का ढंग तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक हो। तभी सामाजिक कुरीतियाँ दूर हो सकती हैं और समाज में सुधार हो सकता है। यह तभी संभव हो सकता है जब कि प्रत्येक नागरिक अपने दृष्टिकोण को तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक बनाए।

9. सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करना और हिंसा को त्यागने का प्रण करना (To Safeguard Public Property and to Adjure Violence)- नागरिक जिसे सार्वजनिक सम्पति समझता है, वास्तव में वह सम्पति उसकी भी है। राष्ट्र की सम्पति में प्रत्येक नागरिक का भाग है। इसलिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि जिस प्रकार वह व्यक्तिगत सम्पति की रक्षा करता है उसी प्रकार सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करे। हड़ताल और प्रदर्शन नागरिकों का अधिकार है परन्तु हड़तालों के समय रेलगाड़ी, बसों सरकारी इमारतों आदि को कभी भी हानि नही पहुँचानी चाहिए, क्योंकि इनकी हानि उसकी अपनी हानि होती है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि हड़तालों के समय विशेष रूप से विद्यार्थी लोग छोटी सी बात पर उतेजित होकर सार्वजनिक सम्पति को हानि पहुँचाने लगते हैं। दूसरे, कभी–कभी छोटी सी बात पर दंगे हो जाते हैं और वे दंगे हिसां का रूप ले लेते हैं। ऐसी हिंसक गतिविधियों से समाज का वातावरण दूषित होता है। इसलिए यह नागरिक का मौलिक कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करे और हिंसा की प्रवृति न अपनाए।

10. व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यकलापों के क्षेत्र में कुशलता का प्रयत्न जिससे कि राष्ट्र उच्च्तम उपलब्धियों के शिखर पर पहुँच सके। (To strive Towards Excellence in all Spheres of Individual and Collective Activity, so that the Nation Constantly Rises to Higher Levels of Endeavour and Achievement) – किसी भी राष्ट्र का विकास नागरिक की दो प्रमुख भावनाओं पर निहित है। ये दो भावनाएँ हैं– कर्तव्य– परायणता और अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करना। भारत देश के नव–निर्माण के लिए आवश्यक है। कि प्रत्येक नागरिक अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक उतरदायित्व को कर्तव्य– परायण और कुशलता के साथ पूरा करे। व्याख्या के रूप में, नागरिक जो व्यापारिक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं वे जनता को वस्तुएँ उचित दाम पर दें तथा चोर बाजारी या मुनाफाखोरी न करें।

उद्योगपति अधिक से अधिक उत्पादन करते हुए, मजदूरों को उचित मजदूरी दें जिससे निर्यात बढ़े और विदेशी मुद्रा कमाई जा सके। इसी प्रकार व्यावसायिक क्षेत्र में वकील, डॉक्टर, शिक्षक व वैज्ञानिक, सरकारी कर्मचारी भी अपना–अपना उतरदायित्व पूरा करें। तभी भारत एक महान राष्ट्र बन सकता है।

यद्यपि संविधान के अनुच्छेअ 51–A में जोड़े गए मौलिक कर्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है परन्तु बहुत से ऐसे कर्तव्य है। जिनका उल्लंघन दण्डनीय है, जैसे राष्ट्र विरोधी कार्य। अंततः यह कहा जा सकता है कि मौलिक कर्तव्यों का भारतीय नागरिकों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

1.7.5 मौलिक कर्तव्यों की आलोचना (Criticism of Fundamental Duties)

भारतीय संविधान में 51–A के अनुच्छेद द्वारा जिन मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है, उनके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। इस कारण मौलिक कर्तव्यों के विषय में भाषा आदि के कारण इनकी विद्वानों ने निम्न आधारों पर आलोचना की हैः

1. मौलिक कर्तव्य केवल नैतिक कर्तव्य हैं (Fundamental Rights are only Moral Rights) – संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्य नैतिक कर्तव्य हैं। जिस प्रकार नैतिक कर्तव्यों के पीछे कानूनी शक्ति नहीं होती और कोई भी व्यक्ति उनकी आसानी से अवलेहना कर सकता, इसी प्रकार मूल कर्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। इसका अर्थ यह है कि यदि कोई नागरिक मूल कर्तव्यों की अवलेहना करता है तो उसे इन्हें मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। मूल कर्तव्यों के द्वारा नागरिकों को कुछ कार्य करने के आदेश तो दिए गए, परन्तु उनको कार्यान्वित करने की कोई कानूनी व्यवस्था नहीं की गई। आलोचकों का सुझाव है कि यदि मूल कर्तव्य संविधान में रखे ही गए हैं तो इनके पीछे कानूनी शक्ति अवश्य होनी चाहिए थी। मौलिक अधिकारों के संबंध में जो समिति स्वर्ण सिंह की अध्यक्षता में नियुक्त की गई थी उसने यह सुझाव दिया था कि संसद के कानून द्वारा यह व्यवस्था की जाए की जो भी नागरिक मौलिक कर्तव्यों का उल्लंघन करे उसे दण्ड दिया जाए। परन्तु यह सुझाव अभी तक लागू नहीं किया गया है।

2. औचित्यता के आधार पर आलोचना– भारत जैसे लोकतंत्रीय राज्य के संविधान में मौलिक अधिकारों का होना औचित्य पूर्ण हैं। इस तरह के कर्तव्यों का उल्लेख तो केवल साम्यवादी राज्यों के संविधानों में ही किया जाता है। वहाँ नागरिकों को केवल कर्तव्यों के ही पालन करने होते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि लोकतंत्रीय राज्यों के संविधानों में जब मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है तो भारत के संविधान में भी मौलिक अधिकारों की रचना कोई औचित्य नहीं रखती।

3. मौलिक अधिकारों का संविधान में देरी से नियंत्रण (Delayed in Inclusions of Fundamental Duties in the Constitution)- आलोचकों ने मौलिक कर्तव्यों की इस आधार पर आलोचना की है कि इनको संविधान में बहुत देरी में रखा गया है। यदि इनको मूल संविधान में रखा जाता है तो लोगों में अधिक कर्तव्य परायणता की भावना पैदा हो जाती।

4. कर्तव्यों का अस्पष्ट होना (Duties are Vague)- मौलिक कर्तव्यों में कुछ कर्तव्य ही अस्पष्ट है जिसके कारण साधारण लोग उनको नहीं समझ सकते। उदाहरण के लिए, संविधान में आदर्शों के प्रति आदर करना एक कर्तव्य है। परन्तु संविधान के क्या आदर्श है और किस प्रकार उनका आदर किया जाए– यह

स्पष्ट नहीं किया गया। इसी प्रकार दृष्टिकोण में वैज्ञानिकता, सुधार की भावना का विकास करना आदि ऐसे कर्तव्य हैं जिनका अर्थ लोग भिन्न–भिन्न लगा सकते हैं। इससे कर्तव्यों की अस्पष्टता ज्ञात होती है।

5. मौलिक कर्तव्यों में कुछ कर्तव्यों का अभाव (Absence of Some Duties) –संसद के सदनों में जब 42वें संशोधनों के मौलिक कर्तव्यों के अनुच्छेद के विषय में वाद–विवाद हो रहा था तो संसद सदस्यों ने सुझाव दिया कि अनिवार्य मत, अनिवार्य शिक्षा, परिवार नियोजन आदि अन्य विषयों को भी मूल कर्तव्यों में निश्चित किया जाए। इस प्रकार मौलिक कर्तव्य अपूर्ण दिखाई देते हैं।

6. मौलिक कर्तव्यों को मौलिक अधिकारों के अध्याय में न रखना (No inclusion of Fundamental Duties with Fundamental Rights)- आलोचकों ने मौलिक कर्तव्यों की इस आधार पर भी आलोचना की है कि इनको मौलिक अधिकारों के साथ रखना चाहिए था जबकि वे राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों की तरह न्याय–संगत नहीं है।

स्पष्ट है कि मौलिक कर्तव्य भले ही नैतिक नियम हो परन्तु उनका अपना ही महत्व है।

1.7.6 मौलिक कर्तव्यों का महत्व (Importance of Fundamental Duties)

संविधान में मौलिक कर्तव्यों के निरूपण की, जो 42वें संशोधन, 1976 के अनुसार 51-A अनुच्छेद द्वारा किया गया है, संवैधानिक विद्वानों ने कटु आलोचना की है। आलोचना का मुख्य आधार यह है कि मौलिक कर्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। परन्तु मौलिक कर्तव्यों का अपना महत्व है। इसका वर्णन निम्नलिखित हैः

1. भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक(Essential for the Indian Democracy) – विद्वानों का विचार है कि जिन मौलिक कर्तव्यों को संविधान में रखा गया है, उनको अपनाने से लोकतन्त्रीय व्यवस्था मजबूत होती है। उदाहरण के लिए, पर्यावरण का सुरक्षा सम्बन्धी कर्तव्य जहाँ वातावरण के दूषित होने से बचाने के लिए लाभदायक है वहाँ इसको अपनाने से व्यक्ति का भी अपना हित है।

2. नैतिक आदर्श (Moral Ideals)– संविधान में वर्णित मौलिक कर्तवय एक प्रकार के नैतिक आदर्श है। व्यक्ति जिस प्रकार नैतिक आदर्शों को सामाजिक जीवन में अपनाता है उसी प्रकार वह मौलिक कर्तव्यों को भी अपनाएगा। मौलिक कर्तव्यो से उसे ज्ञान होता है कि उसे किन उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है। और किन आदर्शों के पालन करने से राष्ट्र का विकास होता है। संसद के संशोधन द्वारा मौलिक अधिकारों के पीछे जो कानूनी व्यवस्था नहीं की गई वह अच्छा ही किया गया क्योंकि इनके पीछे कानूनी शक्ति से नागरिक एक बोझ महसूस करता है। अब वह अपनी इच्छा से इन मौलिक अधिकारों का अनुसरण करेगा।

3. मौलिक कर्तव्य स्पष्ट दें (Fundamental Duties are Clear)- कुछ आलोचकों ने मौलिक कर्तव्यों की इस आधार पर आलोचना की है कि ये कर्तव्य अस्पष्ट हैं। परन्तु कई कर्तव्य जैसे संविधान और उसकी संस्थाओं का सम्मान करना, राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा करना, महिलाओं का सम्मान करना आदि बड़े ही स्पष्ट है इनका किसी नागरिक को अनुसरण करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

4. अधिकार और कर्तव्य आपस में संबधित है। (Rights and Duties are Corelated)- अधिकार और कर्तव्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है। उचित तो यह था कि संविधान–निर्माण के समय ही मौलिक अधिकारों के साथ मौलिक कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया होता। 42वें संशोधन के द्वारा कर्तव्यों को संविधान में अंकित करके एक

महत्वपूर्ण कार्य किया है। संविधान सभा में जो सदस्यों द्वारा यह कहा गया था कि भारत के लोग केवल अधिकारों पर ही बल देते हैं कर्तव्यों पर नहीं। यह बात गलत है। सामाजिक जीवन में सभी लोग अपने ग्रन्थों द्वारा निश्चित किए गए कर्तव्यों का पालन करते हैं। इसलिए मौलिक कर्तव्य जिन्हें राष्ट्रीय ध्वज का अपमान नहीं कर सकता। रही राष्ट्र विरोधी तत्वों की बात, तो उनको दण्ड देने के लिए कानूनी व्यवस्था है।

5. मौलिक कर्तव्यों का सकारात्मक रूप– (Positive Nature of Fundamental Duties)- भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार सकारात्मक स्वरूप है। वे नागरिकों को राष्ट्र के प्रति कुछ करने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे लोगों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अतः भारतीय नागरिक धीरे–धीरे मौलिक कर्तव्यों का पालन करने के अभ्यस्त हो जांएगें।

1.7.7 निष्कर्ष

अन्त में यह सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों को अंकित करना पूरी तरह से उचित है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना एकदम दासता के बाद हुई है। इसलिए यह उचित है कि भारत के नागरिकों को उनके कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाएगा। भारतीय जनता इन कर्तव्यों को निश्चित रूप से अपनाएगी, जिससे की भारतीय लोकतंत्र की जड़े और मजबूत होंगी।

1.7.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

लघू व दीर्घ उतरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का वर्णन कीजिए। उन्हें किस प्रकार लागू किया जा सकता है?
2. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के स्वरूप का वर्णन करो।
3. भारतीय संविधान मे ंजो मौलिक अधिकार दिए गए हैं, उनका वर्णन कीजिए। क्या वे असीमित हैं?
4. 'समानता' तथा 'स्वतंत्रता' के अधिकारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. भारतीय संविधान के अधीन व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की निवारक नजरबन्दी कानून को देखते हुए आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
6. टिप्पणी लिखिएः (क) धारा 19, (ख) धारा 32
7. मौलिक अधिकारों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
8. न्यायिक लेखों पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
9. भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 पर आलोचनात्म टिप्पणी लिखिए।

1.7.9 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.

- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.8 राज्य–नीति के निर्देशक तत्व (Directive Principles of State Policy)

1.8.1 परिचय

राज्य–नीति के निर्देशक तत्व हमारे संविधान की संजीवनी व्यवस्थाएँ हैं। इन सिद्धातों में हमारे संविधान का और उसके सामाजिक न्याय दर्शन का वास्तविक तत्व निहित है। ये तत्व हमारे संविधान की प्रतिज्ञाओं और आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करते हैं। संविधान निर्देशक सिद्धांतों का मार्ग प्रशस्त करता है और निदेशक सिद्धांत एवं उनकी क्रियान्वयन संविधान को सामाजिक शक्ति से अभिसंचित करता है। निदेशक सिद्धांतों का प्रायोजन शान्तिपूर्ण तरीकों से सामाजिक क्रांन्ति का पथ–प्रशस्त कर कुछ सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को तत्काल सिद्ध करना है इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति के माध्यम से संविधान सामान्य व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना और हमारे समाज की सरंचना में परिवर्तन करना चाहता है। संविधान के भाग चतुर्थ का, जिसमें राज्य–नीति के निर्देशक तत्वों का विवेचन किया गया है, उद्देश्य उस सामाजिक ओर आर्थिक– क्रांति को मूर्त रूप प्रदान करना है, जिसे स्वाधीनता के पश्चात पूरा करना बाकी रह गया था। भारतीय संविधान में इन्हें अपनाने की प्रेरणा आरयलैंड से प्राप्त हुई।

1.8.2 उद्देश्य

1. राज्य–नीति निर्देशक सिद्धांतों की उत्पति को जानना।
2. राज्य–नीति निर्देशक सिद्धांतों के वर्गीकरण को समझना।
3. नीति–निर्देशक सिद्धांतों के संशोधन को जानना।
4. नीति–निर्दशक सिद्धांतों की सीमाओं को समझना।

1.8.3 निर्देशक तत्वों का अर्थ (Meaning of Directive Principles)

संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। राज्य–नीति के निदेशक सिद्धांत देश की विभिन्न सरकारों और सरकारी अभिकरणों के नाम जारी किए गए निर्देश है। जो देश की शासन व्यवस्था के मौलिक तत्व हैं। दूसरे शब्दों में, निदेशक कार्यपालिका और व्यवस्थपिका को दिए गए ऐसे निदेश है जिनके अनुसार उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि इन सिद्धांतों का पूरा और उचित रूप से पालन हो। ये सिद्धांत ऊँचें– ऊँचे आदर्शों की घोषणाएं हैं।'' सिद्धांत पथ–प्रदर्शन तथा ऊँची – ऊँची आकांक्षाओं के घोषणा–पत्र हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''राज्य नीति के निदेशक तत्वों की प्रकृति के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 37 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि '' इस भाग (4) में दिए गए उपबन्धों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु फिर भी इसमें दिए हुए तत्व देश के शासन में मुलभुत हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य हागा।'' संविधान की प्रस्तावना में जिन उद्देश्यों को प्रकट किया गया है उन्हें व्यवहारिक रूप देने के लिए राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का स्थान दिया गया है। जिस प्रकार 1935 के भारत सरकार अधिनियम में गर्वनर जनरल तथा गर्वनरों के लिए अनुदेश–पत्र जारी किए थे, उसी तरह नए संविधान में निदेशक सिद्धांत हमारे शासनकर्ताओं के लिए हिदायतें या अनुदेश हैं। ये सिद्धांत कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के लिए निदेश हैं कि उन्हें किस तरह संचालन करना है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, '' राज्य नीति के निदेश सिद्धांत सन् 1935 के अधिनियम में जारी किए गए अनुदेश–पत्रों के समान ही हैं। बस अन्तर केवल यही है कि अधिनियम में गर्वनर–जनरल तथा गर्वनरों को निर्देशन दिए गए थे जबकि इस संविधान में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका की ही

स्थापना करता है, जबकि 'समाजवाद' शब्द का उल्लेख नहीं मिला है।'' प्रो. पायली के अनुसार, '' निदेशक तत्व भारतीय प्रशासकों के आचरण के सिद्धांत हैं।'' जी. एन. जोशी के शब्दों में, '' इन निदेशक तत्वों को विधानमण्डलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन तत्वों को लागू करते समय ध्यान में रखना चाहिए। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं, जिस अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।'' न्यायाधीश केनिया के अनुसार, '' निदेशक तत्वों में राष्ट्र की बुद्धिमतापूर्ण स्वीकृति बोल रही है, जो संविधान सभा के माध्यम से अभिव्यक्त हुई थी। संक्षेप में ये सिद्धांत शासन की नीतियों को निर्दिष्ट करने के लिए विधान में निहित किए गए हैं। डॉ. पायली ने इसे '' आधुनिक संवैधानिक प्रशासन की एक नवीन विशेषता बतलाया है, जिसकी प्रेरणा हमें आयरिश संविधान से ही मिली है। ये सिद्धांत प्रजातान्त्रामक भारत का शिल्यानास करते हैं। जब भारत सरकार इन्हें कार्यरूप में परिणत कर सकेगी तो भारत एक सच्चा लोककल्याणकारी राज्य कहला सकेगा।''

निदेशक सिद्धांतों को संविधान का अंग बनाने में संविधान – निर्माताओं का उद्देश्य क्या था? इन आधारभूत सिद्धांतों की रचना करते है। निदेशक सिद्धांत का वास्तविक महत्व इस बात का है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के दायित्व के द्योतक हैं। संविधान की प्रस्तावना में जिन आदर्शों की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की गई है, ये उन आदर्शों की ओर बढ़ाने के लिए पथ–प्रदर्शन का कार्य करते हैं। जिन आदर्शों की प्राप्ति भारतीय राज्य का लक्ष्य है, ये उन आदर्शों की गणना है।

निर्देशक सिद्धांतों का सार तत्व

निर्देशक सिद्धांतों का सार तत्व संविधान के अनुच्छेद 38 में दिया गया है जिसमें संविधान की प्रस्तावना की प्रतिध्वनि सुनाई देती है–

''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रणित करे, भरसक कार्यसाधक के रूप में स्थापना और सरंक्षण करके लोक–कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।''

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संविधान के भाग 4 में विभिन्न उपबन्ध निर्धारित किए गए हैं। '' संविधान ने राज्य को यह सुनिश्चित करने की आज्ञा दी है कि नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो जिससे कि आर्थिक प्रणाली का संचालन और देश के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण सामान्य जन के अधीन हो : मजदूरों को न केवल निर्वाह–योग्य मजदूरी प्राप्त हो, बल्कि वह इतनी हो जिससे वे अपने बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रख सकें, और अपने जीवन की संध्या में सेवा–निवृत होकर आराम से रह सकें ओर उस समय का तथा अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का आनन्द लाभ कर सकें, स्त्रियों और बच्चों का विशेष ध्यान रखा जाए और जनता के दुर्बल वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से सवंर्द्धित किया जाए। राज्य के प्राथमिक कर्तव्यों में से एक लोगों के सामान्य जीवन–स्तर और घोषणा के स्तर को ऊपर उठाना है। अनुच्छेद 45 में यह आशा व्यक्त की गई है कि 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य और प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। अन्य निदेशक सिद्धांतों में कृषि, पशुपालन को सुनिश्चित करने का संकल्प निहित है। इस प्रकार ये सिद्धांत राज्य के ऊपर यह ठोस जिम्मेदारी डालते हैं कि वह देश में लोकतन्त्र के लिए सुदृढ़ आधार का निर्माण करे।''

वस्तुतः संविधान के भाग 4 अर्थात् राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य देश में उस सामाजिक और आर्थिक क्रांन्ति को मूर्त रूप प्रदान करता है जिससे देश के सभी नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके, शोषकारी तत्वों की समाप्ति हो, समाज का प्रत्येक सदस्य संयत् स्वतंत्रताओं का उपयोग कर सके, अधिकारों के

अविभाज्य अंग के रूप में कर्तव्यों की गंगा बहे और देशवासियों में उस दृष्टिकोण का विकास हो जो अन्तराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बल प्रदान करे। निदेशक सिद्धांत व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक होते हैं। इसके समुचित कार्यान्वयन पर आदर्श लोकतंत्र की इमारत खड़ी जा सकती है। नीति–निर्देशक तत्व हमारे संविधान के भाग 3 में है। उनकी जड़े भारतीय संस्कृति के अतीत के साथ जुड़ी हुई है। '' ये भारत के भविष्य, वर्तमान और भूत को एक–दूसरे से सम्बन्धित करते हैं और हमारे महान प्राचीन देश में सामाजिक क्रान्ति का अलख जगाते हैं।'' निसन्देह नीति निदेशक सिद्धांत देश में लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करते हैं।

1.8.4 नीति निर्देशक तत्वों का महत्व (Importance of Directive Principles)

नीति निदेशक तत्वों की जो आलोचना की गई है उसका यह तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि वे बिल्कुल व्यर्थ और महत्वहीन हैं। वास्तव में, सवैंधानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से नीति निदेशक तत्वों का बहुत अधिक महत्व है। न्यायमूर्ति हेगडे के अनुसार, यदि हमारे संविधान के कई भाग ऐसे हैं जिन पर सावधानी और गहराई से विचार करने की आवश्यकता है तो वे है– भाग तीन और चार। उनमें संविधान का दर्शन निहित है और एक लेखक के शब्दों, '' वे हमारे संविधान की अन्तरात्मा है।'' डॉ. पायली के अनुसार, '' इन निदेशक तत्वों का महत्व इस बात में है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के सकारात्मक दायित्व हैं।'' इन तत्वों के महत्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है।

1. असंगत तथा असामयिक होने के तर्क गलत (Directive Principles are neither Inconsistent not out of date)- नीति निर्देशक तत्वों के संबंध में प्रो. जैनिंग्ज ओर श्रीनिवासन जैसे व्यक्तियों की यह आलोचना नितान्त अनुचित है कि तत्व असंगत तथा असामयिक है। वास्तव में ये विचार केवल विदेशी नहीं है वरन् इस अध्याय में अनेक उपबन्ध पूर्णरूप में भारतीय है। यद्यपि 21वीं सदी में यह सिद्धांत पुराने पड जाएंगे ओर अव्यवहारिक हो जाएंगे, लेकिन कम से कम 20वीं शताब्दी के भारत में ये सिद्धांत उपयोगी तथा व्यवहारिक प्रतीत होते हैं। पुनः प्रो. एम. बी. पायली के शब्दों में, '' यदि कभी ये सिद्धांत पुराने पड जाएंगे तो इनका आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सकता है क्योंकि संशोधन प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। जब तक इनके संशोधन करने का समय आएगा, तब तक भारत इनका पूरा लाभ उठा चुका होगा और भारत भूमि में आर्थिक लोकतंत्र की जड़े गहरी हो चुकी होगी। संविधान का निर्माण वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए होता है। यदि हम वर्तमान का निर्माण सुदृढ नींव पर करें तो भविष्य की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

2. निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की शक्ति (Power of Public Opinion behind the Principles) -यद्यपि इन निदेशक तत्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके पीछे जनमत की सत्ता होती है, जो प्रजातंत्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। अतः जनता के प्रति उतरदायी कोई भी सरकार इनकी अवलेहना का साहस नहीं कर सकती। शासन द्वारा किया गया इनका बार–बार उल्लंघन देश में शक्तिशाली विरोध का जन्म देगा। व्यवस्थापिका के भीतर शासन को विरोधी दल के प्रहारों का सामना करना पड़ेगा और व्यवस्थापिका के बाहर इसे निर्वाचन के समय निर्वाचको को जवाब देना होगा। निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की इस शक्ति के कारण शासक दल को इनकी क्रियान्विति के प्रति पर्याप्त उत्साह का परिचय देना होगा। प्रो. पायली के अनुसार, '' ये निदेशक तत्व राष्ट्रीय चेतना के आधारभूत स्तर का निर्माण करते हैं

और जिनके द्वारा इन तत्वों का उल्लंघन किया जाता है, वे ऐसा कार्य उतरदायित्व की स्थिति से अलग होने के जोखिम पर ही करते हैं।'' आलोचक राघवचारी भी स्वीकार करते हैं कि '' जो शासन सता पर आधिपत्य बना, उसे इस अनुदेश पत्र का आदर करना ही होगा..... आगामी चुनाव में उसे इस सम्बन्ध में निर्वाचकों को जवाब देना ही पड़ता है।'' ऐसी स्थिति में श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि '' कोई लोकप्रिय मन्त्रिमंडल संविधान के चतुर्थ भाग के सम्बन्धों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता है''

3. चरम सीमाओं से रक्षा (An Insurance Against Extremes)- हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूर्णतया परिचित थे कि प्रजातान्त्रिक राज्य में परिवर्तनशील जनमत के परिणामस्वरूप विभिन्न समयों में विभिन्न राजनीतिक दल सतारूढ हो सकते हैं। कभी दक्षिणपंथी दल शासन सता पर अधिकार कर सकता है। और कभी कोई वामपंथी दल। निदेशक तत्व दोनों प्रकार की सरकारों को मर्यादित रखेंगे तथा उन्हें किसी प्रकार का एक तरफ झुकाव रखने से रोकेंगे। श्री अमरनन्दी के अनुसार, '' संविधान के निदेशक तत्वों इस बात का आश्वासन देते हैं कि अनुदार दल अपनी नीति के निर्धारण में इन तत्वों की पूर्ण अवलेहना नहीं कर सकेगा और एक उग्रवादी दल अपने दल के आर्थिक अपने दल के आर्थिक या अन्य कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संविधान का अंत करना आवश्यक नहीं समझेगा। इस प्रकार निदेशक तत्व वाम और दक्षिण पन्थ की चरम सीमाओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं।''

4. नैतिक आदर्शों के रूप में महत्व (Importance as Moral Ideals)- यदि निदेशक तत्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाए, तो इस रूप में भी उनका अपार महत्व है। ब्रिटेन में मेग्ना कार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई कानूनी अनुशक्ति प्राप्त नहीं, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार उचित रूप में यह आशा की जा सकती है। कि ये अन्य निदेशक तत्व भारतीय शासन की नीति को निर्देशित और प्रभावित करेंगे। एलेन ग्लेडहिन के शब्दों में '' अनगिनत व्यक्तियों के जीवन नैतिक आदर्शों के फलस्वरूप सुधरे हैं ओर ऐसे उदाहरण भी मिलने कठिन नहीं है जबकि उच्च आदर्शों को राष्ट्रो के इतिहास पर प्रभाव पड़ा हो।''

5. संविधान की व्याख्या में सहायक (Helpful in the Interpretation of the Constitution)- संविधान के अनुसार निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं। जिसका तात्पर्य है कि देश के प्रशासन के लिए उतरदायी सभी सताएँ उनके द्वारा निर्देशित होंगी। न्यायपालिका भी शासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस कारण यह आशा की जाती है कि भारत में न्यायालय संविधान की व्याख्या के कार्य में निदेशक तत्वों को उचित महत्व देंगे। प्रो. एलेक्जेण्ड्रोविच का मत हैं, '' चूंकि निदेशक सिद्धांतों में संविधान सभा की आर्थिक और सामाजिक नीति बोल रही है और क्योंकि उसमें हमारे संविधान–निर्माताओं की इच्छा की अभिव्यक्ति है, इसलिए हमारे न्यायालयों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे मौलिक अधिकारों सम्बन्धी उपबन्धों की व्याख्या करते समय राज्य के नीति निर्देशक तत्वों पर पूरा–पूरा ध्यान दें। भारतीय न्यायालयों ने कई बार मौलिक अधिकार सम्बन्धी विवादों में सर्वोच्च न्यायालय के अनुच्छेद 47 के आधार पर निर्णय दिया कि शासन ने मादक द्रव्य निषेध अधिनियम पास करके उचित प्रतिबन्ध ही लगाया था। पुनः न्यायालय के बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह वाले विवादी में अनुच्छेद 39 के प्रकाश में यह निर्णय दिया था कि जमींदारी के अंत का उद्देश्य वास्तविक जनहित ही था। इसी प्रकार विजय वस्त्र उधोग बनाम अजमेर राज्य के विवाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 43 के प्रकाश में न्यूनमत पारिश्रमिक अधिनियम को उचित ठहराया। श्री एम. सी. सीतलवाड़ के

शब्दों में , '' राज्य नीति के इन मूलभूत सिद्धांतों को वैधानिक प्रभाव प्राप्त न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोग प्रकाश–स्तंभ का कार्य किया जाता है।''

6. शासन के मूल्यांकन का आधार (Basis of the Evaluation of Government) नीति निदेशक तत्वों द्वारा जनता को शासन की सफलता व असफलता की जाँच करने का मापदण्ड भी प्रदान किया जाता है। शासक दल द्वारा अपने मतदाताओं को निदेशक सिद्धांतों के संदर्भ में अपनी सफलताएं बतानी होंगी और शासन शक्ति पर अधिकार करने के इच्छुक राजनीतिक दल को इन तत्वों की क्रियान्विति के प्रति अपनी तत्परता और उत्साह दिखाना होगा। इस प्रकार निदेशक तत्व जनता को विभिन्न दलों की तुलनात्मक जांच करने योग्य बना देंगे।

7. कार्यपालिका प्रधान इनका दुरूपयोग नहीं कर सकते हैं (Executive Head cannot Exploit Provisions)- निदेशक तत्व के पक्ष में अन्तिम बात यही कही जा सकती है कि यद्यपि विधानसभा के सदस्यों तथा कुछ संविधान वेताओं ने यह भय प्रकट किया है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर किसी विधेयक पर अपनी सम्मति देने से इंकार कर सकते हैं कि वह निदेशक तत्वों के प्रतिकूल है, लेकिन व्यवहार में ऐसी घटना की सम्भावना कम है, क्योंकि संसदात्मक शासन प्रणाली में नाममात्र का कार्यपालिका प्रधान लोकप्रिय मन्त्रिपरिषद द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में, '' विधायिका द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल निदेशक तत्वों का प्रयोग नहीं कर सकते।''

   वास्तव में , निदेशक तत्व भारतीय शासन के सर्वोच्च सिद्धांत है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री केनिया ने 'गोपालन बनाम मद्रास राज्य' के विवाद पर निर्णय देते हुए कहा था, '' क्योंकि राज्य की नीति के निदेशक तत्व संविधान में शामिल है, इसलिए वे बहुमत दल के अस्थाई आदेश मात्र ही नहीं हैं, वरन् उनमें राष्ट्र की बुद्धिमतापूर्ण स्वीकृति बोल रही है जो संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त हुई थी।''

1.8.5 निदेशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles)

संविधान के अनुच्छेद 36 में 'राज्य' की परिभाषा दी गई है। तदनुसार 'राज्य' के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधान–मण्डल तथा भारत राज्य–क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियन्त्रण के अधीन अवस्थानीय और अन्य प्राधिकार भी हैं। अनुच्छेद 37 के अनुसार निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होने पर भी देश के शासन में मूलभूत हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 से 51 में राज्य–नीति के निदेशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। ये निदेशक सिद्धांत अथवा तत्व संविधान में किसी युक्तियुक्त योजना के अनुसार नहीं गिनाए गए हैं। अतः उनका वर्गीकरण करना कठिन है। तथापि, अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में बांटना उपयुक्त होगा–

(क) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निदेशक तत्व,

(ख) सामाजिक हित सम्बन्धी निदेशक तत्व,

(ग) न्याय, शिक्षा लोकतंत्र एवं प्राचीन स्मारकों की रक्षा से सम्बन्धित निदेशक तत्व, एवं

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्व।

(ड) संविधान–निर्माता देश में लोक–कल्याणकारी राज्य स्थापित करना चाहते थे। अतः उन्होंने अधिकांश निर्देशक तत्वों द्वारा आर्थिक सुरक्षा तथा आर्थिक न्याय की स्थापना करने की व्यवस्था की। संविधान में इस प्रकार के निम्नलिखित निर्देशक तत्व हैं।

1. अनुच्छेद 38 के अनुसार राज्य लोक–कल्याण की उन्नित के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा अनुच्छेद 38 में एक नया खण्ड जोड़कर एक नया निर्देशक तत्व जोड़ा गया है। यह नया खण्ड यह उपबन्धित करता है कि राज्य इस बात का प्रयास करेगा कि विशेष रूप से व्यक्तियों की आय में असमानता कम हो, और पद, सुविधाओं और अवसरों के सम्बन्ध में केवल व्यक्तियों में ही नहीं वरन् विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले या विभिन्न व्यवसाय में लगे सभी वर्ग के लोगों में असमानता दूर हो।
2. राज्य देश के नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने का प्रयत्न करेगा।(अनुच्छेद 39–क)
3. राज्य समाज की भौतिक सम्पति के स्वामित्व और नियंत्रण की ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे अधिकाधिक सार्वजनिक हित हो सके। (अनुच्छेद 39–ख)
4. राज्य आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार से चलाने का प्रयत्न करेगा जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए हितकारी केन्द्रीयकरण हो।(अनुच्छेद 39–ग)
5. राज्य पुरूषों और स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करेगा।(अनुच्छेद 39–घ)
6. राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा कि श्रमिक पुरूषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति का और बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो। राज्य यह देखेगा की आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु के अनुकूल न हों।(अनुच्छेद 39–ड)
7. मूल संविधान के अनुच्छेद 39 (च) में कहा गया है कि राज्य '' बच्चों और युवकों को शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से सरंक्षण देगा।'' 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद कों संशोधित करते हुए कहा गया है कि – '' राज्य के द्वारा बच्चों को स्वस्थ विकास के लिए अवसर और सुविधाएँ प्रदान की जाएगी, उन्हें स्वतंत्रता और सम्मान की स्थिति प्राप्त होगी, बच्चों तथा युवको की शोषण से और आर्थिक या नैतिक परित्याग से रक्षा की जाएगी।''
8. राज्य अपने आर्थिक साधनों के अनुसार तथा विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयत्न करेगा कि सभी नागरिकों को योग्यतानुसार काम मिल सके, वे शिक्षा पा सकें और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अंगहीनता आदि की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पा सकें।(अनुच्छेद 41)
9. राज्य काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा।(अनुच्छेद 41)
10. राज्य श्रमिकों के लिए काम, निर्वाह–मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर , समुचित अवकाश तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रदान कराने का प्रयास करेगा। राज्य विशेष रूप से गांवों में कुटीर उद्योगों को व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा।(अनुच्छेद 43)
11. राज्य वैज्ञानिक आधार पर कृषि और पशु–पालन का संचालन करेगा।(अनुच्छेद 48)

42वें संविधान संशोधन में आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी दो और निर्देशक तत्व जोड़े गए हैं जो कमजोर वर्गों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं। ये तत्व अनुच्छेद 39 के उपखण्डों के रूप में जोडे गए हैं। 44वें संशोधन द्वारा एक और निर्देशक तत्व जोड़ा गया है। जिसमें कहा गया है कि '' राज्य न केवल व्यक्तियों की आय और उनके सामाजिक स्तर, सुविधाओं तथा अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को कम से कम करने का प्रयत्न करेगा बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे व्यक्ति के समुदायों के बीच विद्यमान आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं एवं अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को भी कम से कम करने का प्रयत्न करेगा।'' इस तरह से उन तत्वों में आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना का स्वर निहित है।

(ख) सामाजिक हित सम्बन्धी निर्देशक तत्व

इस सम्बन्ध में राज्य के निम्नलिखित कर्तव्य निश्चित किए गए हैंः–

1. भारत भर में नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार–संहिता प्राप्त कराने का प्रयत्न करना। (अनुच्छेद 44)
2. ज्नता के दुर्बलतर अगों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ–सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करना और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करना।(अनुच्छेद 46)
3. अपने लोगों के आहार–पुष्टि–तल और जीवन स्तर को ऊँचा करना तथा लोक स्वास्थ्य औषधियों के उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करेगा। (औषधीय प्रयोजनों से अतिरिक्त अनुच्छेद 47)
4. राज्य संसद द्वारा कानून बनाकर राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, ऐतिहासिक स्थानों और चीजों का सरंक्षण करेगा।(अनुच्छेद 49)
5. संविधान के 42 वें संशोधन द्वारा देश के पर्यावरण की रक्षा को भी निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया है। 48वें अनुच्छेद के बाद अनुच्छेद 48 (क) जोड़ कर कहा गया है कि '' राज्य देश के पर्यावरण की रक्षा तथा उसमें सुधार का प्रयत्न करेगा। राज्य द्वारा वनों और वन्य जीवन की सुरक्षा का भी प्रयत्न किया जाएगा।''

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्व

संविधान निर्माता भारत के परम्परागत आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'जियों और जीने दो' से प्रभावित थे। इसी आदर्श को ध्यान में रखते हुए संविधान के अन्तिम निर्देशक तत्व 51 में कहा गया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निम्नलिखित बातों का प्रयत्न करेगा।

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा में वृद्धि करने का,
2. राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने का
3. संगठित लोगों के एक–दूसरे के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि सम्बन्धों के प्रति आदर बढ़ाने तथा
4. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिए प्रोत्साहन देने का।

स्पष्ट है कि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों द्वारा राज्य का यह कर्तव्य बनाया गया है कि वह देश के वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना करे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समता और न्याय प्राप्त हो सके।

1.8.6 नीति निर्देशक तत्वों और मूल अधिकारों में अन्तर (Distintion between Fundamental Rights and Directive Principles)

यद्यपि नीति निर्देशक तत्व और मूल अधिकार एक–दूसरे के पूरक है और दोनों हमारे संविधान की अन्तरात्मा है, साथ ही दोनों में एक कार्य–पद्वति का निर्णय करतें हुए देश के लिए देश के लिए एक उज्जवल भविष्य का स्वप्न संजोया गया है तथा दोनों में निम्नलिखित रूप से आधारभूत अन्तर हैं–

1. मूल अधिकार नकारात्मक रूवरूप लिए हैं जबकि निर्देशक तत्व सकारात्मक। मूल अधिकार इसलिए है क्योंकि वे राज्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाते हैं। निर्देशक तत्व सकारात्मक इसलिए भी है कि ये राज्यों को किन्हीं निश्चित कार्यों के करने का निर्देश देते हैं।

2. मूल अधिकार वाद–योग्य अथवा न्याय–योग्य हैं, निर्देशक तत्व वाद–योग्य अथवा न्याय–योग्य नहीं है। अनुच्छेद 37 स्पष्ट रूप से कहता है कि निर्देशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेंगी, तथापि ये तत्व देश के शासन के मूलभूत आधार हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य है। दूसरी ओर मूल अधिकार न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है अर्थात् न्यायालय मूल अधिकार से किसी असंगत कानून को अवैध घोषित कर सकते हैं। लेकिन कोई भी विधि इस आधार पर अवैध घोषित नहीं की सकती हैं िकवह निर्देशक तत्वों के विरोध में है और न ही न्यायालय सरकार को इन तत्वों को कार्यान्वित करने के लिए कोई आदेश दे सकता है। उदाहरणार्थ एक अवैध रूप से गिरफ्तार किया हुआ व्यक्ति न्यायालय से बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख प्राप्त कर सकता है लेकिन यदि सरकार निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास नहीं करती तो इसके लिए व्यक्ति न्यायालय से कोई उपचार प्राप्त नहीं कर सकता है।

3. मूल अधिकारों का विषय व्यक्ति हैं, लेकिन निर्देशक तत्व राज्य के लिए है।

4. मूल अधिकार नागरिकों को संविधान द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दिए गए हैं जबकि निर्देशक तत्वों का उपभोग नागरिक तभी कर सकते हैं। जब राज्य विधि द्वारा इन्हें कार्यान्वित करें।

5. निर्देशक तत्वों का क्षेत्र मूल अधिकारों के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक है। मूल अधिकारों का क्षेत्र भारत राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत है जबकि निर्देशक तत्वों में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के सिद्धांत भी सम्मिलत है।

   यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि चाहे नीति निर्देशक तत्व न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय न हों, पर उनकी संवैधानिक महता और पवित्रता के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है।

1.8.7 निर्देशक तत्वों का क्रियान्वयन और उपलब्धियाँ (Implementation and Achievements with Regard to Directive Principles)

नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन की समस्या पुलिस राज्य को कल्याणकारी राज्य और संविधान द्वारा स्थापित राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तन करने की समस्या है। यह कार्य इतना बड़ा हे कि इसे तुरन्त सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसे पूरा करने के लिए दीर्घकालीन प्रयत्न, प्रचुर धन और तीव्र गति से आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास आवश्यक है।

परन्तु राज्य ने यह कार्य प्रारम्भ कर दिया है और इस दिशा में कई महत्वपूर्ण बातें की गई है : प्रथमतः नौ वीं पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर कृषि और उधोगों की उन्नति, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार, नौकरी व कार्य के साधनों में वृद्धि, राष्ट्रीय आय व लोगों के रहन सहन के स्तर को ऊचाँ उठाने का प्रयत्न किए गए हे। द्वितीय, युवक वर्ग व बालकों की शोषण से रक्षा करने के लिए अनेक कानून पास किए गए हैं, बीमारी और दुर्घटना के विरूद्ध सुरक्षा के लिए कुछ सीमा तक मजदूर वर्ग में बीमा योजना लागू की गई है बेरोजगारी बीमा योजना को लागू करने और रोजगार की सुविधाएँ बढ़ाने का प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सामाजिक कल्याण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। तृतीय, हिन्दू कोड बिल के कई अंशों जैसे हिन्दू विवाह अधिनियम 1955ः हिन्दू उतराधिकार अधिनियम, 1956ः आदि को पारित करके देश के सभी वर्गों के लिए समान विधि संहिता प्राप्त करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। चतुर्थ, अस्पृश्यता निवारण के लिए पिछड़ी हुई जातियों के बालकों को उदारतापूर्वक छात्रवृति और अन्य सुविधाओं द्वारा शिक्षित करने का कार्य भी हुआ है। पंचम, यद्यपि अब भी निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा और सबके लिए पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा का प्रबन्ध अधूरा ही है। तथापि इन दिशाओं में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। अन्तिम स्थान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा ग्राम पंचायतों को अधिक सशक्त बनाने का प्रयास किया जा चुका है। गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। कई राज्यों ने वृद्ध और असहाय लोगों के लिए पेंशन की व्यवस्था की है। सामाजिक सुरक्षा पेंशन के लिए सातवें आयोग (1979–84) ने राज्यों को 264.08 करोड रूपये दिए जाने का प्रावधान किया। बाल श्रमिकों के हितो के सरंक्षण हेतु केन्द्रीय बाल श्रमिक बोर्ड का गठन किया गया है तथा राज्यों से कहा गया है कि जिला स्तर पर ऐसे ही बोर्डो का गठन करें।

1969 के बाद ही राजनीति में तत्कालीन शासक वर्ग द्वारा निरन्तर संकल्प व्यक्त किया गया कि निदेशक तत्वों को अधिक तीव्र गति के साथ क्रियान्वित किया जाएगा। 1970 से 1976 के वर्षों में इस पुष्टि से कुछ कार्य भी दिए गए, यथा–14 प्रमुख बैंको का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के प्रिवीपर्स की समाप्ति, सम्पति के मौलिक अधिकार को सीमित करने हेतु संविधान में 24वां , 25वां, 29वां और 44वां संशोधन और तस्कर व्यापार विरोधी कार्यवाहियाँ, आदि। 1976 में ही संसद के द्वारा 'शहरी भूमि सीमाकरण कानून' पारित किया गया, जिसके अनुसार चार श्रेणी के शहरों में भूमि की सीमा 500 वर्गमीटर से 2,000 वर्गमीटर निश्चित की गई। 1971 के लोकसभा चुनावों से ही 'गरीबी' बेरोजगारी और असमानता' दूर करने का नारा भी जोर–शोर से लगाया गया, लेकिन इस संबंध में जैसा ठोक कार्य अपेक्षित था, वैसा नहीं किया गया। 1977 से भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है। 197 में सतारूढ़ जनता पार्टी द्वारा अपने चुनाव धोषणा पत्र में 'सम्पति के मूल अधिकार'को समाप्त करने और समस्त जनता को 'रोजी रोटी का अधिकार' प्रदान करने की बात कही गई थी। 'सम्पति के मूल अधिकार' को सामाजिक आर्थिक समानता के मार्ग में बाधक मानकर 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 'सम्पति के मूल अधिकार' को समाप्त कर दिया गया। निदेशक तत्वों की क्रियान्विति की दिशा अभी हाल ही में कुछ ठोस कार्य भी हुआ है, जैसे पश्चिमी बंगाल और केरल की सरकारों द्वारा बेरोजगार लोगों के लिए भते की व्यवस्था करना, लेकिन यह व्यवस्था बहुत सीमित रूप से ही की जा सकी है।

निदेशक तत्वों की क्रियान्वित पर जब हम विचार करें, तब हमारे द्वारा इस तथ्य को दृष्टि में रखा जाना चाहिए कि सर्वाधिक प्रमुख निदेशक तत्वों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 39 में किया गया है। और ये निदेशक तत्व' आर्थिक तथा सामाजिक न्याय' सें संबंधित है। 'संविधान सभा वाद विवाद' के अध्ययन से भी स्पष्ट है कि 'निदेशक तत्वों का उद्देश्य' आर्थिक तथा सामाजिक न्याय, दूसरे शब्दों में अधिकाधिक संभव सीमा तक आर्थिक सामाजिक समानता की स्थापना करना है। जब हम इस दृष्टि से आज की स्थिति पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि निर्देशक

तत्वों की क्रियान्वित के सम्बन्ध में स्थिति सन्तोषजनक नहीं हैं। सामाजिक समानता स्थापित करने की दिशा में थोडा कार्य भले ही हुआ हो, लेकिन आर्थिक समानता स्थापित करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है। आर्थिक असमानता का जो अनुपात संविधान लागू किए जाने के समय था आज उसमें थोडी सी कमी होने के बजाय बहुत अधिक वृद्धि हुई है। 'समाजवादी ढांचे का समाज, समाजवाद, लोक कल्याणकारी राज्य, भारतीय समाजवाद, समय समय पर ऐसे कई नारे पूर्व और वर्तमान शासक वर्ग के द्वारा लगाए गए हैं, लेकिन एक तरफ भीषण गरीबी और दूसरी तरफ अन्तहीन विलासिता, निरन्तर बढ़ती बेरोजगारी और अशिक्षा की जो स्थिति देखी जाती है, वह इस प्रश्न को जन्म देती है कि क्या शासक वर्ग की निदेशक तत्वों में, दूसरे शब्दों में आर्थिक तथा सामाजिक न्याय में कोई आस्था है?

देश में आर्थिक विषमता बढ़ रही है क्योंकि मात्र 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय उत्पादन का अधिकांश हिस्सा हजम कर जाते हैं और इसी कारण से देश में कुछ परिवारों का राष्ट्रीय उत्पादन पर एकाधिकार बढ़ गया है आज भी देश की 34 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। देश में 2 करोड 33 लाख आवास मकानों की कमी है। प्रतिवर्ष मात्र 4 लाख मकान बनते हैं। जबकि आवश्यकता प्रतिवर्ष 50 लाख मकानो की होती है 2 प्रतिशत जनसंख्या के पास आवश्यक शौचालय हैं, 6 लाख लोग प्रतिवर्ष तपेदिक से मरते हैं, 25 लाख लोग कोढ से ग्रसित हैं, 90 लाख लोगा अन्धे और प्रति 17,600 लोगो पर एक डाक्टर की सुविधा उपलब्ध है। लाखों बच्चे जोखिम भरे स्थानों पर श्रम करते हैं वर्तमान की साक्षरता का प्रतिशत केवल 65.38 प्रतिशत है।

दिसम्बर 1997 में जारी यूनीसेफ की रिपोर्ट ' दूनिया भर में बच्चों की स्थिति' बताती है कि दुनिया के कुपोषण के शिकार बच्चों में आधे भारतीय हैं, यह भी जहाँ दुनिया भर में पाँच वर्ष से कम उम्र के कुपोषित बच्चों का प्रतिशत 37 हैं, वहीं भारत में यह 52 है। इसी तरह, दुनिया भरत में इस आयु वर्ग के बच्चों की मृत्यु दर 88 है। भारत में 13 करोड लोग सुरक्षित पेयजल और 72 करोड लोग स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित है।

जून 1999 में जारी विश्व बैंक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1980 के दशक के अन्तिम वर्षों में गरीबो की जनसंख्या 30 करोड थी जो 1997 में बढ़कर 34 करोड हो गई।

172 राष्ट्रों के लिए मानव विकास सूचकांक का आंकलन संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की वर्ष 1999 की 'मानव विकास' रिपोर्ट में किया गया है। इनमें सबसे प्रमुख मानव विकास सूचकांक है जो जीवन प्रत्याशा, शैक्षणिक उपलब्धि तथा वास्तविक प्रति व्यक्ति आय पर आधारित हैं। इनमें भारत का 132 वां स्थान है।

इन आंकडों से यह प्रकट होता है कि पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निदेशक सिद्धांतों के क्रियान्वयन हेतु अभी बहुत कुछ करना शेष है। कितने आश्चर्य की बात है कि भारत दुनिया के प्रथम पन्द्रह औघोगिक देशों में स्थान रखता है और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित मानव शक्ति वाले राष्ट्रों में हमारा तीसरा स्थान है, हमारे यहाँ दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा व्यवस्था है तथापित विष्व बैंक के सर्वे के आधार पर हम दुनिया के सबसे निर्धनतम दस देशों में से एक हैं।

1.8.8 निर्देशक तत्वों की आलोचना

राज्य नीति के निर्देशक तत्वों की आलोचना प्रायः होती रही है। संविधान सभा में इन पर खुलकर चर्चा हुई थी। संविधान सभा में प्रो. के. टी. शाह ने कहा था– ''राज्य नीति के ये निर्देशक तत्व एक ऐसे चैके समान है जिनका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।'' कई आलोचकों ने इन सिद्धांतों को संविधान निर्माताओं की पवित्र भावनाओं और आकांक्षाओं पर संग्रह मात्र कहा है कतिपय आलोचकों ने इन्हें 'थोथे वचनों' की संज्ञा दी हैं। आलोचना के मुख्य आधार प्रायः ये रहें है–

1. ये तत्व वाद–योग्य नहीं है। अतः इनके पीछे कोई बाध्यता भी नहीं है। यह राज्य की इच्छा पर है कि वह इन्हें कहाँ तक लागू करता है इस प्रकार ये राजनीतिक घोषणा मात्र है। न्यायिक बाध्यता के अभाव के कारण इनकी बहुत ही शक्ति बहुत ही कमजोर हो गई है।
2. इन तत्वों में वर्णित अनेक तथ्य बड़े अनिश्चित और अस्पष्ट हैं। उदाहरणार्थ, समाजवादी सिद्धांतों में श्रमिकों और मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है और न ही राष्ट्रीय योजनाओं को कोई स्पष्ट विवरण दिया गया है।
3. कुछ ऐसे तत्व भी गिना दिए गए है जिनका पालन व्यवहार में असम्भव सा है, जैसे मद्य–निषेध। इस प्रकार के तत्वों या सिद्धांतों के प्रति भी जन साधारण की निष्ठा कम हो जाती है।
4. निर्देशक तत्वों को लागू करने का बढ़ा चढ़ा अथवा मिथ्या आश्वासन देकर चुनाव युद्ध जीतने की चाल खेली जाती है।
5. संविधान में कुछ निर्देशक तत्व इस प्रकार के हैं जिन्हें एक निश्चित अवधि में पूरा किया जाना था, उदाहरणार्थ, संविधान लागू होने के 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करनी थी, किन्तु ऐसा पिछले 42 वर्षों से संभव नहीं हो पाया है। इसी प्रकार उत्पादन और वितरण के साधनों की न्यायपूर्ण व्यवस्था भी आज तक सम्पादित नहीं हो सकी हैं।
6. कुछ क्षेत्रों में यह भी कहा गया है कि निर्देशक तत्वों का संविधान से समावेश कुछ निहित राजनीतिक स्वार्थों के कारण किया गया था। राज्यों की यह माँग थी कि संविधान में शिक्षा सम्बन्धी, विश्राम सम्बन्धी और बेकारी सम्बन्धी अधिकारों को सम्मिलत कर लिया जाए तथा यथा संभव उन्हीं मौलिक अधिकारों उपयोग किया जाए।

1.8.9 निष्कर्ष

1.8.10 मुख्य शब्दापली

1.8.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.8.12 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.

- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

इकाई –2

केन्द्र–राज्य सम्बन्ध
(Centre-State Relations)

2.0 इकाई का परिचय

भारत के संविधान में शक्तियों के विभाजन का प्रावधान है जो सरकार की विभिन्न इकाईयों में विभाजित है। ये इकाइयाँ इस प्रकार हैं, संघ या केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार। इनके बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है, जिसे हम संघवाद तथा विकेन्द्रीकरण के रूप में भी देख सकते हैं। इसे हम शक्तियों का विभाजन भी कहते हैं। इस इकाई में आप पढ़ेगें कि कानून बनाना, कानूनों को लागू करवाना तथा कानूनों की व्याख्या करना, उनका क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन करना सरकार के महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस इकाई में उच्चतम न्यायालय व न्यायिक पुनरावलोकन के परिप्रेक्ष्य में जानेगें। यह इकाई आपको भारत के कई प्रकार के राजनीतिक दलों व उनकी विशेषताओं के बारे में अवगत करवाएगी तथा भारत में किस प्रकार की दलीय व्यवस्था कायम है, इसकी भी चर्चा करते हैं।

2.1 इकाई के उद्देश्य

- केन्द्र–राज्य संबंधों को जानना।
- भारतीय उच्चतम न्यायालय व न्यायिक पुनरावलोकन को समझना।
- दलीय व्यवस्था का अर्थ एवं राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों के बारे में जानना।

2.2 केन्द्र–राज्य सम्बन्ध (Centre-State Relations)

2.2.1 परिचय

संघीय संविधान, राष्ट्रीय प्रभुता तथा राज्य प्रभुता के बीच, जो कि ऊपरी दृष्टि से विरोधी जान पड़ती है, सामंजस्य पैदा करने का प्रयत्न करता है। संविधान के अन्तरंग में ही कुछ ऐसे उपबन्ध होते हैं जो सामंजस्य के तौर–तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने वाली संघ प्रणाली को 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी जाती है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती, साथ ही, दोनों सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य होता है। संघवाद का बुनियादी तत्त्व है – शक्तियों का विभाजन। सहयोगी संघवाद में शक्तियों के विभाजन के उपरान्त भी केन्द्र एवं राज्यों के बीच अन्तःक्षेत्रीय सहयोग पर बल दिया जाता है। यह सहयोग केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों के बीच ही नहीं अपितु विभिन्न प्रादेशिक सरकारों एवं असंख्य राजनीतिक संरचनाओं के मध्य भी दिखलाई देता है।

वस्तुतः कोई भी संघीय शासन प्रणाली वाला देश आज यह दावा नहीं कर सकता कि वह केन्द्र–राज्य मतभेदों की समस्या से पूर्णतया उन्मुक्त है। यथार्थ में संघ व्यवस्था, जिसका आधार परस्पर सामंजस्यपूर्ण हिस्सेदारी की भावना है, को तनावों का संस्थाकरण (Institutionalised tensions) करने वाली व्यवस्था भी कहा जा सकता है।

अमेरीका के संविधान के विपरीत, जिसमें केवल केन्द्र सरकार की शक्तियों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया

है कि अवशेष शक्तियाँ राज्यों को दी गई हैं, भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की एक अधिक निश्चित सुस्पष्ट योजना अपनाई है।

2.2.2 उद्देश्य

- केन्द्र–राज्य संबंधों को जानना।
- भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन का तर्क समझना।
- संघीय राजनीति के लिए शक्तियों के विभाजन के महत्त्व का मूल्यांकन करना।
- केन्द्र–राज्य संबंधों एवं संघवाद की प्रकृति के बीच संबंधों का विश्लेषण करना।

2.2.3 केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की विशेषताएँ (Features of Centre State Relations)

संविधान द्वारा प्रस्तुत केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का विश्लेषण करने से निम्न तथ्य उभरते हैं–

1. शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार – संविधान–निर्माताओं ने केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया है। वह किसी भी सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। वह अवशिष्ट शक्तियों का उपभोग कर सकती है और राज्यपालों द्वारा राज्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। उसकी आय के साधन अधिक हैं और वह राज्यों को ऋण भी दे सकती है।
2. राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य – संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य हो गई है। जिस प्रकार नगरपालिकाएँ राज्य सरकारों पर पूर्णतः निर्भर है, उसी प्रकार राज्य सरकारें भी सभी क्षेत्रों में संघ सरकार पर निर्भर है।
3. सहयोगी संघवाद – ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, ''भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संविधान सभा ने एक विशिष्ट प्रकार के संघवाद को जन्म दिया है'' जिसे ए.एच.वर्च ने 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती, साथ ही दोनों ही सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है।
4. भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक – राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की उद्घोषणा किए जाने पर राज्यों की स्वायत्तता को स्थगित किया जा सकता है और इस दिशा में राष्ट्रपति राज्य का सारा कामकाज अपने प्रतिनिधि राज्यपाल के माध्यम से चला सकता है। केन्द्र की शक्तियाँ आपातकाल में ही नहीं अपितु सामान्यकाल में भी बढ़ाई जा सकती हैं, अतः भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक कही जा सकती है।

संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध।
2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध।
3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध।

2.2.4 केन्द्र–राज्य विधायी सम्बन्ध (Legislative Relations)

संघ व राज्यों के विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है जिन्हें संघ सूची (Union List),

राज्य सूची (State List) व समवर्ती सूची (Concurrent List) का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनूसूची में रखा गया है।

संघ सूची (Union List) – इस सूची में राष्ट्रीय महत्त्व के ऐसे विषयों को रखा गया है जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय हैं जिनमें कुछ प्रमुख यह हैं – रक्षा, विदेशिक मामले, युद्ध व सन्धि, देशीयकरण व नागरिकता, विदेशियों का आना–जाना, रेलें, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खानें व खनिज आदि।

राज्य सूची (State List) – इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं, जो क्षेत्रीय महत्त्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 66 विषय थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन (1976) से इस सूची के चार विषय शिक्षा, वन, जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नाप–तोल, राज्य सूची से समवर्ती सूची में कर दिए गए हैं। राज्य सूची के कुछ प्रमुख विषय हैं : पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई और सड़कें, आदि।

समवर्ती सूची (Concurrent List) – इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं, जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दर्षष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य – दोनों को ही विधियाँ बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि इस सूची के विषय पर संघीय तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो, तो सामान्यतः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं – फौजदारी विषय तथा प्रक्रिया, निवारक निरोध, विवाह और विवाह–विच्छेद, दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, आर्थिक और सामाजिक योजना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, पुनर्वास और पुरातत्त्व आदि।

अवशेष विषय (Residuary List) – संयुक्त राज्य अमरीका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया में अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाइयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की तरह अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गई है।

राज्य सूची के विषयों पर संसद की व्यवस्थापन शक्ति (Parliament can Legislate on the Subjects of State List)

सामान्यता संविधान द्वारा किए गए इस शक्ति–विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघीय सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा, लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :

(i) राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्त्व का होने पर – संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार, यदि राज्य सभा अपने दो–तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में निहित कोई विषय राष्ट्रीय महत्त्व का हो गया है, तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्यसभा द्वारा प्रस्ताव पुनः स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वषद्धि और हो जाएगी। इसकी अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त यह 6 माह तक प्रयोग में आ सकता है।

(ii) राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर – अनुच्छेद 252 के अनुसार, यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाए, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार सांसदों को प्राप्त हो जाता है। राज्यों के विधानमण्डल न तो उन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्णरूप से समाप्त कर सकते हैं।

(iii) संकटकालीन घोषणा होने पर (अनुच्छेद 250)– संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिका शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है। इस घोषणा की समाप्ति के 6 माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत् चलते रहेंगे।

(iv) विदेशी राज्यों से हुई सन्धियों के पालन हेतु (अनुच्छेद 253) – यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की सन्धि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है, तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(v) राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर (अनुच्छेद 356) – यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डल के समस्त अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है।

(vi) कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने और कुछ की अन्तिम स्वीकृति के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक – उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों प कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304 (ख) के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं, जिनको राज्य विधानमण्डल में प्रस्तावित किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व–स्वीकृति की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, वे विधेयक, जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दर्षष्टि से उस राज्य के अन्दर या उसके बाहर, वाणिज्य या मेल–जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

अनुच्छेद 31(ग) के अनुसार, राज्य सूची के ही कुछ विषयों पर राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा पारित विधेयक उस दशा में अमान्य होंगे, यदि उन्हें राष्ट्रपति ने विचारार्थ रोक रखा हो और उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति न प्राप्त कर ली गई हो। उदाहरण के लिए, किसी राज्य द्वारा सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिए बनाए बए कानूनों का समवर्ती सूची के विषयों के बारे में ऐसे कानूनों, जो संसद में उससे पहले बनाए गए कानूनों के प्रतिकूल हों या उन पर जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर लगाया जाने वाला कर हो, जिन्हें संसद ने समाज के जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दिया है, राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक के बारे में अपनी सहमति देने से इन्कार कर सकता है और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति बिना कोई कारण बताए विधेयकों को अस्वीकृति कर सकता है। सन् 1959 में केरल के राज्यपाल ने केरल कृषि भूमि सम्बन्धी विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा। इसी बीच अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा द्वारा राज्य विधानसभा को भंग कर दिया गया। नए चुनावों के बाद बनी विधानसभा ने राष्ट्रपति द्वारा किए गए सुझावों को शामिल कर कानून को सन् 1961 में पास कर दिया।

केन्द्र के द्वारा उन संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर व्यवहार में भी अपने आपको शक्तिशाली बनाने का कार्य किया गया है। उदाहरण के लिए 1954 में तृतीय संशोधन के आधार पर समवर्ती सूची के विषयों में वृद्धि की गई, जिससे कि खाद्यान्न के अभाव में उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार आवश्यक कदम उठा सके।

राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप – राज्यों द्वारा यह भी शिकायत की गई है कि केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया है, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। सन् 1951 में संसद ने 'उद्योग विकास एवं नियन्त्रण अधिनियम' पारित किया, जिसमें उन उद्योगों का उल्लेख किया गया, जिनको जनहित में केन्द्र द्वारा नियन्त्रित करना आवश्यक था। धीरे–धीरे अनेक उद्योगों को इस अधिनियम के अन्तर्गत ले लिया गया। इस प्रकार राज्य सूची में वर्णित 24, 26 तथा 27 संख्या वाले विषयों पर केन्द्र का अधिकार स्थापित हो गया। यही नहीं, रेजर पत्ती, कागत, गोंद, जूते, माचिस, साबुन, आदि विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया। राज्य के नेताओं का कहना है कि इस प्रकार के अत्यधिक केन्द्रीयकरण से राज्यों का आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में साधारणतया संघीय संसद तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कार्यक्षेत्र संविधान द्वारा विभाजित हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में संघ सरकार द्वारा सरकार के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण किया जा सकता है। के.वी. राव ने ठीक ही कहा है कि ''राज्य सूची में दिए गए विषय कितने महत्त्वहीन, कितने संदिग्ध और अस्पष्ट हैं।'' पायली के अनुसार ''विधायी सत्ता के वितरण की सूची योजना से निःसन्देह केन्द्रीयकरण की एक प्रबल प्रवषत्ति प्रकट होती है।'' डॉ. महादेवप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि ''जब राज्यों के सिर पर संघ का भय सर्वदा विद्यमान रहता है तो उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वे पूर्ण विश्वास के साथ अपने अधिकारों की माँग दष्ढ़तापूर्वक करेंगे।'' अमर नन्दी ले लिखा है कि ''विशाल मूर्ति की भांति केन्द्र ही सारे रंगमंच पर छाया रहता है।''

2.2.5 केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध (Centre-State Administrative Relations)

संघात्मक शासन की सबसे कठिन समस्या संघ तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों का समायोजन करना है। यदि संविधान में तत्सम्बन्धी स्पष्ट तथ्य उपलब्ध न हों तो दोनों को अपना दायित्व निभाने में कठिनाई का अनुभव होता है। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में विस्तष्त उपबन्धों की आवश्यकता अनुभव की ताकि प्रशासनिक क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के मध्य किसी प्रकार के विवाद उत्पन्न न हों।

प्रशासनिक सम्बन्ध : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में (Administrative Relations : Constitutional Aspect)

भारतीय संविधान में ग्यारहवें भाग के दूसरे अध्याय में केन्द्र तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 कें अनुसार, राज्यों की प्रशासनिक शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं, जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों में सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियों को संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों द्वारा सीमित रखा गया है जो या तो संविधान द्वारा या संसदीय विधि द्वारा प्रदत्त हैं।

प्रशासनिक सम्बन्धों में केन्द्र को राज्यों के ऊपर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु इसके बावजूद राज्यों को स्वायत्तता एवं जिम्मेदारी का बड़ा क्षेत्र मिला हुआ है। फिर भी, 'कुछ विद्वानों को महसूस होता है कि इन सम्बन्धों ने राज्यों की स्वायत्तता को कम किया है क्योंकि एक ही दल का बोलबाला है और ''राज्यों के मुकाबले एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था के रूप में केन्द्रीय कार्यपालिका का उदय हुआ है तथा केन्द्र को अधिक अधिकार मिल गए हैं।''

राज्यों के ऊपर संघीय नियन्त्रण की विधियाँ – संविधान के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकता की दषष्टि से संघीय सरकार को राज्यों के सम्बन्ध में कतिपय प्रशासनिक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो निम्नवत् हैं–

(1) राज्यों का दायित्त्व (Obligation of the States) – संविधान के अनुसार राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन होता रहे। हर राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह संसद के कानूनों को अमल में लाने के लिए हर संभव उपाय काम में लाए। राज्यों का यह भी दायित्व है कि वे केन्द्रीय प्रशासन में कोई बाधा उत्पन्न न होने दें।

(2) केन्द्र सरकार राज्यों को निर्देश दे सकती है (The Centre may given directions to the States) – केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों को यह निर्देश दे सके कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय व सैनिक महत्त्व के मार्गों के पुलों आदि का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार ही करती है, परन्तु केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त है कि इस प्रकार के मार्गों के निर्माण व उसके उचित रख–रखाव के लिए वह राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सके। इसी प्रकार रेलमार्गों तथा रेलगाड़ियों की सुरक्षा के लिए भी निर्देश जारी किए जा सकते हैं।

(3) केन्द्र राज्यों की सरकारों का उपयोग अपने एजेण्ट के रूप में कर सकता है (The Union may Constitute States as its Agents) – राष्ट्रपति राज्यों की सरकारों अथवा उसके पदाधिकारियों को अपने एजेण्ट के रूप में कोई भी कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि संघ सूची में दिए गए किसी भी विषय में सम्बन्धित कोई भी कार्य राज्यों के पदाधिकारियों को सौंपा जा सकता है।

(4) सरकारी कृत्यों, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाही को पूरी मान्यता दी जाएगी (Full faith shall be given to Public Acts, Records and Judicial Proceedings) – केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों का यह कर्त्तव्य है कि वे सभी सरकारी कृत्यों का आदर करें और देश के सभी न्यायालयों द्वारा दिए बए अन्तिम निर्णयों को लागू करें।

(5) दो या दो से अधिक राज्यों में बहने वाले जलाशयों व नदियों के जल का बंटवारा (Water of Inter-State rives) – संसद का यह अधिकार है कि अन्तर्राज्यीय नदियों के बंटवारे से उत्पन्न विचार को निपटाने के लिए वह उचित कानून बनाए। संसद किसी भी नदी या नदी घाटी परियोजना के पानी के इस्तेमाल, वितरण या नियन्त्रण–सम्बन्धी विवाद के सिलसिले में मध्यस्थता की व्यवस्था कर सकती है। संसद, सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवादों पर विचार करने से रोक सकती है। यह एक महत्त्वपूर्ण अधिकार है और इसका इस्तेमाल कृषि एवं औद्योगिक विकास के लिए पानी और बिजली जैसी सुविधा की व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। साथ ही इसका उपयोग दामोदर घाटी निगम जैसी बहु–उद्देश्यीय परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है।

(6) अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना (Establishment of an Inter-State Council) – संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना करे, जिसके निम्नलिखित तीन विशेष कार्य होंगे –

(i) राज्यों के बीच उठ खड़े होने वाले विवादों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में सलाह देना।

(ii) उन विषयों पर छानबीन कर विचार करना जिनमें राज्यों की एकसमान दिलचस्पी हो।

(iii) इन विषयों, और विशेषकर इनसे सम्बन्धित नीति एवं कार्य के बेहतर समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना। राष्ट्रपति इस परिषद् के संगठन और प्रक्रिया को निर्धारित एवं इसके कर्त्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

(7) अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services) – संघ द्वारा राज्यों को नियन्त्रित करने का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है अखिल भारतीय सेवाएँ। यद्यपि राज्यों और केन्द्र की पथ्थक् सेवाएँ और लोक सेवा आयोग है, फिर भी संविधान अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिए संघ को अधिकार देता है। संघ को इन सेवाओं के सदस्यों को राज्यों के महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर रखने का अधिकार देता है।

(8) राज्यपाल (Governer) – राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और एक प्रकार से वे राज्यों में केन्द्र के एजेण्ट के नाते कार्य करते हैं। उनके माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्यों के शासन पर अंकुश रख सकती है।

(9) संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव (Effect of failure of comply with or to given effect to directions given by the union) – संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि राज्य की सरकार केन्द्र के निर्देशों का पालन न करे तो राष्ट्रपति यह उद्घोषणा कर सकता है कि राज्य का संवैधानिक ढाँचा विफल हो गया है। इस घोषणा का परिणाम यह होगा कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाएगा।

राज्यों की स्वायत्तता में कमी – संक्षेप में, संविधान केन्द्रीय कार्यपालिका के प्राबल्य का प्रावधान करता है। हक्की और शर्मा की दलील है कि संघीय प्रशासनिक सम्बन्धों की क्रिया के कारण राज्यों की स्वायत्तता में इतनी कमी आ गई है कि संघीय राज्यतंत्र के सहकारी स्वरूप पर आघात पहुंचा है।

केन्द्र–राज्य विवादास्पद क्षेत्र : कतिपय प्रशासनिक मामले (Centre-State Areas of Conflict : Administrative Aspects)

अपने प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय संघ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता थी – केन्द्र राज्य सहयोग। ज्यों–ज्यों संविधान और संघ प्रणाली प्रौढ़ होती गई त्यों–त्यों उसमें दरारें दिखने लगी और आज अनेक ऐसे मुद्दे प्रशासनिक तौर से दिखाई देते हैं जहां केन्द्र और राज्यों में मतभेद की झलक मिलती है।

चतुर्थ आम चुनाव (1967) में पूर्व 'नेहरू युग' में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध 'मधुर' कहे जा सकते हैं। इस कालावधि में देश के राजनीतिक क्षितिज पर कांग्रेस दल का एकाधिकार था और केन्द्र व राज्यों के बीच संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। केन्द्र–राज्य विवाद को 'कांग्रेस दल के अंतरंग' का मामला (Intra-Party Affair) समझा जाता था और उसका निराकरण उसी प्रकार खोज लिया जाता था जैसे किसी पारिवारिक विवाद का हल खोजते हैं। नेहरू जैसे करिश्माती व्यक्तित्व के आगे तो छोटे–मोटे विवादों का हल खोजना कोई मुश्किल भी नहीं था। किन्तु

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उस युग में मतभेद के कोई मुद्दे नहीं होते थे। हम सभी जानते हैं कि राज्यों के कतिपय शक्तिशाली मुख्यमंत्री तो कभी–कभी दबाव की भाषा में ही बात करते थे। पश्चिमी बंगाल में तात्कालिक मुख्यमंत्री डॉ. बी.सी. राय ने 'दामोदर घाटी कॉरपोरेशन' (डी.वी.सी.) के मामले पर कितना दबावपूर्ण और उग्र रूख अपनाया था? भारत में पनपी 'कांग्रेस–व्यवस्था' (Congress System) अथवा 'एक–दल प्रधान व्यवस्था' की विशेषता थी 'पशमर्श और सर्वानुमति की विधि' (Consulation-Consensus Technique) और इस विधि के माध्यम से मतभेदों का उग्र रूप धारण नहीं करने दिया जाता था। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, ऐसा लगता है मानो संघ व्यवस्था एकात्मक दलीय ढाँचे के अन्तर्गत कार्यरत थी और यह आश्चर्य की ही बात है कि इसने संघ व्यवस्था के विकास का मार्ग अवरुद्ध नहीं किया।

चतुर्थ आम चुनावों के बाद (और छठी, आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं एवं तेहरवीं लोकसभा एवं उसके बाद राज्य विधानसभाओं के चुनावों के बाद) भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया। अब संघ प्रणाली का क्रियान्वयन 'एक–दल प्रधान ढाँचे' (One-Party Dominant Framework) के बजाय 'बहुदलीय प्रतियोगी राजनीति' (Multi-Party Competitive Politics) के ढाँचे में होने लगा। चतुर्थ आम चुनावों के बाद कांग्रेस दल का एकाधिकार समाप्त हुआ और अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की सरकारें बनी। ये गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार को अविश्वास और शंका की दषष्टि से देखने लगी। इसी कालावधि में कई राज्यों में क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक दलों का अभ्युदय हुआ। क्षेत्रीय दलों का ध्येय अपनी शक्ति में वषद्धि करना और केन्द्रीय सत्ता को दुर्बल करना रहा। गैर–कांग्रेस दलों के मुख्यमंत्री तो प्रायः छोटी–छोटी बातों को तूल देने लगे और केन्द्र के विरुद्ध बार–बार शिकायते प्रस्तुत करने लगे। वस्तुतः केन्द्र और राज्यों के मध्य तनाव और मतभेद के युग का सूत्रपात हुआ। संक्षेप में, केन्द्र तथा राज्यों के मध्य उठने वाले विवादास्पद प्रशासनिक मुद्दे निम्नलिखित हैं –

(1) राज्यपाल का पद – राज्यपाल राज्य का संवैधानिक कार्यकारी है। चतुर्थ आम चुनावों के बाद राज्यपालों के अधिकार–क्षेत्र, नियुक्ति के तरीके, आदि को लेकर केन्द्र–राज्य मतभेद उत्पन्न हुए। गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें बराबर यह आरोप लगाती रही कि केन्द्र राज्यपालों के माध्यम से उनकी सरकारों को पदच्युत करने में लगा हुआ है। गैर–कांग्रेसी मुख्यमन्त्रियों का यह भी कहना था कि उनके राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति करते समय उनसे परामर्श किए जाने की परम्परा का केन्द्र पालन नहीं कर रहा है। कतिपय राज्यपालों ने तो सुनिश्चित लोकतान्त्रिक अभिसमयों का भी पालन नहीं किया और ऐसा आभास मिलता था कि उन्होंने केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट की भूमिका का निर्वाह करने में भी अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली। राज्यपाल धर्मवीर की भूमिका को लेकर पश्चिमी बंगाल और केन्द्रीय सरकार के मध्य विवाद इतना उग्र हो गया कि अन्ततः राज्यपाल को स्थानान्तरित ही करना पड़ा। आन्ध्र प्रदेश के तात्कालिक राज्यपाल रामलाल ने एन.टी. रामाराव की तेलगुदेशम सरकार (1984) को बर्खास्त करके राज्यपाल पद को अत्यन्त हास्यास्पद बना दिया, जबकि विधानसभा में रामाराव को स्पष्ट बहुमत प्राप्त था। समूचे आन्ध्र प्रदेश में राज्यपाल और केन्द्र के खिलाफ जनआक्रोश जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचा तो रामाराव की सरकार को पुनः पदासीन करना पड़ा और राज्यपाल को बेआबरू होकर हटना पड़ा। तमिलनाडु के राज्यपाल डॉ. चन्ना रेड्डी तथा मुख्यमन्त्री सुश्री जयललिता के सम्बन्धों में इतनी कड़वाहट आ गई कि तमिलनाडु विधानसभा ने राज्यपाल डॉ. रेड्डी को हटाने के लिए प्रस्ताव पारित कर दिया। लोकतान्त्रिक मान्यताओं, परम्पराओं और संवैधानिक मर्यादाओं का, राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने (21 फरवरी 1998) उत्तर प्रदेश की कल्याण सिंह सरकार को उसे अपना बहुमत सिद्ध करने का मौका दिए बिना ही बर्खास्त करके जो मखौल बनाया था, उस पर अंतरिम–स्थगनादेश देकर

तथा कल्याण सिंह सरकार को तत्काल बहाल करने का निर्देश देकर इलाहाबाद हाईकोर्ट की खण्डपीठ ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बनाये रखने का ऐतिहासिक कार्य किया। भाजपा से तात्कालिक केन्द्रीय सरकार की नाराजगी हो सकती है, लेकिन राजनीतिक लड़ाई राज्यपाल को माध्यम बनाकर लड़ना लोकतान्त्रिक आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल था। खण्डपीठ का फैसला राज्यपाल रोमेश भण्डारी के गाल पर करारा तमाचा था और इसके बाद उनके पास अपने पद पर बने रहने का कोई अधिकार शेष नहीं बचा। राज्य विधानसभा में शक्ति परीक्षण में कल्याण सिंह की जीत के बाद भी भण्डारी 15 मार्च, 1998 तक निर्लज्जता से अपने पद पर बने रहे। 30 जून 2001 को तमिलनाडु में पूर्व मुख्यमंत्री करुणानिधि और दो केन्द्रीय मंत्रियों – मुरासोली मारन और टी.आर. बालू की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में राज्यपाल फातिमा बीवी द्वारा समय पर और निष्पक्ष रिपोर्ट न भेजने पर बर्खास्तगी के भय से तत्काल त्याग–पत्र दे देना राज्यपाल की भूमिका को विवादास्पद बना देता है।

(2) नौकरशाही – नौकरशाही दूसरा प्रशासनिक विषय है जिस पर केन्द्र तथा राज्यों के बीच मतभेद दिखलाई देते हैं। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से संघ सरकार राज्यों पर नियन्त्रण रखती है। संविधान में संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अलग–अलग सेवाओं की व्यवस्था की गई है, परन्तु ब्रिटिश शासन से विरासत में हमने एकीकृत उच्च प्रशासनिक सेवाओं की पद्धति भी प्राप्त की है, तदनुसार अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी संघ और राज्य दोनों जगह कार्य करते हैं। संविधान में यह व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं और भारतीय पुलिस सेवा संघ और राज्यों में समान रूप से कार्य करेंगी। चतुर्थ आम चुनाव के बाद नौकरशाही के सम्बन्ध में दो प्रश्न सामने आएः पहला प्रश्न यह था कि क्या नौकरशाही गैर–कांग्रेस राज्य सरकारों की नीतियों का क्रियान्वयन उसी उत्साह तथा प्रतिबद्धता से कर पाएगी, जिस उत्साह से वह अब तक कांग्रेस सरकार की नीतियों का क्रियान्वयन करती थी। यह प्रश्न वस्तुतः सरकारी कर्मचारियों की तटस्थता से जुड़ा हुआ है। कतिपय लोगों के मन में यह धारणा थी कि तीस वर्षों तक कांग्रेस दल के कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यान्वित करने वाली नौकरशाही तमिलनाडु में द्रमुक–अन्ना द्रमुक, केरल में साम्यवादी दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल और पंजाब में अकाली दल की नीतियों और कार्यक्रमों का सहजता से कैसे क्रियान्वयन कर पाएगी? दूसरा सवाल नई अखिल भारतीय सेवाओं के गठन से सम्बन्धित था। कुछ गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों ने कहा कि अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट होते हैं तथा वे राज्य की नीतियों को ठीक ढंग से लागू नहीं करते हैं। कई राज्यों में निम्नलिखित कारणों से अखिल भारतीय सेवाएं राज्यों की स्वायत्तता को कम करती हैं। तष्तीय, अखिल भारतीय सेवाएं केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कटुता बढ़ाने का कारण इसलिए बन जाती है क्योंकि उनकी नियुक्ति और पदोन्नति अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के मामलों पर केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करती है और राज्यों में उनके प्रति अपनत्व की भावना नहीं दिखलाई देती है।

करुणानिधि, मारन एवं बालू की गिरफ्तारी (30 जून, 2001) प्रकरण से जुड़े चेन्नई पुंलिस आयुक्त के. मुथुकुरुमन, मध्य चेन्नई के संयुक्त पुलिस आयुक्त सी. जार्ज और त्रिप्लीकेन के पुलिस आयुक्त क्रिस्टोफर नेल्सन को केन्द्र ने केन्द्रीय कैडर में तबादला करने के निर्देश दिए हैं, जबकि तमिलनाडु सरकार का मत है कि राज्य सरकार की स्वीकृति के बिना इन अधिकारियों का तबादला नहीं किया जा सकता। इससे केन्द्र–राज्य विवाद बढ़ने की आशंका है।

(3) कानून और व्यवस्था के मामलों पर राज्यों को केन्द्रीय निर्देश –क्या राज्य सरकारों के लिए केन्द्रीय सरकार के लिए केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन करना बाध्यकारी है? यदि राज्य सरकारें संघीय निर्देशों का

पालन न करें तो क्या व्यवस्था होगी? यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जब राज्य सीमा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति की सुरक्षा राज्य सरकारें न कर सकें तो कन्द्रीय सरकार क्या करे? जब राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को कतिपय राज्यों में तैनात किया तो केरल, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु की सरकारों ने केन्द्र की इस शक्ति पर आपत्ति उठाई और इससे केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों में कुटता आई। 18 सितम्बर 1968 को केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को एक अध्यादेश द्वारा वांछित निर्देश प्रदान किए। केरल की साम्यवादी सरकार ने केन्द्रीय अध्यादेश को संविधान विरोधी और श्रमिक विरोधी कहकर उसे मानने से इन्कार कर दिया। ऐसी गम्भीर स्थिति में जब राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस तैनात की गई तो केन्द्र–राज्य सम्बन्ध का उग्रतम रूप उभरने लगा। मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने आरोप लगाया कि राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस का आगमन राज्य के आन्तरिक मामलों में सरासर हस्तक्षेप है। वस्तुतः केन्द्र का यह संवैधानिक अधिकार है कि वह कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए, सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए, केन्द्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस राज्यों में तैनात करें, किन्तु वे राज्य सरकारें जो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से मेल नहीं खाती, इसे राज्य के आन्तरिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप कहकर केन्द्र–राज्य में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देती हैं।

(4) आर्थिक नियोजन – के. सन्थानम् के अनुसार, नियोजन व्यवस्था ने नीति और वित्त सम्बन्धी सभी मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया है। वस्तुतः नियोजन का संघवाद पर जो प्रभाव पड़ा है, उसने केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन दिया है। भारत में सम्पूर्ण देश–केन्द्र एवं राज्यों के लिए योजना निर्माण का कार्य योजना आयोग करता है। यह एक केन्द्रीय अभिकरण है जिसका निर्माण केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के एक प्रस्ताव के आधार पर हुआ है। इसमें प्रधानमंत्री, कुछ केन्द्रीय मंत्री तथा विशेषज्ञ होते हैं। इसमें राज्यों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यह नीतियों की एकरूपता पर बल देता है। यह आयोग समूचे देश के लिए यह मानकर योजना बनाता है कि मोटे तौर से सभी राज्यों की परिस्थितियां समान है। नियोजन का सम्बन्ध शासन के समस्त विषयों से है, चाहे वह विषय संघ सूची का हो अथवा राज्य सूची का। राज्य सूची के विषयों पर भी योजना आयोग एक 'सुपरमैन' बन गया है। नियोजन के परिणामस्वरूप ही केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। यही नहीं, आज रेजर पत्ती, कागज, गोंद, माचिस, साबुन जैसे विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया है।

बदले राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यह देखा गया है कि अब राज्य योजना आयोग तथा केन्द्रीय सरकार के निर्णयों को ज्यों–का–त्यों स्वीकार नहीं कर लेते हैं। इस बात का अभ्यास 19 व 20 अप्रैल, 1969 को दिल्ली में हुई राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक से मिलता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् के इतिहास में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को औपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिमी बंगाल तथा केरल के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। वस्तुतः अब अनेक राज्यों में केन्द्र की सरकार गठित करने वाले दलों से भिन्न दलों की सरकारें होने के कारण हाँ में हाँ मिलाने की प्रवृत्ति नहीं रही और आर्थिक नियोजन विवादास्पद मसला बनता जा रहा है।

केन्द्र–राज्य प्रशासनिक समायोजन के उपकरण (Instruments of Centre-State Administrative Co-Ordination)

केन्द्र और राज्यों के मध्य विचार–विमर्श आवश्यक ही नहीं, वांछनीय भी है। ऐसा करने से एक संघ व्यवस्था में

केन्द्र–राज्यों के बीच साझेदारी की भावना बढ़ती है और सद्भाव के साथ कार्य करने के लिए निर्णय प्रक्रिया के 'आगत' (इनपुट) भी बढ़ते हैं। यद्यपि भारत के संविधान ने केन्द्रीय सरकार पर बहुत सारे कार्यों का भारी भार डाला है, फिर भी राष्ट्र निर्माण के सभी महत्वपूर्ण कार्यों में जैसे – कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शान्ति व्यवस्था, आदि में केन्द्र सरकार राज्यों सरकारों पर गम्भीर रूप से निर्भर रहती है। इस सम्बन्ध में क्योंकि केन्द्र के निर्देश राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं हो सकते, अतः यह आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों के बीच विचार–विमर्श के यन्त्र विकसित किए जाएं। संविधान की समवर्ती सूची में ऐसे 47 विषयों का उल्लेख है, जिन पर केन्द्र और राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं। इस सूची के विषयों पर प्रशासन में केन्द्र और राज्यों के मध्य परामर्श का क्षेत्र और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

भारत में केन्द्र–राज्य प्रशासनिक समायोजन की दृष्टि से राज्यपाल सम्मेलन, राष्ट्रीय विकास परिषद्, मुख्यमंत्री सम्मेलन, मुख्य सचिव सम्मेलन, पुलिस महानिदेश सम्मेलन, आदि महत्वपूर्ण हैं। उपर्युक्त में से प्रथम तीन राजनीतिक स्तर पर कार्य कर रहे हैं। प्रशासनिक स्तर पर जो सम्मेलन महत्वपूर्ण हैं उनमें मुख्य सचिवों का सम्मेलन तथा विभिन्न कार्यकारी सचिवों के सम्मेलन उल्लेखनीय हैं। 1990 में अन्तर्राज्यीय परिषद् का भी गठन किया गया है।

फिर भी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में ऐसे परामर्श यंत्रों का विकास का एक नया प्रयोग है। यह अभी असन्तुलित और अविकसित है। उनका प्रयोग अधिकतर उन्हीं विषयों के लिए हुआ है, जो राज्य सूची में हैं। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि केन्द्र ने अपने निर्णयों को राज्यों द्वारा मनवाने के लिए ही इसका प्रयोग किया है।

निष्कर्ष : प्रशासनिक संघ का स्वरूप

भारतीय संघ व्यवस्था में प्रशासनिक एकरूपता पर बल दिया गया है। अमरीका की तरह दोहरी न्याय व्यवस्था का प्रबन्ध करने के स्थान पर न्याय व्यवस्था को एकीकृत कर दिया गया है। अखिल भारतीय प्रशासनिक और पुलिस सेवाओं का प्रावधान किया गया है। भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के अधीन भारत की लेखा परीक्षा तथा लेखा सेवा का आयेजन है, जो एक केन्द्रीय सेवा है, किन्तु यह संघ के साथ–साथ राज्यों के व्यय का लेखा तथा परीक्षा कार्य को भी सम्पन्न करती है। निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और आयोग संसद के साथ–साथ राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचनों को भी सम्पन्न करता है। संघ और राज्यों के बीच अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करने के लिए संघ की स्थिति महत्त्वपूर्ण हैं। केन्द्रीय सरकार के पास समन्वयकारी शक्तियाँ हैं और क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से केन्द्र राज्य सरकारों की शक्तियों पर नियन्त्रण रखता है। संकटकालीन शक्तियों के प्रवर्तन काल में केन्द्रीय शासन को राज्यों पर सभी प्रकार के प्रशासनिक नियन्त्रण प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण नारमन डी. पामर ने भारतीय संघ व्यवस्था को प्रशासनिक संघ कहकर पुकारा है।

केन्द्रीकरण की विद्यमान प्रवृत्ति के बावजूद भी प्रशासनिक स्वरूप वाले भारतीय संघ के घटक राज्यों के हाथों में देश के शासन का आज भी बहुत बड़ा भाग है। यद्यपि उन्हें आर्थिक संसाधनों के लिए केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है और विकास कार्यों का संयोजन भी केन्द्र करता है, फिर भी राज्यों में अपने अधिकारों पर जोर देने की प्रवृत्ति बढ़ी है और देश के शासन में वे ज्यादा हाथ चाहते हैं। भारत में सरकारी नीतियों और विकास कार्यक्रमों को अमल में लाने का काम राज्य शासन का ही है। पाल.एच. एपिलबी ने ठीक ही लिखा है भारतीय शासन–व्यवस्था ऐसी है कि इसमें प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्य राज्य सरकारें करती हैं और योजनाओं की क्रियान्विति के लिए केन्द्र को उन्हीं पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राज्य की आर्थिक स्वायत्तता के समर्थकों का यह कहना कहाँ तक सार्थक है कि हमारे राज्य प्रशासनिक दृष्टि से केन्द्रीय सरकार के अनुचर मात्र हैं? हाँ, यदि राज्यों के वित्तीय संसाधनों में वृद्धि के उपाए

किए जाते हैं तो निश्चित ही उनकी प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि होगी। वस्तुतः राष्ट्रीय एकता और तीव्र विकास के लिए शक्तिशाली केन्द्र और समृद्ध राज्यों के संघीय ढाँचे का होना ही लाभकारी है। राज्यों को महसूस करना चाहिए कि दुर्बल केन्द्र का सिद्धान्त राजनीतिक दृष्टि से आत्महत्या का समतुल्य होगा। यदि शक्ति का सन्तुलन राज्यों की तरफ झुकता है तो राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होगा, जिससे भारी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति शून्य उभरेगा।

2.2.6 केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relations)

संघात्मक शासन–व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता अपितु वित्तीय स्रोतों का भी बंटवारा होता है। वित्तीय स्रोतों के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कि संघात्मक शासन प्रणाली और यह विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं को संकटग्रस्त करती रही है।

केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध : संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धांत हैं : कार्यक्षमता, पर्याप्तता तथा उपयुक्तता। इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी, अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गई। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का निरूपण निम्न प्रकार किया गया है :

(1) कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन – भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएँ हैं। प्रथम, संघ तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण विभाजन कर दिया गया है और द्वितीय, करों से प्राप्त आय का बंटवारा होता है।

संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं : निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय कर, वाहनों पर चुंगी कर, आदि।

संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले करों के उदाहरण : बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डियों, चैंको, आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौंक–श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

संघ तथा अरोपित तथा संग्रहित, किन्तु राज्यों को सौपेन जाने वाले करों के उदाहरण हैं : कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान–प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार–पत्रों के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार–पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय पर कर।

कतिपय कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं, पर उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आय–कर का विभाजन संघीय भू–भाग के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आय–कर के अतिरिक्त दवा तथा शौंक–श्रृंगार चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

(2) सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए दिया जाने वाला अनुदान – संविधान के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा राज्यों को चार तरह से सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। प्रथम, पटसन व

उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है, उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों – बिहार, बंगाल, असम व उड़ीसा – को दे दिया जाता है। द्वितीय, बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिए भी योजनाओं के लिए भी सहायक अनुदान दिया जाता है। चतुर्थ, राज्य को आर्थिक कठिनाईयों से उबारने के लिए केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता कर सकता है।

(3) ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध – संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वे विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य सरकार पर संघ सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज संघ सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज समय संघ सरकार किसी भी प्रकार की शर्त लगा सकती है।

(4) करों से विमुक्ति – राज्यों द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता, जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार संघ सरकार भी राज्य सम्पत्ति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

(5) भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण – भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियन्त्रण करती है।

(6) वित्तीय संकटकाल – वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों में आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान, आदि संघ के करों की आय में भाग बंटाने में सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों का निर्देश भी दे सकती है।

निष्कर्षतः यह कहना उचित है कि भारतीय संघवाद की सामान्य प्रकृति अर्थात् 'केन्द्रीयता' के अनुकूल की उपबन्धों की योजना हुई है। केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की अपेक्षा वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। प्रो. एम. वी. पायली के शब्दों में, ''वर्तमान स्थिति में राज्यों के पास सीमित साधन हैं और अपनी अधिकांश विकास योजनाओं के लिए उन्हें केन्द्र की सहायता की आवश्यकता रहती है इसलिए उन्हें केन्द्र का नेतष्त्व स्वीकार करना पड़ता है। कभी–कभी केन्द्र के आदेशों के आगे भी झुकना पड़ता है।''

केन्द्र–राज्य तनाव क्षेत्र : वित्तीय तथा योजना सम्बन्धी विषय (Areas of Conflict : Financial Aspects)

सैद्धान्तिक दृष्टि से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवादों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम, संस्थागत विषय जैसे राज्यपाल का पद, नौकरशाही की भूमिका और संविधान का स्वरूप, आदि विषयों को लेकर उत्पन्न होने वाले विवाद। द्वितीय, कार्यात्मक विषय जैसे कानून और व्यवस्था के अधिकार–क्षेत्र के प्रश्न पर विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद, भाषा विवाद, राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप, आवश्यक वस्तुओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण, आदि मसले। तृतीय, वित्तीय और योजना सम्बन्धी विषय – संघीय शासन–व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय और योजना सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर मतभेद होना स्वाभाविक है। 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच निम्नलिखित वित्तीय और योजना सम्बन्धी विषयों को लेकर विवाद उभरे हैं :

(i) **वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था**– वर्तमान में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था से अधिकांश राज्य सन्तुष्ट नहीं है। प्रचलित व्यवस्था में करों से प्राप्त होने वाली आय का प्रधान भाग केन्द्रीय कोष में जाता है और अपने लोककल्याण एवं जनविकास सम्बन्धी दायित्वों की वृद्धि के बावजूद भी राज्यों की आय के स्रोत अत्यन्त अल्प रखे गए हैं। इसके परिणामस्वरूप राज्यों की योजनाओं की सफलता बहुत कुछ केन्द्रीय अनुदान पर भी निर्भर हो जाती है। सन् 1967 के बाद राज्यों की यह शिकायत रही है कि केन्द्र की सरकार उन राज्यों को अधिक मदद देती हैं जहाँ राज्य सरकारें उसके अनुकूल हैं। योजना आयोग के माध्यम से भी केन्द्र राज्यों पर न केवल नियन्त्रण रखता है बल्कि भेदभाव भी बरतता है।

इसके अतिरिक्त, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान एवं सहायता बहुत ही कम हैं और वे अपने बढ़ते हुए दायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ हैं। राज्यों की योजना की आकृति तय करने का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं हैं और वे राज्य, जिनकी आय के स्रोत ज्यादा हैं, महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण कर लेते हैं जिससे राज्यों की आय में विषमता बढ़ती है। केन्द्रीय सरकार को आए दिन अपने कर्मचारियों के महंगाई भत्तों में वषद्धि करनी पड़ जाती है। राज्यों को दिए जाने वाले कतिपय अनुदान केन्द्रीय सरकार की स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत आते हैं और राज्यों को बराबर यह शिकायत रही है कि केन्द्रीय सरकार इन अनुदानों का वितरण करते समय पक्षपातपूर्ण आचरण करती है।

(ii) **राज्यों की ऋणग्रस्तता**– पिछले तीस वर्षों में राज्य धीरे–धीरे, किन्तु अधिकाधिक रूप से वित्तीय साधनों के लिए केन्द्रीय सरकार पर निर्भर होते चले गए। राज्यों की इस ऋणग्रस्तता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सभी राज्य सरकारों का कुल कर्ज तीन साल पहले 2,42,525 करोड़ रूपये का था, जो 1999–2000 में 4,09,258 करोड़ रूपये का हो गया। यानि प्रत्येक व्यक्ति 4,308 रूपये कर्ज में डूबा हुआ है। इस प्रकार ऋण सेवाओं का भार राज्यों की कर आय को प्रभावहीन बना रहा है। वास्तव में, केन्द्र के राज्यों की ऋणग्रस्तता अब इस स्थिति में पहुंच गई है कि ऋण अदायगी तथा ब्याज की रकम मिलकर नई केन्द्रीय सहायता से अधिक हो जाती है, जिसका अर्थ यह है कि साधनों का वितरण विपरीत दिशा में हो जाता है। ऐसी स्थिति परिपक्व एवं सन्तुलित केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के लिए ऋणात्मक है।

(iii) **वित्त आयोग की भूमिका**– आलोचना का विषय यह भी है कि केन्द्र से हस्तान्तरित होने वाली राशि का केवल एक–तिहाई भाग ही वित्त आयोग की सिफारिशों पर होता है, जबकि दो–तिहाई भाग वित्त आयोग के क्षेत्र से बाहर है। बंटवारे की यह पद्धति मनमाने ढंग की है, चाहे वह बंटवारा योजना आयोग द्वारा ही क्यों न किया जाता हो? फिर केवल योजना आयोग ही ऐसे अनुदान नहीं देता। वित्त आयोग तथा योजना आयोग के क्षेत्र से बाहर के अनुदान प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिए अनुदानों का केवल 7.3 प्रतिशत थे, किन्तु बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में इनका महत्व बढ़ता गया तथा चौथी योजना में वह बढ़कर लगभग 41 प्रतिशत हो गया। ये अनुदान जिन्हें विवेकानुदान कहा जाता है, योजना अनुदानों की अपेक्षा 73 प्रतिशत बढ़ गए। सरकार की इच्छा पर छोड़े गए इन अनुदानों के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि ये वित्तीय संघीय सम्बन्धों में न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं। सभी मुख्यमंत्रियों ने सातवें वित्त आयोग के समक्ष अनुच्छेद 282 के अत्यधिक प्रयोग पर जिसके अन्तर्गत ये विवेकानुदान दिए जाते हैं, पुनः विचार करने को कहा।

(iv) **आर्थिक नियोजन के सम्बन्ध में मतभेद**– योजना आयोग की भूमिका को लेकर भी केन्द्र–राज्य विवादों में वषद्धि हुई है। अशोक चन्दा का मत है कि योजना आयोग ने संघवाद को निरस्त कर दिया है। योजना आयोग

देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय निश्चित करता है। चूंकि प्रत्येक राज्य की समस्याएं अलग–अलग हैं इसलिए उनकी मूल समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है। योजना प्रारूप का अन्ति निर्णय तो केन्द्रीय संसद के हाथों में है। योजनाओं के सम्बन्ध में केन्द्र की कार्यपालिका वास्तव में निर्णय लेती है और कार्यान्वित राज्य की कार्यपालिकाओं को करना होता है। योजना आयोग के सामने राज्य एक परकटे पक्षी की भांति है। राज्यों के पास अपने योजना बोर्ड नहीं है, जो कि राज्य की योजनाओं को तकनीकी दृष्टि से निश्चित कर सकें।

अब राज्य सरकारों में केन्द्रीय सरकार और योजना आयोग का विरोध करने की प्रवृत्ति उभर रही है। सन् 1969 में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को अनौपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिमी बंगाल तथा केरल के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। राज्य के मुख्यमन्त्रियों ने केन्द्र से राज्यों की आय की स्रोतों को भी बढ़ावा देने की बात कही है। यह भी मांग की जा रही है कि योजना आयोग के कार्यों को सीमित किया जाना चाहिए तथा जो अनुदान दिए जाएं वे सशर्त नहीं होने चाहिए।

(v) **अन्तर्राज्यीय व्यापार**– संविधान के अनुसार अन्तर्राज्यीय व्यापार को नियमन करने की शक्ति केन्द्रीय सरकार में निहित है। केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय और स्थानीय राज्यों के हितों में समन्वय स्थापित करने के लिए कभी–कभी हस्तक्षेप करती है। इस केन्द्रीय हस्तक्षेप से कतिपय राज्य नाराज होते हैं और केन्द्र–राज्य मतभेद उभरते हैं। उदाहरण के लिए, खाद्य नीति को लिया जा सकता है जो कि राज्य सूची का विषय है और केन्द्रीय हस्तक्षेप से पंजाब ने अपनी लगातार नाराजगी प्रकट की। सन् 1969 में केन्द्रीय शासन ने गेहूँ के सम्बन्ध में प्रचलित 'एक राज्य क्षेत्र' नीति का परित्याग कर 'आठ राज्यीय क्षेत्र' घोषित किया तो पंजाब ने इसे पसन्द नहीं किया।

मई 1979 में मुख्यमन्त्रियों के दो दिन के सम्मेलन में केन्द्र के वित्तीय साधनों के बंटवारे के सवाल पर विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। विवाद इतना बढ़ गया जिसका पता इसी तथ्य से लग जाता है कि पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ने इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय के सामने ले जाने का निश्चय प्रकट किया। पश्चिमी बंगाल के वित्त मन्त्री डॉ० अशोक मित्र ने कहा कि कच्ची तम्बाकू, चीनी तथा कपड़ों पर एकत्र करों के बंटवारे के प्रश्न पर अनेक स्मरण–पत्र भेजने के बावजूद केन्द्र ने अपना वायदा पूरा नहीं किया। उन्होंने कहा था कि कुछ वर्ष पूर्व उक्त मदों पर एकत्र करों को राज्य सरकार ने स्वेच्छा से केन्द्र को दे दिया था। यदि मामला वार्ता से न सुलझा तो राज्य सरकार सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर करेगी।

(1) राज्य सरकारों ने कुछ संसाधनों को विभाज्य पुल से बाहर रखने के सम्बन्ध में संघ सरकार की नीति की आलोचना की है, जो उनके मतानुसार उनके साथ बांटे जाने चाहिए थे। राज्यों के अनुसार इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, आयकर अधिनियम, 1959 के संशोधन द्वारा निगम कर को विभाज्य पुल से निकालना। बहुत–सी राज्य सरकारों ने यह सुझाव दिया है कि निगम कर की प्राप्तियों में राज्यों की भागीदारी रहनी चाहिए।

(2) राज्यों ने यह शिकायत की है कि आयकर अधिभार के एक लम्बी अवधि तक जारी रहने के कारण वे काफी राजस्व से वंचित रहे हैं जो राज्यों के साथ भागीदारी योग्य होता यदि भारत सरकार ने इसके बजाय आयकर की मूल दरों को समायोजित किया होता। कुछ राज्यों ने सुझाव दिया है कि आयकर अधिभार की प्राप्तियां राज्यों के साथ भागीदारी योग्य बना दी जानी चाहिए।

(3) कुछ राज्यों ने आरोप लगाया है कि संघ सरकार आयकर से राजस्व जुटाने में पर्याप्त रूचि नहीं दिखा रही है, जिसका 85 प्रतिशत इस समय राज्यों के साथ भागीदारी योग्य है। दूसरी ओर, विशेष वाहक पत्र योजना के माध्यम से संघ सरकार ने केवल अपने इस्तेमाल के लिए संसाधन जुटाये हैं जिनमें अन्यथा प्रकार से राज्यों की भागीदारी होती, यदि आयकर अधिनियम को बेहतर ढंग से लागू किया जाता।

(4) अनेक राज्यों ने संघ द्वारा उत्पाद शुल्क बढ़ाने की बजाय, जो उनके साथ भागीदारी योग्य होने, एकपक्षीय रूप से पेट्रोलियम और कोयला जैसी वस्तुओं के निर्देशित मूल्य में वृद्धि की शिकायत की है।

(5) अनेक राज्यों ने संविधान (छठा संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 269 और 286 में हुए परिवर्तनों तथा केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 कर ओर ध्यान दिलाया है। उनका आरोप है कि इन संशोधनों ने राज्यों के विक्रय कर की प्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है जो कि उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजस्व का स्रोत है।

(6) वेतन में संशोधन, सेवान्त प्रसुविधाएं, महंगाई भत्ते की किस्तों के दिए जाने, इत्यादि पर संघ सरकार के निर्णयों के कारण राज्यों पर उसके अनुरूप भार पड़ता है। इसे, संघ की कार्यवाही के कारण राज्यों के व्यय पर अनिश्चित भार के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है। कुछ राज्य सरकारों ने कहा है कि इस अतिरिक्त भार में संघ द्वारा हिस्सेदारी की जानी चाहिए।

(7) प्राकृतिक आपदाओं के लिए सहायता प्रदान किए जाने में विलम्ब, अपर्याप्तता और साथ ही भेदभाव बरतने की शिकायतें भी हैं जिन पर राष्ट्रीय महत्व के विषय के रूप में विचार किए जाने की आवश्यकता है।

वित्तीय साधनों का न्यायपूर्ण आबंटन : नए सन्तुलन की खोज – केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों को अधिक सहज बनाने हेतु प्रशासनिक सुधार आयोग तथा राजमन्नार समिति प्रतिवेदन में भी विचार किया गया था। इस उद्देश्य से पश्चिमी बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने भी एक विस्तष्त मसविदा (Memorandum) प्रस्तुत किया था।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुच्छेद 283 के अन्तर्गत राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का सरलतम रूप प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में आयोग की अनुशंसाएं इस प्रकार हैं : प्रथम, राज्यों को दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता की मात्रा तय की जानी चाहिए। इसके बाद ऋण के रूप में दी जाने वाली रकम तय कर लेनी चाहिए। द्वितीय, इस अनुदान को वितरित करते समय यह राशि अलग कर लेनी चाहिए जो मूलभूत राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं पर खर्च की जानी है। अवशिष्ट राशि को ही केन्द्रीय अनुदान के रूप में राज्यों को वितरित किया जाना चाहिए। तृतीय, यदि राज्य ने किसी परियोजना को पूरा नहीं किया है तथा केन्द्रीय अनुदान की अधिक राशि खर्च कर दी है तो बाद में केन्द्रीय अनुदान की मात्रा कम की जा सकती है।

क्या राज्य को अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिए? (Should the States be given More Powers)

इस सत्यता से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में राज्यों की तुलना में केन्द्र की स्थिति अधिक शक्तिशाली है। संविधान द्वारा चाहे राज्यों का वैधानिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक क्षेत्र निश्चित किया गया है, परन्तु इस निश्चित क्षेत्र में राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। राज्यों में अनेक ऐसी व्यवस्थायें हैं, जिनके आधार पर केन्द्र राज्य के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता है और व्यावहारिक रूप में करता भी है। इसी कारण भिन्न–भिन्न राजनैतिक दलों ने राज्ज्यों को अधिक शक्ति देने की मांग की है। भारत के दोनों साम्यवादी दल, जनता पार्टी, शिरोमणी अकाली दल, तेलगू देशम्, ए.आई.डी.एम.के. तथा कुछ अन्य राजनीतिक दल राज्यों को अधिक शक्ति देने की मांग करते हैं। कर्नाटक, पाण्डिचेरी, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्रियों ने मार्च, 1983 में एक संयुक्त

परिषद् बनाई थी। इस परिषद् ने भी यह मांग की भी कि राज्यों को आर्थिक क्षेत्र में अधिक शक्तियाँ प्रदान की जायें और केन्द्र तथा राज्य के मध्य सम्बन्धों पर पुनः विचार किया जाये। पंजाब में अकाली दल ने केन्द्र सरकार की नीतियों के विरूद्ध 1982–83 में एक जोरदार संघर्ष किया था। अनेकों मांगों के अतिरिक्त राज्यों को अधिक शक्तियां प्रदान करने तथा केन्द्र राज्यों के सम्बन्धों के समुचित ढाँचे पर पुनः विचार करने की मांग भी अकाली दल की मांगों में सम्मिलित थी। इसी कारण केन्द्र सरकार ने अप्रैल 1983 में एक कमीशन नियुक्त करने की घोषणा की थी। इस कमीशन में एक मात्र सदस्य सरदार रणजीत सिंह सरकारिया नियुक्त किये गये थे, इसी कारण इस कमीशन को साधारणतः सरकारिया कमीशन कहा जाता है। सरकारिया कमीशन ने केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों के सभी पक्षों पर विचार करता है। इसके सम्बन्ध में हमारा यह विचार है कि पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में केन्द्रवाद (Centralism) की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। यदि इस प्रवृत्ति पर नियन्त्रण न किया गया तो भारतीय संघवाद के लिये एक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। प्रत्येक क्षेत्र में केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप को कम करने के लिए राज्यों को अधिक अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता है। विशेषतया वित्तीय क्षेत्र में राज्यों को आय के अधिक साधन प्रदान किये जाने चाहिए ताकि वे केन्द्र सरकार पर निर्भर न रहें और अपनी विकासशील योजनाओं को स्वेच्छा से लागू कर सकें।

2.2.7 केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में टकराव की स्थिति (Centre-State Relations : Position of Confrontation)

केन्द्र–राज्य सम्बन्ध आज भी उतने ही खराब हैं, जितने श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासन काल में थे। श्रीमती इन्दिरा गांधी के कार्यकाल (1984) में ये सम्बन्ध बहुत बिगड़ गए थे, जब सिक्किम, जम्मू–कश्मीर व आन्ध्र प्रदेश की गैर–कांग्रेस सरकारों को अपदस्थ किया गया था। तीन गैर–कांग्रेस शासित राज्यों में जो केन्द्रीय सरकार के मन्त्री थे वह इन राज्यों (आन्ध्र, पं० बंगाल, कर्नाटक) के मुख्यमन्त्रियों के खिलाफ बन्दूक ही ताने रहते थे। नवम्बर 1987 में प्रधानमंत्री ने त्रिपुरा की कई सभाओं में भाषण किया और नृपेन चक्रवर्ती की सरकार के खिलाफ टीका–टिप्पणी की। जनता, माकपा व तेलगुदेशम के सदस्यों ने राज्यसभा में उनके राज्यों के प्रति केन्द्र की उपेक्षा के प्रति नाराजगी प्रकट की। कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल व आन्ध्र प्रदेश में कई विकास योजनाएं इस वजह से रूकी हुई थी कि केन्द्र ने स्वीकृति नहीं भेजी। राज्य विधानसभा में स्वीकृत विधेयकों पर राष्ट्रपति के अनुमोदन के सम्बन्ध में भी ऐसे ही हाल रहे। इन विधेयकों को गृह मन्त्रालय में अटका दिया जाता था। कुछ मामलों में तो राज्यपाल ही विधेयकों को दबा कर बैठ जाते थे। आन्ध्र प्रदेश की राज्यपाल कुमदवेदन जोशी के बारे में ऐसी ही शिकायत की गई। कर्नाटक की बोम्बई सरकार (1989) को बर्खास्त करके राज्यपाल वेंकटसुब्बैया ने केन्द्रीय सरकार के सूबेदार की भूमिका का ही परिचय दिया। पर्यवेक्षकों के अनुसार 'अब देश में टकराव का वातावरण फिर पैदा हो रहा है।' कावेरी जल–विवाद और अयोध्या में मन्दिर निर्माण का मसला टकराव के उभरते मुद्दे हैं। भाजपा शासित राज्यों – राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश की सरकारों को बर्खास्त करके नरसिम्हा राव सरकार ने केन्द्र–राज्य टकराव को और अधिक प्रखर कर दिया। 21 फरवरी, 1998 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने षडयंत्र के तहत् भाजपा मुख्यमन्त्री कल्याण सिंह को बर्खास्त कर जगदम्बिका पाल को सदन में शक्ति परीक्षण के बिना ही मुख्यमंत्री पद की तुरत–फुरत शपथ दिला दी। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने राज्यपाल की कार्यवाई को अनुचित बताते हुए रोक लगा दी। शक्ति परीक्षण में जीतने के बाद मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने राज्यपाल रोमेश भण्डारी को हटाने की मांग दोहराई। प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने राष्ट्रपति को अपनी मजबूरी बताई कि उनके मन्त्रिमण्डल के अधिकांश सदस्य भण्डारी को पद से हटाने के पक्ष में नहीं है। केन्द्र में भाजपा सरकार बनने के आसार देखते हुए रोमेश भण्डारी ने 16 मार्च 1998 को बर्खास्तगी के भय से त्यागपत्र दे दिया। तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता के निर्देशानुसार 30 जून, 2001 को राज्य में दो केन्द्रीय मन्त्रियों की गिरफ्तारी और राज्य सरकार को केन्द्र द्वारा चेतावनी जारी करना केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में टकराव के विकृत संकेत हैं।

यह सच है कि केन्द्रीय सरकार की अपेक्षाकृत शक्तिशाली स्थिति ने राज्य सरकारों की स्थिति को प्रभावित किया है, किन्तु फिर भी राज्य केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक इकाइयां मात्र नहीं हैं। ग्रेनविल ऑस्टिन लिखते हैं, ''भारत नई दिल्ली नहीं है बल्कि राज्यों की राजधानियाँ भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकांक्षी हैं, किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती हैं, किन्तु उनकी सहायता के बिना केन्द्रीय सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकती। वस्तुतः दोनों ही एक–दूसरे पर निर्भर हैं।''

राज्यों में केन्द्रीय पहल से संचालित होने वाली परियोजनाओं की संख्या कम होनी चाहिए और केन्द्रीय पहल की परियोजनाओं के मानदण्ड निश्चित होने चाहिएँ। प्रशासनिक सुधार आयोग का विचार था कि राज्यों की परियोजनाओं को दो भागों–उत्पादित और गैर–उत्पादित में बांटा जाना चाहिए। योजना आयोग को वे सिद्धान्त तय करने चाहिए जिनके आधार पर परियोजना को दो भागों में बाटा जा सकता है, केवल उत्पदित परियोजना के लिए ही ऋण सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि इस परियोजना के चालू होने पर ब्याज सहित ऋण लौटाया जा सके। केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों का महंगाई भत्ता, आदि बढ़ाती रहती है, जिसका प्रभाव राज्यों के बजट पर भी पड़ता है। राज्य कर्मचारी भी केन्द्र के बराबर महंगाई भत्ते की मांग करते हैं, राज्य सरकारों को उनकी मांगों के आगे झुकना पड़ता है, जिससे उन पर काफी आर्थिक भार बढ़ जाता है। आयोग का विचार है कि केन्द्रीय सरकार की नीति के कारण ही मुद्रा–प्रसार बढ़ता है। अतः राज्यों के इस प्रकार के बढ़ते हुए व्यय का भार केन्द्रीय सरकार को ही वहन करना चाहिए।

2.2.8 निष्कर्ष

भारतीय संविधान में उल्लेखित शक्तियों के विभाजन का संकेत हमें भारत सरकार अधिनियम 1935 से मिलता है। भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन को तीन सूचियों में रेखांकित किया गया है। संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची। अविशिष्ट शक्तियाँ जो किसी भी सूची में नहीं दी गयी है, उन पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार के पास है। केन्द्र और राज्य संबंधों की समीक्षा सरकारिया आयोग ने की थी। संविधान में प्रशासनिक और वित्तीय मामलों में केन्द्र और राज्यों के बीच संबंध का भी प्रावधान है।

2.2.9 मुख्य शब्दावली

- संघीय
- संघ सूची
- विधानमण्डल
- नौकरशाही
- वित्त आयोग

2.2.10 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. भारतीय संविधान में शक्तियों के विभाजन की व्याख्या कीजिए।
2. केन्द्र–राज्य संबधों से आप क्या समझते हैं। इनकी विशेषताओं का वर्णन करो।
3. केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों के प्रावधान की व्याख्या कीजिए।

2.2.11 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.

- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

2.3 उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुनरावलोकन (Centre-State Relations)

2.3.1 परिचय

भारत में उच्चतम न्यायालय संविधान के रक्षक और संविधान के अन्तिम व्याख्याता के रूप में कार्य करता है। भारतीय उच्चतम न्यायालय पुनरावलोकन की व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। यह संसद द्वारा पारित ऐसी किसी भी विधि को अवैध घोषित कर सकता है जो संविधान के विरूद्ध हो। इसी शक्ति के आधार पर वह संविधान की प्रभुत्ता और सर्वोच्चता की रक्षा करता है। वह संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान वेत्ता एम.सी. सीतलवाड़ ने ठीक ही लिखा है – ''संविधान के अन्तिम व्याख्याता के रूप में चाहे वह मौलिक अधिकारों का क्षेत्र हो अथवा संघ और राज्य के बीच उठने वाले प्रश्न एवं देश के समस्त कानूनों और प्रथाओं पर आधारित नियमों का क्षेत्र हो, राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के यंत्र स्वरूप, सर्वोच्च न्यायालय के प्रभाव पर बल देने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।'' भारत, के उच्चतम न्यायालय को विस्तष्त परामर्शदात्री शक्तियां प्राप्त हैं और सार्वजनिक महत्त्व के कानूनों तथा तथ्यों पर राष्ट्रपति ने अनेक बार उच्चतम न्यायालय के परामर्श से लाभ उठाया है। एम.वी. पायली के शब्दों में ''शायद ही कोई और न्यायालय ऐसा हो, जिसे संविधान के अन्तर्गत इतना क्षेत्र, अधिकार एवं महत्त्व प्रदान किया गया हो।''

2.3.2 उद्देश्य

- भारत में न्यायिक व्यवस्था की उत्पत्ति का पता लगाना।
- भारत में न्यायालयों की रचना का वर्णन करना।
- सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों के कार्यों एवं क्षेत्राधिकारों की व्याख्या करना।
- न्यायिक पुनरावलोकन की अवधारणा एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा के महत्त्व को समझना।

2.3.3 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन (Composition of the Supreme Court)

मूल रूप से सर्वोच्च न्यायालय के लिए मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी थी और संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों को वेतन और सेवा शर्तें निश्चित करने का अधिकार संसद को दिया गया है। संसद के द्वारा समय–समय पर कानून में संशोधन कर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में वषद्धि की गयी है। 1985 में विधि द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश होंगे। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अवश्य ही परामर्श लेता है। विशेष स्थिति उत्पन्न होने पर भारत का मुख्य न्यायाधीश भारत के राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर तदर्भ न्यायाधीशों (Adhoc Judges) की नियुक्ति कर सकता है। इस प्रकार की तदर्थ नियुक्तियाँ मुख्य न्यायाधीश को उस समय उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह लेनी होगी, जिसमें से न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाए। भारत में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति कनाड़ा में प्रचलित ऐसी ही प्रथा के समान है। सर्वोच्च या संघीय न्यायालय के पदनिवष्त न्यायाधीश को राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनाया जा सकता है।

मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति और तत्सम्बन्धी विवाद (Appointment of the Chief Justice of India and Controversy about that) – सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में संविधान लागू किये जाने के समय से लेकर 1972 ई. तक यह परम्परा चली आ रही थी कि मुख्य न्यायाधीश के सेवानिवष्त होने के बाद उसके स्थान पर दूसरे मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा सेवानिवष्त होने वाले मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य ही लिया जाता था और वह नियुक्ति न्यायाधीशों की वरिष्ठता के आधार पर की जाती थी। केवल एक बार 1964 में श्री जफर ईमाम को उनकी वरिष्ठता के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद नहीं प्रदान किया गया, लेकिन यह निर्णय बहुत कुछ सीमा तक श्री जफर के स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों के आधार पर किया गया था, लेकिन अप्रैल 1973 में जब प्रधान न्यायामूर्ति श्री सीकरी सेवानिवष्त हुए तो तीन न्यायाधीशों (श्री शेलट, श्री हेगड़े और श्री ग्रोवर) की वरिष्ठता का उल्लंघन करके श्री अजीतनाथ रे की मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति किया गया था। श्री अजीतनाथ रे की नियुक्ति के सम्बन्ध में श्री सीकरी से परामर्श नहीं लिया गया था। समस्त देश के विधि जगत द्वारा इस नियुक्ति का घोर विरोध किया गया। अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री सीकरी ने प्रतिक्रिया व्यक्त की कि, ''सरकारी निर्णय राजनीतिक था।'' श्री छगला ने कहा, ''यह न्यायिक इतिहास का सर्वाधिक अंधेरा दिन है।'' सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन ने इसे पूर्णतया राजनीतिक और गुण से सम्बन्ध नहीं (Purely Political and having no relation to merits) बतलाया लेकिन दूसरी और सरकार पक्ष का प्रतिपादन करते हुए मन्त्री श्री कुमारमंगलम ने संसद में कहा कि ''मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति मात्र वरिष्ठता के आधार पर नहीं की जा सकती और न्यायाधीश का दृष्टिकोण, उनका सामाजिक दर्शन हवा का रूख पहचानने की उनकी शक्ति और संसद की सर्वोच्चता को मान्यता–सर्वोच्च न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के महत्वपूर्ण आधार होने चाहिए।'' उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''यह आज की सरकार के विवेक पर निर्भर है कि वह अपनी दृष्टि में उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त करे। देश के सर्वोच्च न्याय आसन पर बैठने वाले का दृष्टिकोण व दर्शन भी उपयुक्त होना चाहिए।'' इस विचार पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध विधिवेत्ता पालकीवाला ने कहा : ''अनुभव से हमें सीखना चाहिए कि राजनीति में न्याय के तत्त्वों का प्रवेश उचित है, पर न्याय मे राजनीति का प्रवेश विनाशकारी है। सरकार का यह दावा कितना असंगत है कि उसे सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार है जो सत्ताधारी दल के दर्शन में आस्था रखते हैं। मान लीजिए एक ऐसा दल सत्ता में पहुंचे, जिसकी विचारधारा संविधान के विपरीत हो, तो ऐसी अवस्था में न्यायाधीश संविधान का पालन करेंगे या सत्ताधारी दल के दर्शन का।'' इस नियुक्ति के विरोध में सर्वोच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों – श्री शेलेट, श्री हेगड़े और श्री ग्रोवर ने त्यागपत्र दे दिया। समस्त देश में व्यापक रूप से शंका व्यक्त की गयी कि मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनायी गयी यह नवीन सरकारी नीति न्यायपालिका को कार्यपालिका की चेरी बना देगी और इससे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचेगा। समस्त स्थिति पर विचार करने के 11 और 12 अगस्त को दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिशन के तत्वाधान में 'अखिल भारतीय अधिवक्ता सम्मेलन' हुआ। जिसमें लगभग 700 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया कि उच्च और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति अधिवक्ता संघ और न्यायाधीशों का प्रतिनिधित्व करने वाली समितियों की सिफारिश पर होनी चाहिए और उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। न्यायापालिका की स्वतन्त्रता और सम्मान को बनाए रखने को दृष्टि से उपर्युक्त सुझाव निश्चित रूप से विचार योग्य है।

सन् 1977 में पुनः 1973 के ही ढंग पर मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति की गयी। जनवरी 1977 में मुख्य न्यायाधीश श्री अजीतनाथ रे के कार्यकाल की समाप्ति पर वरिष्ठता के आधार पर श्री एच.आर. खन्ना को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए था, लेकिन जस्टिस खन्ना की नियुक्ति करने के स्थान पर जस्टिस

मिर्जा हमीदुल्ला बेग को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन द्वारा इस नियुक्ति की आलोचना की गयी और अपनी वरिष्ठता का उल्लंघन किये जाने के विरोध में न्यायाधीश एच.आर. खन्ना के द्वारा त्यागपत्र दे दिया गया।

मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति और विवाद का निराकरण (फरवरी 1978) – 1977 में सत्तारूढ़ शासक वर्ग न्यायापालिका की स्वतन्त्रता और उसकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वचनबद्ध था। अतः मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त को पुनः स्वीकार करते हुए फरवरी 1978 में श्री वाई.वी. चन्द्रचूड़ को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। अजीतनाथ रे के कार्यकाल की समाप्ति पर तत्कालीन शासक दल के कुछ नेताओं और कुछ विख्यात विधिवेत्ताओं ने कहा कि श्री चन्द्रचूड़ को मुख्यन्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। उनका कहना था कि मुख्य न्यायाधीश से जिस वैचारिक स्वतन्त्रता और निष्पक्षता की आशा की जाती है, उसका उनमें दुःखद अभाव रहा है। अप्रैल 1976 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) के मामले में उन्होने साहसपूर्ण निर्णय नहीं दिया। बी.एम. तारकुण्डे के अनुसार, ''बन्दी प्रत्यक्षीकरण मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला कानूनी दृष्टि से कमजोर है ही, जनता और देश के लिए भी गम्भीरतम खतरे से भरा है। वह न्याय की धारणा का ही मखौल है।'' श्री छगला के द्वारा भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया, लेकिन इस प्रकार की आपत्तियों को अस्वीकार करते हुए सरकार द्वारा सोचा गया कि मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सुनिश्चित परम्पराओं को अपनाया जाना चाहिए। शासन का यह कार्य न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा उसके सम्मान को बनाए रखने की दषष्टि से उचित है। वस्तुतः मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त निश्चित किये जाने चाहिए, जिससे कि न्यायिक क्षेत्र की इन सर्वोच्च नियुक्तियों के सम्बन्ध में शासन के द्वारा मनमाना आचरण न किया जा सके और न्यायाधीश पद तथा न्यायाधीश पदधारी व्यक्ति विवाद के विषय में बनें। विधि आयोग ने भी अपनी 80वीं रिपोर्ट में कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। न्यायापालिका की स्वतन्त्रता की रक्षा और लोकतन्त्र के सुचारू संचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वर्तमान प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 124 में प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य ही होगा। इस बात को लेकर विवाद था कि क्या राष्ट्रपति अकेले मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को मानने के लिए बाध्य हैं?

इस विवाद के समाधान हेतू राष्ट्रपति द्वारा जुलाई 1998 में एक सन्दर्भ (Reference) सर्वोच्च न्यायालय को भेजा गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संदर्भ पर 28 अक्तूबर, 1998 को लिए गए निर्णय के आधार पर अब सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया इस प्रकार है :

राष्ट्रपति द्वारा ये नियुक्तियां सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त परामर्श के आधार पर की जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा इस प्रसंग में राष्ट्रपति को परामर्श देने से पूर्व 'चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह' से लिखित परामर्श प्राप्त करेंगे तथा इस परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति को परामर्श देंगे।

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अपने सर्वसम्मत निर्णय में कहा है कि ''वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह को एकमत से और लिखित से सिफारिश करनी चाहिए। जब तक न्यायाधीशों के समूह की राय मुख्य न्यायाधीश के विचार से मेल न खाए, तब तक मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति से कोई सिफारिश नहीं जानी चाहिए।''

सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया है कि, ''यदि भारत दो मुख्य न्यायाधीश परामर्श की प्रक्रिया पूरी किये

बिना न्यायाधीशों की नियुक्ति और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सिफारिश करते हैं तो सरकार ऐसी सिफारिश मानने के लिए बाध्य नहीं है।''

न्यायिक नियुक्तियों में दखलन्दाजी

हाल ही में ये तथ्य उभर कर सामने आया है कि न्यायिक नियुक्यिों में 'चयन समिति की सिफारिश' के बावजूद राष्ट्रपति भवन की दखलन्दाजी बढ़ने लगी है। पिछले वर्ष सुप्रीम कोर्ट में चार न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने फाईल पर यह असाधारण टिप्पणी दर्ज कर दी थी कि सुप्रीम कोर्ट की पीठ में होने वाली नियुक्तियों में भी अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए आरक्षण होना चाहिए। इसी चरण में राष्ट्रपति भवन ने सुप्रीम कोर्ट में तीन न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव को महीने भर से ज्यादा समय से लटकाए रखा। पर मुख्य न्यायाधीश आदर्श सेन आनन्द के नेतृत्व वाली मौजूदा न्यायपालिका उच्च न्यायालयों समेत किसी भी स्तर पर किसी रूप में कार्यपालिका की दखलन्दाजी के सख्त खिलाफ है।

न्यायाधीशों की योग्यता (Qualification for the Judged) –

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में अग्रलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है –

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) वह किसी उच्च न्यायालय अथवा ऐसे दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो।

या

किसी उच्च न्यायालय अथवा न्यायालयों में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रह चुका हो।

या

राष्ट्रपति के विचार में एक पारंगत विभिन्नता

यह अन्तिम उपबन्ध वस्तुतः नियुक्ति के क्षेत्र को व्यापक करने के लिए रखा गया है। इस उपबन्ध के अनुसार किसी विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाला कोई विख्यात न्यायालय में न्यायाधीश पद पर नियुक्त किया जा सकेगा। संविधान में यह स्पष्ट रूप से लिखित है कि सर्वोच्च न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश भारत राज्य क्षेत्र में किसी न्यायालय अथवा किसी अन्य पदाधिकारी के न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता है और न वह किसी न्यायालय में किसी अन्य रूप में कार्य कर सकता है।

कार्यकाल तथा महाभियोग (Term and Impleachment)– सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की भांति भारतीय संविधान में आजीवन कार्यकाल की व्यवस्था व्यवहारतः वैसी ही है, क्योंकि भारत में औसत आयु को देखते हुए 65 वर्ष की आयु बहुत होती है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 128 में किसी सेवानिवृत न्यायाधीश की नियुक्ति करने की भी विशेष व्यवस्था की गयी है। इस अवस्था के पूर्व वह स्वयं त्यागपत्र दे सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से केवल प्रमाणित दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पी ही हटाया जा सकता है। इस प्रकार के महाभियोग की कार्यविधि निश्चित करने का अधिकार संसद को प्राप्त है। कार्यविधि चाहे जो हो, लेकिन संसद के दोनों सदनों को अलग–अलग अपने कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के

दो–तिहाई मत से प्रस्ताव पास करना होगा और वह प्रस्ताव राष्ट्रपति को भेजा जाएगा। उसके बाद राष्ट्रपति उस न्यायाधीश की पदच्युति का आदेश जारी करेगा। इस संबंध में यह आवश्यक है कि न्यायाधीश के विरूद्ध महाभियोग का प्रस्ताव एक ही सत्र में स्वीकार होना चाहिए और न्यायाधीश को अपने पक्ष में समर्थन तथा उसकी पैरवी का पूरा अवसर प्रदान किया जाएगा।

वेतन, भत्ते और सेवा शर्ते (Salary, Allowances and Service Conditions)– सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिए जाएंगे जो संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। 'उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय न्यायाधीश सेवा शर्त संशोधन विधेयक 1998 के आधार पर इन न्यायाधीशों के वेतन में आवश्यक सुधार किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के लिए 33 हजार रूपये मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों के लिए 30 हजार रूपये मासिक निर्धारित किया गया है। न्यायाधीशों को यह संशोधित वेतन 1 जनवरी 1966 से देय है।

इन न्यायाधीशों को मासिक भत्ता, यात्रा भत्ता, निवास सुविधा, स्टाफ कार, सीमित मात्रा में पेट्रोल तथा अन्य कुछ सुविधाएँ भी प्राप्त होती हैं।

न्यायाधीशों के लिए पेंशन और सेवानिवष्त (ग्रेच्युटी) की व्यवस्था सर्वप्रथम 1976 में की गई थी। 1986 में पेन्शन, ग्रेच्युटी तथा सेवा शर्तों में भी उल्लेखनीय सुधार किया गया है। पेन्शन को अधिकतम सीमा मुख्य न्यायाधीश के लिए 60 हजार रूपये वार्षिक व अन्य न्यायाधीशों के लिए 54 हजार रूपये वार्षिक है। ग्रेच्युटी 30 हजार रूपये से बढ़ाकर 50 हजार रूपये कर दी गयी है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद उनके, भत्ते आदि में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उन्हें वेतन व भत्ते भारत की संचित निधि से दिये जायेंगे, जिस पर भारतीय संसद को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

उन्मुक्तियां (Immunities) न्यायाधीशों को अपने सभी कार्यों और निर्णय के लिए आलोचना से मुक्ति प्रदान की गयी, किन्तु न्यायालय के किसी निर्णय या किसी न्यायाधीश की किसी सम्मत्ति की शैक्षणिक दृष्टि से आलोचनात्मक विवेचना की जा सकती है। न्यायाधीश पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता है कि उन्होंने किसी प्रेरणा या हितवश एक विशेष प्रकार का निर्णय दिया। संसद के द्वारा भी महाभियोग के प्रस्ताव पर विचार करने के अतिरिक्त अन्य किसी समय पर न्यायाधीशों के आचरण पर विचार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह अपना सम्मान बनाये रखने और शत्रुतापूर्ण आलोचना से अपनी रक्षा करने के लिए किसी भी तथा कथित अपराधी के विरूद्ध न्यायालय के अवमानना की कार्यवाही कर सके। सन् 1953 में इस न्यायालय के एक निर्णय पर 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' द्वारा की गयी एक टिप्पणी के कारण उस समाचार–पत्र के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक के विरुद्ध न्यायालय अवमान की कार्यवाही की गयी थी। न्यायालय अवमान की कार्यवाही ने केवल गरिमा की रक्षा करने हेतु वरन ऐसे कार्य को रोकने के लिए भी की जा सकती है, जिसका इसकी निष्पक्ष निर्णय की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो। 'दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य' के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा ही निर्णय दिया था।

2.3.4 सर्वोच्च न्यायालय का अवस्थापन (Establishment of the Supreme Court)

संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि वह स्वयं अपना अवस्थापन (Establishment) रखे और उस पर पूरा नियन्त्रण भी रखे। इस सम्बन्ध में संविधान–निर्माताओं का उचित रूप से यह मत था कि यदि इस प्रकार की व्यवस्था न हो तो न्यायालय की स्वाधीनता केवल एक भ्रम ही सिद्ध होगी। सर्वोच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और कर्मचारियों की सब नियुक्तियाँ मुख्य न्यायाधीश द्वारा या उसके द्वारा इस कार्य पर लगाये गये किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा या पदाधिकारी द्वारा की जाती है। इन पदाधिकारियों की सेवा शर्तें भी इस न्यायालय द्वारा ही निर्धारित

की जाती है, उन पर होने वाले व्यय तथा न्यायालय के अवस्थापन के अन्य व्यय भारत की संचित निधि से किये जाते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि (Procedure of the Supreme Court)– सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि के सम्बन्ध में संविधान ने कुछ व्यवस्थाएं की हैं। इसके अतिरिक्त, संविधान ने भारतीय संसद को भी इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार प्रदान किया है तथा अन्य बातों पर सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर नियम निर्मित करने की क्षमता रखता है। इसकी कार्यविधि के सम्बन्ध में संविधान द्वारा निम्न व्यवस्थाएं की गयी हैं :

(1) जिन विषयों का सम्बन्ध संविधान की व्यवस्था से हो या जिसके अन्तर्गत संवैधानिक प्रश्न उपस्थित हो या जिसमें विधि के अभिप्राय का स्पष्ट करने की आवश्यकता हो या जिन विषयों पर विचार का कार्य भारत के राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा हो, उनकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम 5 न्यायाधीशों द्वारा की जाती है।

(2) सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख किसी ऐसे मुकदमें की अपील भी प्रस्तुत की जा सकती है जिसकी सुनवाई के उपरान्त यह विचार किया जाए कि उसमें संविधान की व्याख्या करना आवश्यक है या कानून के अभिप्राय को तात्विक रूप से प्रकट करना होगा। इस प्रकार के विवाद प्रारम्भ में पांच से कम न्यायाधीशों के सामने उपस्थित हो सकते हैं, पर यदि यह स्पष्ट हो जाए कि उसमें संविधान की व्याख्या या कानून के रूप में स्पष्टीकरण होना आवश्यक है तो भी कम से कम पांच न्यायाधीशों के समक्ष उपस्थित किया जाता है और उनकी व्याख्याके अनुसार ही उसका निर्णय होता है।

(3) सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय खुले तौर पर किये जाते हैं।

(4) सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर किये जाते हैं। बहुमत के निर्णय से असहमत न्यायाधीश अपना पृथक निर्णय दे सकता है। यह अन्य किसी प्रकार से बहुतम के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकता। बहुमत निर्णय ही मान्य होता है।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ (Power of the Supreme Court)– संघात्मक संविधान में संघात्मक न्यायालय का विशेष स्थान प्राप्त होता है ताकि संतुलन कायम किया जा सके और संविधान की सर्वोच्च और केन्द्र तथा इकाइयों को अपने–अपने क्षेत्र में स्वायत्तता (Autonomy) कायम की जा सके।

किसी किसी ऐसे न्यायालय की आवश्यकता होती है जोकि संविधान की व्याख्या कर सके, केन्द्र और राज्यों के झगड़े को या राज्यों के आपसी झगड़ों को निपटा सके। नहीं तो एक दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप और वाद–विवाद उत्पन्न हो जाएंगे। संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है ताकि सरकार उनको छीन न ले। इसको सुरक्षित रखने के लिए संविधान ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय को बहुत–सी शक्तियां प्रदान की है। कुछ लेखक तो भारत के सर्वोच्च न्यायालय को अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक शक्तिशाली बताते हैं। श्री अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर का कहना है, ''भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संसार के किसी भी अन्य सर्वोच्च न्यायालय से अधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक।'' (The Supreme Court of India has wider jurisdiction that the highest Court in any Federation of the world including the Supreme Court of U.S.A.) भारत के न्यायालय को वास्तव में बहुत सी शक्तियाँ दी गई हैं, जिनका पता निम्नलिखित बातों से चलता है :

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) : सर्वोच्च न्यायालय को कुछ मुकद्मों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। अर्थात् कुछ ऐसे मुकद्दमें हैं जो सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास ले जाए जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे सभी झगड़ों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा, जिनमें

   (i) झगड़ा केन्द्रीय सरकार और एक या अधिक राज्य के बीच हों।

   (ii) दो या अधिक राज्यों में आपस में विवाद हो या झगड़ों में कोई कानूनी प्रश्न हो जिस पर कानूनी अधिकार निर्भर हो।

इस अधिकार से सर्वोच्च न्यायालय संघ और राज्यों में सन्तुलन पैदा कर सकता है। उपरलिखित प्रकार के मुकद्दमें भारत के किसी अन्य न्यायालय में नहीं ले जाए जा सकते।

अपवाद (Exception) : निम्नलिखित प्रकार के झगड़े सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते :

1. सरकारों के मध्य झगड़ा किसी न्यायोचित अधिकार पर आधारित होना चाहिए। सरकारों के बीच जो झगड़े किसी विधि पर आधारित न हों या जिनका आधार वैधानिक न हो, ये सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते।
2. सातवें संशोधन के अनुसार संविधान के आरम्भ होने से पहले की गई राज्यों और संघ के बीच की संधियों और समझौतों इत्यादि में कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार इसे नहीं है।
3. सर्वोच्च न्यायालय को व्यक्तियों, सभाओं (Associations) और स्थानीय संस्थाओं के बारे में भी कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।
4. संसद कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों में राज्य के आपसी झगड़े को निकाल सकती है जबकि ये झगड़े किसी साझी नदी या घाटी के पानी के प्रयोग, वितरण या नियन्त्रण के विषय में हों।
5. इसको ऐसे मामले में, जो वित्त आयोग को संघ और राज्यों में कई प्रकार के खर्चे के विषय में सौंपे गए हों, कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।

नागरिकों के मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र (Enforcement of Fundamental Rights in Original Jurisdiction) : संविधान के तीसरे भाग में जो मौलिक अधिकार दिए गए हैं, उनको लागू करवाने के लिए नागरिक न्यायालय के पास जा सकते हैं। नागरिक मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए उच्च न्यायालय में भी जा सकते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे पहले सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय के शरण लें और बाद में सर्वोच्च न्यायालय का द्वारा खटखटाएं। नागरिक सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास जा सकते हैं। रामजी लाल बनाम इन्कम टैक्स ऑफिसर के मुकद्दमें का निर्णय करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित मुकद्दमें ही इसके प्रारम्भिक क्षेत्र में आते हैं, वे नहीं जोकि संविधान के किसी और भाग में दिए हों।

राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों का निर्णय करना (To decide election disputes of the President and Vice-President) :32वें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। 1967 में डॉ. जाकिर हुसैन तथा 1969 में वी.वी. गिरि के चुनाव–सम्बन्धी विवादों को सर्वोच्च न्यायालय ने सुना था और उनके चुनावों को वैध घोषित किया था। परन्तु अगस्त 1975 में 39वां संशोधन पास किया गया, जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों का निर्णय भविष्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा। बल्कि ऐसे झगड़ों का निर्णय भविष्य के लिए संसद कानून द्वारा किसी सत्ता या संस्था की व्यवस्था करेगी। 3 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद ने राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति अधिनियम 1952 को संशोधित करने के लिए अध्यादेश जारी किया और 9 सदस्यों की स्थापना की परन्तु जनता पार्टी ने सत्ता में आने के बाद इस अध्यादेश को समाप्ति होने दिया। जनता सरकार ने 39वें संशोधन को प्रभावहीन बनाने के लिए तथा सर्वोच्च न्यायालय को पुनः राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार देने के लिए 16 जून, 1977 को लोकसभा में बिल पेश किया, जिसे 17 जून 1977 को सर्वसम्मति से पार कर दिया गया। इस प्रकार अब फिर सर्वोच्च न्यायालय का राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों को सुनने का अधिकार प्राप्त हो गया है। 44वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति अथवा उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित सभी सन्देहों और विवादों की जांच सर्वोच्च न्यायालय करेगा तथा सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction) : सर्वोच्च न्यायालय के तीन प्रकार के अपीलीय क्षेत्राधिकारी है :

(i) संवैधानिक क्षेत्राधिकार (Constitutional Jurisdiction) : संवैधानिक मामलों में यह न्यायालय तब ही अपील सुन सकेगा जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे दे कि मुकद्दमें में कोई कानूनी प्रश्न विचारणीय है। यदि वह ऐसा प्रमाण–पत्र देने से इंकार कर दे तो सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपील के लिए विशेष स्वीकृति दे सकता है।

(ii) दीवानी क्षेत्राधिकार (Civil Jurisdiction) : दीवानी मुकद्दमें में यह न्यायालय उच्च न्यायालय के किसी फैसले या अन्तिम आदेश के विरुद्ध अपील सुन सकता है यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमें में 20,000 या इससे अधिक मूल्य की सम्पत्ति का प्रश्न विवादग्रस्त है। परन्तु संविधान के 30वें संशोधन द्वारा 20,000 रूपए की राशि की शर्त हटा दी गई है। अब किसी भी राशि का मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के पास जा सकता है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के सुनने के योग्य हैं। यह ऐसे मुकद्दमों की अपीलें सुन सकता है जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमें में कोई प्रश्न विवाद ग्रस्त है।

(iii) फौजदारी क्षेत्राधिकार (Criminal Jurisdiction) : निम्नलिखित फौजदारी मुकद्दमों में ये अपीलें सुन सकेगा :

(क) यदि अपील करने पर उच्च न्यायालय अपराधी की रिहाई के फैसले को बदल दे और उसके मृत्यु दण्ड दे दे, तो यह दूसरी अपील का मुकद्दमा होगा।

(ख) यदि किसी मुकद्दमें को उच्च न्यायालय ने अपने पास ले लिया हो और उसने किसी अपराधी को मौत का दण्ड दिया हो।

(ग) यदि उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के अनुसार यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुने जाने के योग्य है। परन्तु 134वें अनुच्छेद के अनुसार अपील की कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है कि यदि उच्च न्यायालय अपराधी को फौजदारी मुकद्दमें में छोड़ने का आदेश जारी कर दे तो उसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील हो।

संविधान ने संसद को अधिकार दिया है कि वह कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फौजदारी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकारी को बढ़ा सकती है।

136वें अनुच्छेद के अनुसार सैनिक न्यायालय को छोड़कर किसी भी उच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील की विशेष स्वीकृति देने पर सर्वोच्च न्यायालय पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है और यह बात स्वयं सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर है।

अपने अधिकार का प्रयोग यह न्यायालय इस प्रकार करेगा कि ऐसे मुकद्दमों में पीड़ित पक्ष को दुःख से मुक्ति दी जाए, जहाँ कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन किया गया हो। चाहे उस पक्ष के पास अपील करने के लिए कोई अन्य उचित कारण न भी हो। इसके इस अधिकार पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता चाहे फैसले को अन्तिम रूप दिया जा चुका हो, परन्तु इस शक्ति का प्रयोग करते समय वह संविधान की धाराओं के विरूद्ध नहीं चलेगा और न ही कोई सुविधा देने की व्यवस्था करेगा जोकि संविधान में नहीं है क्योंकि ऐसा करना कानून के विरूद्ध होगा जोकि न्यायालय का काम नहीं है। कानून बनाना संसद का कार्य है। न्यायालय ने तो केवल यह देखना होता है कि प्रस्तुत विवाद में किसी कानून का उल्लंघन तो नहीं किया गया। जिस कानून के अधीन कार्यवाही की गई है वह संविधान की व्यवस्थाओं का व्यतिक्रमण तो नहीं। उचित और योग्य व्यक्तियों वाले न्यायालय न्यायपूर्वक ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। अन्य न्यायालयों के कार्यों में इससे अधिक दखल यह न्यायालय नहीं देगा।

3 **मौलिक अधिकारों के विषय में क्षेत्राधिकार (Jurisdiction regarding fundamental Rights)** : यह न्यायालय स्वतन्त्रताओं और मौलिक अधिकारों का रक्षक है। 32वें अनुच्छेद के अनुसार इसे यह शक्ति दी गई कि यह आदेश या लेख जैसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habesa Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार पष्च्छा (Qua-Warranto) और उत्प्रेषण लेख (Certiorari) मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की सहायता लेने के अधिकार को राष्ट्रपति स्थगित कर सकता है।

मौलिक अधिकारों को लागू करते समय संसद या विधानमण्डलों द्वारा पाए किए कानूनों की व्याख्या करते समय भारत का सर्वोच्च न्यायालय कानूनी नीति की जांच, निरीक्षण और निर्णय नहीं कर सकता। न्यायाधीशों ने केवल यह देखना होता है कि जो कानून उसके नोटिस में लाए गए हैं, वे किसी उपयुक्त संस्था द्वारा बनाए गए हैं? ऐसा इसलिए किया गया है कि संविधान में ऐसा लिखा गया है। इस विषय में भारत का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के इस न्यायालय से बिल्कुल भिन्न है क्योंकि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को अपनी शक्ति कानून की प्रक्रिया (Process of Law) से प्राप्त हुई है जिसके द्वारा वह कानून की अच्छाई और बुराई को देख सकता है और यदि वह प्राकृतिक न्याय के विरूद्ध हो तो उसको रद्द कर सकता है। इसे एक अच्छे विधानमण्डल का कार्य भाग प्राप्त होता है, परन्तु चरणजीत बनाम भारत सरकार में इस न्यायालय ने कहा है कि न्यायालय किसी कानून को तब तक ठीक समझता है जब तक वह बुरा साबित न हो जाए।

4. परामर्श शक्तियाँ (Advisory Powers) : 143वें अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि किसी भी सार्वजनिक महत्व के विषय पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श कर सकता है, परन्तु इस अनुच्छेद के अनुसार इस न्यायालय के लिए जरूरी है कि वह अपनी राय अवश्य दे और न ही राष्ट्रपति के लिए जरूरी है कि वह इसके परामर्श के अनुसार चले। यह परामर्श कोई निर्णय नहीं होता।

इसमें संदेह है कि 143वें अनुच्छेद द्वारा दी गई राय 141वें अनुच्छेद की धाराओं के अन्तर्गत आती है, परन्तु देहली कानून अधिनियम (Delhi Law Act) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए परामर्श का प्रयोग भिन्न–भिन्न न्यायालयों ने किया है। अमेरिका और आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय ऐसे कानूनी प्रश्नों पर राय देने के विरुद्ध

हैं। कीथ (Keith) परामर्शी शक्तियों के पक्ष में हैं क्योंकि इससे समय की बचत होती है।

कुछ लोगों ने सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की आलोचना की है। उनका कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय को काल्पनिक अथवा सम्भावित (Hypothetical) कानूनी प्रश्नों पर अपने विचार नहीं प्रकट करने चाहिए। उसको केवल उन्हीं प्रश्नों पर ही सम्मति देनी चाहिए जो अभियोग के रूप में उसके पास आते हैं।

परन्तु यह आलोचना निराधार है क्योंकि हमारे देश में लिखित संविधान है तथा वह देश का आरम्भिक कानून है; समस्त देश का राज्य कार्य इसी कानून के अनुसार ही चलाया जाता है। किसी भी कानून के विषय में तब तक कोई निश्चित सम्मति नहीं बनाई जा सकती, जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय उसकी संवैधानिकता के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं दे देती है। इसलिए ऐसे कानून के विषय में जिनकी संवैधानिकता के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं दे देती। इसलिए ऐसे कानून के विषय में जिनकी संवैधानिकता के विषय में सन्देह हो, सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति ले लेनी बहुत उचित है क्योंकि इस प्रकार जीवन में स्थिरता उत्पन्न होती है तथा मुकद्दमें बाजी कम होती है।

राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से अभी तक नौ मामलों में सलाह मांगी है और सर्वोच्च न्यायालय ने सभी मामलों में अपनी राय दी है। राष्ट्रपति की ओर से सबसे पहले 1951 में देशी रियासतों के भारत संघ में विलय के सम्बन्ध में राय मांगी गई थी। इसके अतिरिक्त 1958 में केवल शिक्षा विधेयक 1960 में बेरूबाड़ी के सम्बन्ध में 1963 मे तटकर अधिनियम, 1964 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य श्री केशव सिंह से सम्बन्धित मामलों पर तथा 1974 में गुजरात विधानसभा के भंग होने के कारण, अगस्त 1974 में राष्ट्रपति का चुनाव करवाने के सम्बन्ध में राय मांगी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने विधानसभा के भंग होने की स्थिति में राष्ट्रपति का चुनाव करवाने के सम्बन्ध में 5 जून, 1974 को अपना परामर्श दिया था, जिसमें कहा गया था कि अनुच्छेद 62 के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव पहले राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व होना आवश्यक है चाहे विधानसभा भंग क्यों न हो। एक अगस्त, 1978 को राष्ट्रपति श्री नीलम संजीवा रेड्डी ने आपातकाल में किए गए अपराधों के लिए शाह आयोग आदि आयोगों द्वारा दोषी पाए गए विशिष्ट व्यक्तियों पर, जिनमें भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा उनके कुछ मन्त्रिमण्डलीय सहयोगी और उनके पुत्र श्री संजय गांधी शामिल थे, मुकद्दमा चलाने के लिए विशेष अदालतों के गठन की संवैधानिकता वैधता के बारे में राय मांगी। सर्वोच्च न्यायालय से विशेष रूप से इस प्रयोजन के लिए तैयार किए गए एक विधेयक के मसौदे पर राय देने के लिए कहा गया। सर्वोच्च न्यायालय ने 1 दिसम्बर, 1978 को अपनी राय देते हुए आपातकाल के दौरान हुए अपराधों के लिए अन्य राजनीतिक तथा सार्वजनिक पदों पर आसीन व्यक्तियों पर मुकद्दमें चलाने हेतु विशेष न्यायालयों के गठन को संवैधानिक रूप से वैध बताया। राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद के मामले पर राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगा कि अयोध्या में राम मन्दिर था या नहीं। 2 अक्तूबर, 1994 को अपना ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा कि सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए बाध्य नहीं है और इसके साथ ही उसने अयोध्या मामले पर राष्ट्रपति को परामर्श देने से इन्कार कर दिया।

5. अपने निर्णय के पुर्निरीक्षण का अधिकार (Power to Review its own Decision) : चाहे सर्वोच्च न्यायालय के जज उच्चकोटि के विधिवेता हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय में निर्णय करते समय छान–बीन करते हैं फिर भी उनसे कभी न कभी गलती हो सकती है। इसलिए उनको अपने निर्णय तथा आदेशों का पुर्निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया है। इसके द्वारा उनके किए गए गलत निर्णय भी संशोधित किए जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का यह अधिकार दिया गया है क्योंकि देश में इससे बड़ा कोई न्यायालय नहीं, जिसमें इसके विरूद्ध अपील हो सके। उदाहरणस्वरूप

सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है। परन्तु 1967 में गोकलनाथ मुकदद्मेें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती। 1973 में केशवानंद भारती मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।

6. एक अभिलेख न्यायालय (A Court of Record) : संविधान की धारा 129 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को एक अभिलेख न्यायालय भी माना गया है। इसकी समस्त कार्यवाही तथा निर्णय सदैव के लिए यादगार तथा प्रमाण के रूप में प्रकाशित किए जाते हें तथा देश के समस्त न्यायालयों के लिए यह निर्णय न्यायिक दृष्टांत (Judicial Precedents) के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। इन अभिलेखों का इतना महत्व होता है कि इनकी पवित्रता पर उंगली नहीं उठाई जा सकती तथा न ही देश के अन्य न्यायालय इन अभिलेखों के विरूद्ध जा सकते हैं; जब किसी न्यायालय को कानून द्वारा अभिलेख न्यायालय बना दिया जाता है तब ऐसे न्यायालय को न्यायालय के अपमान (Contempt of Court) का दण्ड देने का अधिकार मिल जाता है तथा इस अधिकार को संविधान द्वारा स्वीकृति मिली है।

7. सर्वोच्च न्यायालय को न्यायालयों की कार्यवाही तथा कार्यविधि का नियमित करने के लिए नियमों का निर्णय करने की शक्ति (Power to frame rules to regulate the activities of the Courts) : सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 145 द्वारा न्यायालय की कार्यवाही तथा कार्यविधियों को नियमित करने के लिए समय–समय पर नियमों का निर्माण करने की शक्ति दी गई है। 42वें संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद में एक नई उपधारा सम्मिलित की गई है। इस नई उपधारा के अधीन सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेदों 131ए तथा 138ए के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों को नियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति दी जाती है।

8. संविधान की व्याख्या तथा रक्षा (Interpretation and Protection of the Constitution): संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करना भी सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। जब कभी भी संविधान की व्याख्या के बारे में कोई मतभेद उत्पन्न हो तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या दी जाती है और सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या को अन्तिम तथा सर्वोत्तम माना जाता है। अनुच्छेद 141 के अनुसार, ''सर्वोत्तम न्यायालय द्वारा घोषित किया गया कानून भारत के क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों पर बाध्य होगा।'' (The Law decleared by Supreme Court shall be binding on all Courts within the territory of India.) केवल संविधान की व्याख्या करना ही नहीं बल्कि इसकी रक्षा करनी भी सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। यदि सर्वोच्च न्यायालय को यह विश्वास हो जाए कि संसद द्वारा बनाया गया कानून या कार्यपालिका का आदेश संविधान का उल्लंघन करता है, तो वह उस कानून या आदेश को असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर सकता है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है और उसकी रक्षा करना सर्वोच्च न्यायालय का कर्त्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई संविधान की व्याख्या अन्तिम होती है।

10. विविध कार्य (Miscellaneous Functions) : सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित कार्य भी करने पड़ते हैं :

    (i) सर्वोच्च न्यायालय अपना कार्य चलाने के लिए अपने पदाधिकारियों की नियुक्ति कराता है। यह नियुक्तियाँ वह आप तथा संघीय लोक सेवा आयोग की सहायता से करता है।

    (ii) उच्चतम न्यायालय देश के अन्य न्यायालयों पर शासन करता है। यह देखता है कि प्रत्येक न्यायालय में न्याय ठीक प्रकार से हो रहा है अथवा नहीं।

    (iii) राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी यदि कोई मतभेद हो जाए तो उसका निर्णय उच्चतम न्यायालय करता है तथा इसका निर्णय अन्तिम होता है।

(iv) संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा सभापति को पदच्युत करने का अधिकार तो राष्ट्रपति के पास है परन्तु राष्ट्रपति ऐसा तब ही कर सकेगा जब उच्चतम न्यायालय उसकी जांच पड़ताल करके उसको अपराधी घोषित कर दे।

क्षेत्राधिकार में विस्तार (Enlargement of Jurisdiction) : अनुच्छेदों 136 और 139 के अन्तर्गत संसद का अपने अधिनियम द्वारा निम्नलिखित मामलों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार विस्तष्त करने का अधिकार है :

(a) संघ सूची में दिया गया कोई भी मामला, (b) उच्च न्यायपालिका के फैसलों के विरूद्ध फौजदारी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार, (c) कोई भी मामला जो भारत सरकार और किसी भी राज्य की सरकार ने समझौते द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को दिया हो, (iv) मूल अधिकारों को लागू करने के अतिरिक्त किसी और उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश तथा लेख जारी करना और (v) सर्वोच्च न्यायालय को संविधान द्वारा सौंपे गए क्षेत्राधिकार को अच्छी प्रकार से प्रयोग करने के लिए कोई दूसरी जरूरी शक्ति।

11. न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) : सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करना है और यही सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार भी है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षक होने के नाते उसकी अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार भी प्राप्त है। इसके अधीनप वह संसद तथा राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाए कानूनों की पुनः छानबीन कर सकता है तथा उनको असंवैधानिक तथा नियम–विरूद्ध घोषित कर सकता है। न्यायिक पुनर्विचार का अर्थ है, ''उच्च शक्ति जिस के द्वारा उच्चतम न्यायालय यह देखता है कि राज्य सरकारें तथा केन्द्रीय सरकार के कार्य शासन रचना के विरोधी तो नहीं।'' इसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय जांच करता है कि राज्य विधानमण्डलीय तथा केन्द्रीय सरकार के निर्मित कानून भारतीय संविधान के अनुसार है अथवा नहीं। यदि उच्चतम न्यायालय यह अनुभव करे कि कोई कानून संविधान की धाराओं के विरूद्ध है तो उसको संविधान के विरूद्ध होने के कारण रद्द कर दिया जाता है। इस प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय के पास संविधान की व्याख्या करने की अन्तिम शक्ति है। केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार के अंग अपनी समस्त शक्ति संविधान से ही प्राप्त करते हैं। एक संघीय राज्य में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की शक्तियों सीमित होती हैं तथा किसी के द्वारा भी अधिकारों का अतिक्रमण संविधान का उल्लंघन समझा जाता है। हमारे संविधान में शक्तियों का विभाजन किया जाता है। संघीय सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को दिया गया है। इसी प्रकार राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों के पास है। इसी प्रकार जब भी संसद अथवा राज्य सरकारें अपने अधिकारों से बाहर होकर कोई कार्य करती है तब उच्चतम न्यायालय को ऐसे कानून को असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है।

संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार भी संसद तथा राज्य विधानमण्डलों की शक्तियों को सीमित करते हैं। जो भी कानून संविधान में दिए इन मौलिक अधिकारों के विरूद्ध जाता है, उच्चतम न्यायालय, उसको रद्द कर देता है। यह शक्ति उच्च न्यायालय को दी गई है।

42वें संशोधन द्वारा संविधान में 144ए नामक एक नया अनुच्छेद सम्मिलित किया गया है जिसके अनुसार केन्द्रीय कानून और राज्य कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्णय ऐसी न्यायपीठ (Bench) द्वारा होना चाहिए जिसमें 7 न्यायाधीश हों और तब तक कोई कानून अवैध करार नहीं दिया जा सकता, जब तक कानून की अवैधता

के बारे में निर्णय न्यायपीठ के दो तिहाई न्यायाधीशों द्वारा न किया गया हो। 42वें संशोधन द्वारा ही संविधान में अनुच्छेद 131ए शामिल किया जाता है, जिसके द्वारा केन्द्रीय कानून की संवैधानिक वैधता को केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही चुनौती दी जा सकती है। 42वें संशोधन से पूर्व केन्द्रीय कानून की संवैधानिकता वैधता की जांच करने का अधिकार उच्च न्यायालय को भी प्राप्त था। परन्तु इस संशोधन द्वारा यह अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया। जिन विषयों पर केन्द्र और राज्य दोनों के कानूनों की वैधता का प्रश्न निहित हो, उन पर भी केवल सर्वोच्च न्यायालय को राज्य के कानून की संवैधानिकता जांच करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए राज्य के कानून की संवैधानिक जांच तभी तक कर सकता था यदि उसमें केन्द्रीय कानून का भी प्रश्न हो। दिसम्बर, 1977 में 43वां संशोधन पास किया गया, जिसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के 42वें संशोधन से पहले की स्थिति को स्थापित किया गया है। अर्थात् 43वें संशोधन द्वारा अनुच्छेदों 32ए, 131ए तथा 144ए को संविधान में से निकाल दिया गया है। अतः अब पुनः सर्वोच्च न्यायालय केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों की संवैधानिक जांच कर सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग कई महत्वपूर्ण कानूनों को रद्द करने के लिए किया है। 27 फरवरी, 1967 को सर्वोच्च न्यायालय ने गोकलनाथ बनाम सरकार के मुकद्दमें में यह निर्णय दिया था कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कानून को भी अवैध घोषित किया। राजाओं आदि के प्रिवी पर्स (Privy Purses) तथा अन्य विशेषाधिकारों को समाप्त करने के राष्ट्रपति के आदेश को भी अवैध घोषित किया गया। स्वामी केशवानंद भारती के मुकद्दमें में निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद मौलिक अधिकारों में परिवर्तन कर सकती है पर संविधान के मौलिक ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। 9 मई, 1980 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में 42वें संशोधन अधिनियम 1976 के उस खण्ड को रद्द कर दिया, जिसमें संसद के अनुच्छेद 31सी को भी रद्द कर दिया। रद्द किये अनुच्छेद में मौलिक अधिकारों पर निर्देशक सिद्धान्तों का वरीयता दी गई थी। मई, 1980 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य मुकद्दमें की जांच करते हुए यह फैसला दिया कि मौत की सजा संवैधानिक है। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) में मौत की सजा की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेदों 14, 19 और 31 का न तो उल्लंघन करती है, न ही यह संविधान के मूल ढांचे के विरूद्ध है। 19 नवम्बर, 1991 को सर्वोच्च न्यायालय ने दल–बदल विरोधी कानून 1982 (52वें संवैधानिक संशोधन) को उचित ठहराया। परन्तु संविधान की 10वीं अनुसूची के सातवें पैरे को र्दद कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सातवें पैरे से अनुच्छेदों 136, 226 और 227 के उद्देश्यों का उल्लंघन होता है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति (Position of the Supreme Court) : इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस न्यायालय को संसार के सभी संघात्मक या सर्वोच्च न्यायालयों से अधिक शक्तियां प्राप्त है। भूतपूर्व महान्यायावादी श्री सीतलवाड ने ठीक ही कहा था, ''इस न्यायालय का लेख 20 लाख वर्ग मील से अधिक क्षेत्र पर, जिसमें लगभग 33 करोड़ (अब 101 करोड़ से अधिक) की जनसंख्या निवास करती है, लागू होगा। यह कहना सच है कि इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ अपनी प्राकृतिक सीमा में, राष्ट्रमण्डल के किसी भी पक्ष या संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की और क्षेत्राधिकार शक्तियों से विस्तष्त है। इसे ही संविधान की अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार है। संविधान की अन्तिम व्याख्या करने वाली संस्था होने के कारण इसको संविधान की ही व्याख्या करने का अधिकार नहीं है बल्कि संघ, राज्यों और स्थानीय संस्थाओं के कानूनों की व्याख्या करने का भी अधिकार है। अपने प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र के अधीन यह उन सब झगड़ों को निपटाता है जो संघ और राज्यों में आपस में

होते हैं। इसके अपीलीय क्षेत्र में केवल संवैधानिक मुकद्दमें ही नहीं बल्कि दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमें आते हैं। अपीलों की आज्ञा देने के विशेष अधिकार में इसकी यह शक्ति है कि वह देश के किसी भी न्यायालय के निर्णयों पर विचार कर सकता है। कई अवस्थाओं में यह न्यायालय राष्ट्रपति को परामर्श भी देता है।

इस न्यायालय के पास किए गए कानून भारत के प्रत्येक न्यायालय पर लागू होते हैं। इसके आदेश सारे देश पर लागू होते हैं और यह किसी भी व्यक्ति को किसी अभिलेख या किसी भी कागज को पेश करने के आदेश दे सकता है। सर्वोच्च न्यायालय संसद और राज्यों के विधानमण्डलों को मनमानी करने से रोकता है और उनके बनाए हुए कानूनों या आदेशों को असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर सकता है। हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है। संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को इतनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं कि यह मौलिक अधिकारों का ही रक्षक ही नहीं बल्कि संविधान और देश के कानून का भी रक्षक है। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर (Shri Alladi Krishana Swami Ayyar) के अनुसार, ''भारतीय संविधान का विकास काफी सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों तथा इस बात पर निर्भर करता है कि सर्वोच्च न्यायालय संविधान को किस दिशा में ले जाता है।'' (The future evolution of the Indian Constitution will thus depend to a large extent upon the work of Supreme Court and the direction given to it by that Court.) एम.वी. पायली (M.V. Pylee) ने सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति के बारे में लिखा है कि ''अपनी विभिन्न तथा व्यापक शक्तियों के कारण सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक क्षेत्र में ने केवल एक सर्वश्रेष्ठ संस्था है, बल्कि यह देश के संविधान तथा कानून का भी रक्षक है।'' (The Combination of Such wide and varied Powers in the Supreme Court of India makes it not only the supreme authority in the judicial field but also the guardian of the Constitution and law of the land.)

सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुख कर्त्तव्य कानूनों की वैधता निश्चित करना और संविधान की व्याख्या करना होता है। इस सम्बन्ध में भारत के सर्वोच्च न्यायालय का कार्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भिन्न है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की व्याख्या करने की अपनी शक्ति की, 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) के वाक्यांश की इस प्रकार व्याख्या की है कि सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में व्यवस्थापिका की तीसरा सदन ही श्रेष्ठ व्यवस्थापिका बन चुका है। भारत के संविधान बनाने वालों ने कानून की उचित विधि की धारा को अपना कर 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure establishment by Law) का वाक्यांश अपनाया है। इसके द्वारा हमारा सर्वोच्च न्यायालय केवल कानून लागू करने वाली संस्था है। यी कोई एक अतिरिक्त विधानसभा नहीं कहला सकता। यह तो केवल उस समय किसी कानून को अवैध घोषित कर सकता है, जब वह संविधान का उल्लंघन करता हो। किसी कानून के केवल बुरा होने के कारण हमारा सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित नहीं कर सकता। इस प्रकार हमारे देश में न्यायिक सर्वोच्चता (Judicial Supremacy) के सिद्धान्त के विकास की सम्भावना नहीं। हमारे सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार ''भारत की न्यायापालिका की स्थिति इंग्लैंड के न्यायालयों और अमेरिका के न्यायालयों की स्थिति के बीच है।''

वास्तव में हमारे सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति का उद्देश्य वैधानिक कार्यों कर अपेक्षा कार्यपालिका के अत्याचारों और अधिकार चेष्टाओं पर प्रतिबन्ध लगाना है। यह तो केवल यह देखता है कि न तो संसद और न ही कार्यपालिका संविधान द्वारा निश्चित क्षेत्राधिकार का उल्लंघन करे।

2.3.5 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन (The Judicial Review in India)

न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति का अभिप्राय है – कानूनों की वैधानिकता के परीक्षण की शक्ति। भारतीय संविधान के

कुछ अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करते हैं लेकिन भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है जितना संयुक्त राज्य अमेरिका में है। भारतीय संविधान–निर्माताओं ने अमेरिकन संविधान की शब्दावली 'कानून की सम्यक् प्रक्रिया' (Due Process of Law) के स्थान पर कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by Law) को स्वीकार किया है। अमेरिका में कोई कानून यदि वह प्राकृतिक न्याय के कुछ सर्वमान्य सिद्धान्तों के विरूद्ध हो, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है। किन्तु ऐसा भारत में नहीं है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय यह निश्चित करने में अमुक कानून संवैधानिक है या नहीं, प्राकृतिक न्याय सिद्धान्तों का या उचित अनुचित की अपनी धारणाओं की नहीं अपना सकता है। दूसरे शब्दों में, भारत में न्यायालय किसी कानून को अवैधानिक तभी ठहरा सकता है जबकि सम्बन्धित विधानमण्डल ने उस कानून का निर्माण करने में अपनी कानून–निर्माण क्षमता का उल्लंघन किया हो। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए एच.एम. सीरबाई ने लिखा है – ''भारत में किसी कानून को केवल इस आधार पर अवैधानिक घोंषित नहीं किया जा सकता कि वह न्यायालय की सम्मति में स्वतन्त्रता अथवा संविधान की भावना के किसी सिद्धान्त का अतिक्रमण करता है, जब तक कि वे सिद्धान्त संविधान में उल्लेखित न हों। किसी कानून की सांविधानिकता पर निर्णय देने न्यायालय को कानून की बुद्धिमत्ता या बुद्धिहीनता, उसके न्याय कानून और अन्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है।'' अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय 'कानून की उचित प्रक्रिया' वाली धारा के आधार पर लगभग एक 'तीसरा सदन' अथवा 'उच्च विधानमण्डल' की (Third House or Super Legistature) बन गया है। जैसा कि न्यायाधीश ह्यूज ने लिखा है – हम एक संविधान के अन्तर्गत तो रहते हैं, लेकिन संविधान वैसा ही है जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कहता है।'' भारत के सर्वोच्च न्यायालय को निश्चित रूप से ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं है। अमेरिका में 'न्यायिक सर्वोच्चता' को अपनाया गया है जबकि भारत में न्यायिक सर्वोच्चता और संसदीय सर्वोच्चता के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है अर्थात् अमेरिकन सिद्धान्त और ब्रिटिश सिद्धान्त को मिलाने का प्रयत्न किया गया है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का संविधान में उल्लेख

भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का उल्लेख निम्नलिखित अनुच्छेदों में मिलता है –

(अ) अनुच्छेद 12 (2) (मूल अधिकारों वाला भाग)

(ब) अनुच्छेद 246 (जिसमें संघ एवं राज्यों के विधायी क्षेत्रों में कानून बनाने की शक्तियों का उल्लेख है)

(स) अनुच्छेद 32 (जिसमें नागरिकों के सांविधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख है)

(द) अनुच्छेद 131 एवं 132 (जिनमें उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार तथा सांविधानिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का उल्लेख है)।

(अ) अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति – इस अनुच्छेद में लिखा है कि ''राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएंगे जो इस भाग (मूल अधिकारों वाला भाग तीन) द्वारा दिए गए अधिकारों को छीनता या कम करता हो और इस खण्ड का उल्लंघन करने वाला प्रत्येक कानून उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगा।'' इसका अर्थ यह हुआ कि अनुच्छेद द्वारा किए गए कार्यों को उच्चतम न्यायालय इस आधार पर देख सकता है कि वे अनुच्छेद 13(2) के अनुकूल है या नहीं, और यदि वे अनुकूल नहीं है तो उन्हें असांविधानिक घोषित कर सकता है। संविधान के 24वें संशोधन 1971 से पूर्व यह अनुच्छेद देश की राजनीति में तूफान लाने वाला सिद्ध हुआ। अनेक बार उच्चतम न्यायालय के निर्णय एक समान नहीं रहे। 1952 में पहली बार शंकरी प्रसाद के मामले में उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से यह स्वीकार किया कि संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती

है। 1965 में सज्जन सिंह के मामले में 2/3 के बहुमत से उपर्युक्त निर्णय का पुनः समर्थन किया गया। लेकिन 1967 में गोलकनाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने पहले के निर्णय को उलट दिया। इस मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने सदा के लिए मूल अधिकारों का संशोधन–शक्ति से परे कर दिया। यह निर्णय 6–5 के अनुपात से लिया गया।

उच्चतम न्यायालय के गोकलनाथ विवाद पर दिए गये निर्णय के बड़े दूरगामी और क्रान्तिकारी परिणाम निकले। देश के संविधान को दी गई चुनौतियों के नए उत्तर दिए गए। परिणामस्वरूप तेजी से बदलते हुए राजनीतिक सन्दर्भ में चौबीसवां संशोधन अधिनियम, 1971 पारित किया गया। संसद को मूल अधिकारों के अध्याय में संशोधन करने का अधिकार या नहीं, इस प्रश्न पर विवाद समाप्त हो गया। यह निश्चित कर दिया गया कि संसद को संविधान के किसी भी उपबन्ध को, जिसमें मौलिक अधिकार भी आते हैं, संशोधित करने का अधिकार होगा। चौबीसवें संशोधन के फलस्वरूप न्यायिक पुनर्विलोकन के क्षेत्र में एक अस्पष्टता दूर हो गई। 1973 में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी अपने निर्णय में इस सांविधानिक संशोधन की वैधता को स्वीकार कर लिया गया।

(ब) अनुच्छेद 246 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति – यह अनुच्छेद भी उच्चतम न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार को प्रकट करता है। इसमें संघ एवं राज्यों के विधायी क्षेत्रों में कानून बनाने की शक्तियों का उल्लेख है। चूंकि संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख कर दिया गया है, अतः किसी भी पक्ष द्वारा इस सीमा का उल्लंघन एक असांविधानिक कार्य माना जाता है और उच्चतम न्यायालय अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग कर उसे असांविधानिक घोषिक कर सकता है। चूंकि तीनों सूचियों में शक्तियों के वितरण की स्पष्ट व्यवस्था है और सभी परिस्थितियों का संविधान में यथासाध्य उल्न्लेख कर दिया गया है, अतः उच्चतम न्यायालय को अपना विवेक प्रयोग करने का आधार बहुत कम मिल पाता है अर्थात् उसे 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही किसी भी कार्य की वैधता की जांच करनी होती है, इसके विपरित अमेरिका में उच्चतम न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग करने के अवसर बहुत अधिक मिलते हैं क्योंकि वहां संविधान में संघ राज्य सम्बन्धों का वर्णन बहुत संक्षेप में किया गया है और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों में निहित है। इसलिए वहाँ इस प्रकार के विवाद उठते रहते हैं कि संघ राज्यों की अवशिष्ट शक्तियों का उल्लंघन कर रहा है या नहीं।

(स) अनुच्छेद 32 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति – इस अनुच्छेद में नागरिकों के सांविधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख किया गया है। कोई भी नागरिक यदि अनुभव करे कि उसके मूल अधिकार का विशुद्ध रूप से उल्लंघन हुआ है तो वह उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय को यह देखने का अधिकार होगा कि क्या वास्तव में राज्य के किसी कार्य या कानून से विशुद्ध रूप से नागरिक के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है। मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए ही उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 32(2) के अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार–पृच्छा लेख निकालने का अधिकार है। ये लेख या आदेश 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही निकाले जाते हैं, अमेरिका की तरह 'प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त' के अनुसार नहीं। वास्तव में इन रिटों (Writs) के रूप में न्याय–प्रशासन की एक नई शाखा का विकास हुआ है।

(द) अनुच्छेद 131 एवं 132 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति–अनुच्छेद 131 में उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का और अनुच्छेद 132 में, सांविधानिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का उल्लेख किया गया है अर्थात् ये दोनों अनुच्छेदों उच्चतम न्यायालय को संघीय और राज्य सरकारों द्वारा निर्मित विधियों के पुनर्विलोकन का अधिकार देते हैं।

इस सम्पूर्ण विवेचना से स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति ही भारत में भी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अधिकार का प्रयोग 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के ही अनुसार कर सकता है। संविधान के लागू होने के बाद से अब तक उच्चतम न्यायालय ने इस शक्ति का प्रयोग करके अनेक महत्त्वपूर्ण कानूनों का या अध्यादेशों, नियमों या विनिमयों को पूर्णतया या आंशिक रूप से असांविधानिक घोषित किया है।

38वें संविधान संशोधन तक की स्थिति

संविधान के 38वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई है कि आपातकालीन स्थिति की घोषणा के राष्ट्रपति के अधिकार को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस संशोधन ने राष्ट्रपति, राज्यपाल और उपराज्यपालों द्वारा उदघ्घोषित आपातकालीन स्थिति वाले अध्यादेश को न्यायालय की सुनवाई के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया। 29वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और संसद के अध्यक्ष के चुनावों पर विचार करने के न्यायालय के अधिकार समाप्त कर दिए गए। 40वें संविधान अधिनियम, 1976 के द्वारा प्रधानमंत्री को भी राष्ट्रपति और राज्यपालों की तरह दण्डिका तथा दीवानी कार्यवाहियों से विमुक्ति प्रदान कर दी गई।

42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा उच्चतम न्यायालय की पुनर्विलोकन की शक्ति को और सीमित कर दिया गया तथा न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रक्रिया का कठिन बना दिया गया। लेकिन 1980 में उच्चतम न्यायालय मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के विवाद में 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 368 में शामिल किए गए खण्ड (4) और (5) को अवैध घोषित करके संसद की संविधान को असीमित रूप से संशोधित करने की शक्ति पर प्रश्न–वाचक चिन्ह लगा दिया। लेकिन 43वें सांविधानिक संशोधन ने न्यायिक पुनर्विलोकन सम्बन्धी प्रावधानों को समाप्त कर दिया और न्यायिक पुनर्विलोकन के सम्बन्ध में पुनः वही स्थिति हो गई जो 42वें सांविधानिक संशोधन के पूर्व थी।

उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने ही निर्णयों पर पुनर्विचार

उच्चतम न्यायालय को, संविधान के अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत अपने निर्णयों और आदेशों का पुनर्विलोकन करने की शक्ति प्राप्त है। न्यायालय को यह सत्ता प्रदान करने मं संविधान–निर्माताओं ने अपनी बुद्धिमत्ता और सर्तकता का परिचय दिया है। ''कहा जाता है कि निम्न न्यायालय का सम्बन्ध तथ्यों से है, उच्च न्यायालय का सम्बन्ध त्रुटियों (निम्न न्यायालय द्वारा निर्णय की त्रुटियों) से है तथा उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध विवेक बुद्धि (Wisdom) से है। किन्तु उच्चतम न्यायालय भी गलती कर सकता है इसलिए आवश्यक है कि उस त्रुटि को ठीक करने की राह खुली रखी जाए।''

2.3.6 न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of the Judiciary)

एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका ही नागरिकों के अधिकारों और संविधान की संरक्षिका हो सकती है। भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए निम्नलिखित उपबन्धों का समावेश किया गया है –

1. पदावधि की सुरक्षा – एक बार नियुक्त किए जाने के उपरान्त न्यायाधीशों को, उनके स्वैच्छिक त्याग–पत्र के अलावा, महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकता है। यह विशेष प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है, अतः न्यायाधीश को पद से हटाना कोई सरल कार्य नहीं है।

2. न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते आदि विधायिका के अधिकार से परे होना – उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन संविधान द्वारा नियत है औश्र भारत की संचित निधि पर भारित हैं। उन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता है। न्यायाधीशों के कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और भत्तों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। वित्तीय आपात

की स्थिति ही इसका अपवाद है। साथ ही यह भी व्यवस्था है कि उच्चतम न्यायालय का कोई अवकाश प्राप्त न्यायाधीश देश के किसी न्यायालय में अथवा किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकता है।

3. कार्य प्रणाली के नियमन हेतु नियम बनाने की शक्ति – उच्चतम न्यायालय को अपनी कार्य–प्रणाली के नियमों हेतु स्वयं ही नियम बनाने का अधिकार है। यह आवश्यक है कि ये नियम संसद द्वारा निर्मित विधि के अर्न्तगत होने चाहिए और इन पर राष्ट्रपति की अनुमति ली जानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय के निर्णय या आदेश भारत राज्य क्षेत्र के भीतर सभी न्यायाधीशों को मान्य होंगे।

4. कर्मचारी वर्ग पर नियन्त्रण – उच्चतम न्यायालय को अपने कर्मचारी वर्ग पर पूरा नियन्त्रण सौंपा गया है, क्योंकि इसके अभाव में उसकी स्वतन्त्रता को आघात पहुंच सकता है। न्यायालय के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों द्वारा की जाती है। सेवा शर्तें भी न्यायालय द्वारा ही निर्धारित की जाती है।

5. संसद क्षेत्राधिकार बढ़ा सकती है, घटा नहीं सकती – संसद को उच्चतम न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार को बढ़ाने का अधिकार है, घटाने का नहीं। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय को संसदीय दबाव से मुक्त रखा गया है।

6. उन्मुक्तियां – अपनी अधिकारिक क्षमता में किए गए न्यायालयों के निर्णयों और कार्य की अवहेलना नहीं की जा सकती। संसद भी न्यायाधीशों के ऐसे कार्यों पर जिसे उन्होंने कर्त्तव्य–पालन करते हुए किया हो, विचार–विमर्श नहीं कर सकती।

7. अवकाश प्राप्त करने के बाद वकालत करने पर प्रतिबन्ध – अवकाश प्राप्ति के बाद न्यायाधीश भारतीय क्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकते हैं। किन्तु संविधान विशेष प्रकार के कार्य–सम्पादन के लिए उनकी नियुक्ति की अनुमति देता है, उदाहरणार्थ विशेष जांच पड़ताल तथा अन्वेषण करना।

2.3.7 निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस तरह हमारे संविधान में उच्चतम न्यायालय की स्थिति बड़ी मजबूत है और उसकी स्वतन्त्रता पर्याप्त रूप से संरक्षित है। किन्तु सेवानिवष्त न्यायाधीशों का आयोग एवं समितियों के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किये जाने की वर्तमान प्रथा से न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। भारतीय विधि आयोग ने इस प्रथा के संकटों के बारे में संकेत करते हुए इसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की सरकार से सिफारिश की है।

2.3.8 मुख्य शब्दावली

- उच्चतम न्यायालय
- न्यायिक पुनरावलोकन
- क्षेत्राधिकार
- उन्मुक्तियाँ
- परामर्श शक्तियाँ

2.3.9 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए क्या–क्या योग्यताएँ होनी चाहिए?

2. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

3. सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार कौन–कौन से हैं? किस क्षेत्र में इसे सबसे अधिक अधिकार हैं?

4. न्यायिक पुनरावलोकन से आप क्या समझते हैं? इसका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2.3.10 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.

- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

2.4 राजनैतिक दल : राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दल (Political Parties : National and Regional)

2.4.1 परिचय

आधुनिक युग लोकतन्त्रीय युग है। लोकतन्त्रीय शासन को लोगों का, लोगों के लिए और लोगों द्वारा माना गया है। लोकतन्त्र में प्रभुसत्ता किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूह के पास नहीं होती, अपितु समूची जनता के पास होती है। राजनीतिक दलों के बिना जनता की प्रभुसत्ता का निर्णय नहीं हो सकता और न ही बहुमत का राज्य स्थापित हो सकता है। राजनीतिक दलों द्वारा जनता अप्रत्यक्ष रूप में शासन में भाग ले सकती हैं और राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र की सम्भावना नहीं हो सकती। स्वतन्त्र भारत में भी लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली को अपनाया है। इसलिए भारत में भी राजनीतिक दलों का विकास होना स्वाभाविक था। भारत में कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं, जिनका जन्म स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् हुआ और कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं जो अंग्रेजों के राज्यकाल के समय में अस्तित्व में आए थे।

2.4.2 उद्देश्य

- दलीय व्यवस्था की परिभाषा एवं क्षेत्रीय तथा राज्य की पार्टियों को जानना।
- राजनैतिक दलों के संगठन व समस्याओं को समझना।
- दलीय व्यवस्था और राजनैतिक दलों की परिभाषा दे सकेंगे।
- भारत में दलीय व्यवस्था एवं राजनीतिक दलों की प्रमुख विशेषताओं को समझा सकेंगे।
- राजनीतिक दल, दलीय व्यवस्था एवं लोकतंत्र के बीच संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.4.3 भारत में दल व्यवस्था (Party System in India)

भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय प्रभावकारी दलों के संगठन की आवश्यकता महसूस हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक विशेष अस्तित्व वाले संगठन के रूप में पैदा हुई जिसने देश में अंग्रेज विरोधी तत्वों को एकत्रित किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दल ने एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि महात्मा गांधी चाहते थे कि यह केवल समाज सेवा संगठन के रूप में कार्य करें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की राजनीति में कांग्रेस दल की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण थी कि भारत का प्रायः एक प्रभुत्वशाली दलीय व्यवस्था के रूप में वर्णन किया गया। कांग्रेस आम जनता का सर्वप्रिय दल था तथा इसके योजना कार्य में सब कुछ सम्मिलित था। प्रायः इसको भारतीय समाज का लघुरूप माना जाता था, जिसमें राष्ट्र के समस्त तत्वों का प्रतिबिम्ब था।

परन्तु इससे हमें गलत परिणामों पर नहीं पहुंचना चाहिए। कांग्रेस में ही विभिन्न तत्व विद्यमान थे, जो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अलग–अलग विचार रखते थे। कांग्रेस दल जो आन्दोलन दल से एक राजनीतिक दल में बदल गया था, चाहता सब विभिन्न तत्वों को अपने विशालतम संगठन में समा सकता था। इसके बाद कांग्रेस दल एक केन्द्रीय दल बन गया जिसमें वामपन्थी और दक्षिणपन्थी राजनीति साथ–साथ शामिल थी। इसने दल में एक आन्तरिक शोधक रचना का गठन किया। जिसमें कांग्रेस की बाहरी परिस्थितियों के अनुसार इनके भिन्न–भिन्न तत्व एक–दूसरे में घुल–मिल सकते थे।

यह एक तथ्य है कि भारत में कांग्रेस का प्रभाव सम्पूर्ण नहीं था। यद्यपि लोकसभा में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त था फिर भी कभी भी राष्ट्रीय चुनावों में इसे सार्वजनिक मतों का बहुमत नहीं मिला। दूसरी और विरोधी दलों को लोकसभा में यद्यपि कम स्थान प्राप्त थे, परन्तु उनके पीछे मतदाताओं की पर्याप्त शक्ति थी और राज्य स्तर पर कांग्रेस का प्रभाव और भी कम था। भारत में विरोध विशेषतः सरकार का विरोध था। कांग्रेस दल सत्तारूढ़ दल था अतः विरोध का अभिप्राय कांग्रेस के विरोध से था। विरोधी पक्ष का प्रयास मुख्यतः कांग्रेस की आलोचना करना तथा इसको सत्ता से हटाना था।

2.4.4. दलीय व्यवस्था की विशेषताएँ

भारतीय दलीय व्यवस्था में तीन अवसर ऐसे आए हैं, जब इसमें मूलभूत परिवर्तन घटित हुए। उदाहरणतः 1977 में विरोधी दलों द्वारा संचालित जनता सरकार का केन्द्र में सत्तारूढ़ होना। इससे पहले 1967 में लगभग 8 राज्यों में (हरियाणा सहित) पहली बार विरोधी दलों ने अपनी सरकारें बनाई जो कांग्रेस पार्टी के एकाधिकार को एक गहरा झटका माना गया। 1987 में भी एक बार विरोधी दलों नें मिलकर राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार स्थापित की। 1991 में कांग्रेस राष्ट्रीय सत्ता से हाथ धो बैठी और ढेर सारी विरोधी दलों के गठबन्धन की सरकार बनी जो 2003 तक चल रही है। इस प्रकार एकल दल आधिपत्य टूटकर बहुल–दलीय व्यवस्था का पर्दापण हो गया है। इस परिपेक्ष में भारतीय दल व्यवस्था की विशेषताएँ निम्न है :–

(I) बहुदलीय पद्धति :– 1977 तक कांग्रेस का आधिपत्य रहा। परन्तु 1980 में फिर कांग्रेस पार्टी का एकाधिकार स्थापित हो गया। 1989 में फिर मिली जुली सरकार बनी, जिसमें कई विरोधी दल शामिल थे, परन्तु 1991 के पश्चात् कांग्रेस दल की प्रधानता का श्रीगणेश हुआ जो 1996 को चुनाव गहरी जड़े पकड़ गया और वर्तमान राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक मार्चे की सरकारी (2003) में 24 दल शामिल थे।

1999 के लोकसभा चुनावों में राजनैतिक दलों की संख्या 654 से अधिक हो गई है।

(II) व्यक्तिगत नेतृत्व पर आधारित :– 1951 से 1964 तक कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू की प्रधानता रही। 1970–76 और 1980–84 में इन्दिरा गांधी का व्यक्तित्व पार्टी में छाया रहा। 1984 के बाद राजीव गांधी का प्रभाव रहा। 1991 के पश्चात् अटल बिहारी के व्यक्तित्व पर भारतीय जनता पार्टी टिकी हुई है। उधर विरोधी दल कांग्रेस में सोनिया गांधी का ही प्रभाव है।

(III) राजनैतिक दलों में निरन्तर विभाजन एवं विघटन की प्रवृत्ति :– अब तक कांग्रेस पार्टी तीन बार विभाजित हो चुकी है। 1969 में कांग्रेस (ओ) और कांग्रेस (आई), 1977 में गठित जनता पार्टी विभाजित होकर चार अन्य पार्टियों में बँट गई। 1978 और 1995 में कांग्रेस में पुनः विघटन हुआ। जनता दल का विभाजन सबसे अधिक और अति शीघ्रता से हुआ है। अन्य प्रमुख दलों में भी विघटन हुआ है।

(IV) अवसरवादिता की उभरती प्रवृत्ति :– भारतीय राजनीति में अवसरवादिता सदैव से विद्यमान रही है और अभी हाल ही के वर्षों में यह निरन्तर उग्र रूप ग्रहण कर रही है। रजनी कोठारी के अनुसार, ''व्यक्ति का महत्व अभी भी राजनीति में बहुत है। भारत में एक ही संगठन के अभिन्न अंग अलग–अलग काम करते हैं। एक ही दल के राष्ट्रीय और राज्य शाखाएँ प्रतिकूल दिशाओं में चलती है और ऐसे गुटों व तत्वों से हाथ मिलाती हैं जो विचारधारा और नीति में उनसे भिन्न हैं।'' जनवरी 1980 के केरल विधानसभा चुनावों में इन्दिरा कांग्रेस और जनता पार्टी ने परस्पर सहयोग करते हुए एक ही फ्रन्ट के अन्तर्गत चुनाव लड़ा, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर ये दल एक–दूसरे के कट्टर विरोधी थे और हैं। इस प्रकार की अवसरवादिता के अन्य अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

(V) राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रम में स्पष्ट भेद का अभाव :– भारत के राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों में स्पष्ट भेद का अभाव है और इसी कारण वे जनता के सम्मुख स्पष्ट विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। इस प्रकार के विचार भेद के अभाव का एक कारण यह है कि आज भारत के राजनीतिक रंगमंच पर जितने भी पात्र दृष्टिगोचर होते हैं, उन सबको राजनीतिक प्रशिक्षण राष्ट्रीय आन्दोलन में ही प्राप्त हुआ है, लेकिन इसका द्वितीय और अधिक प्रमुख कार यह है कि स्वयं राजनीतिक दलों की नीतियाँ और कार्यक्रम अत्यधिक अस्पष्ट और अनिश्चित हैं। कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य लगभग एक दर्जन छोटे–बड़े राजनीतिक दल भी समाजवाद को ही अपना लक्ष्य घोषित किये हुए हैं। अनेक राजनीतिक दलों के पास अपना कोई निश्चित कार्यक्रम न होने के कारण उनके द्वारा विध्वंसकारी कार्यों का आश्रय लिया जाता है और विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहित किया जाता है।

(V) साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दल :– भारत में अनेक राजनीतिक दल साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय आधार पर गठित है। ऐसे दलों में अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (A.D.M.K.), द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (D.M.K.), अकाली दल, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलिस, नेशनल कांफ्रेंस, असम गण परिषद, सिक्किम संग्राम परिषद और अन्य अनेक दलों का नाम लिया जा सकता है। नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम प्रदेश और अरूणाचल प्रदेश में तो नागालैण्ड लोकतान्त्रिक दल और मणिपुर पीपुल्स पार्टी आदि ही प्रभावशाली है और अखिल भारतीय दलों का प्रभाव लगभग नगण्य है। लोकसभा चुनावों में अपनी शक्ति का परिचय देने में सफल रहते हैं। 1989–2002 में शिव सेना ने भी अपनी शक्ति में पर्याप्त वृद्धि की जो एक साम्प्रदायिक दल है तथा क्षेत्रीय भी।

(VI) राजनीतिक दलों की आन्तरिक गुटबन्दी :– भारत की दल प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता विभिन्न दलों की आन्तरिक गुटबन्दी है। लगभग सभी राजनीतिक दलों में छोटे–छोटे गुट पाये जाते हैं, एक वह गुट जो सत्ता में है और दूसरा असन्तुष्ट है। इन गुटों में पारस्परिक मतभेद इस सीमा तक पाया जाता है कि कभी–कभी निर्वाचन में एक गुट के समर्थन प्राप्त उम्मीदवार को दूसरे गुट के सदस्य पराजित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। दल में आन्तरिक गुटबन्दी कांग्रेस दल में सबसे ज्यादा पायी जाती है क्योंकि इसमें सत्ता के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहा है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दल की प्रगति पर पड़ता है। अन्य राजनीतिक दलों में भी स्थिति यही है। 1996 में सत्तारूढ़ जनता दल या संयुक्त मोर्चे के अन्य घटक भी गुटबन्दी से मुक्त नहीं हैं। इस प्रकार की गुटबन्दी पश्चिमी देशों के राजनीतिक दलों में नहीं पायी जाती है। शासक दल और अन्य दलों में गुटबन्दी की यह स्थिति भारतीय राजनीति का अभिशाप बनी हुई है।

(VII) राजनीतिक दल–बदल :– भारत में दल–बदल की स्थिति सदैव से विद्यमान रही है, लेकिन 1967 से 1970 के वर्षों में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक भीषण रूप में देखी गयी। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश, आदि राज्यों में विशेष रूप से यह प्रवृत्ति देखी गयी कि एक राजनीतिक दल के सदस्य के रूप में निर्वाचित विधानसभा के सदस्यों द्वारा अपने निर्वाचकों की अनुमति प्राप्त किये बिना ही विधानसभा में अपने राजनीतिक दलों की सदस्यता में परिवर्तन कर लिया गया। इस प्रकार के दल परिवर्तन के परिणामस्वरूप इन राज्यों में बहुत जल्दी–जल्दी सरकारों का पतन हुआ और राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गई। 1991–92 के दौरान दल–बदल की घटनाएँ काफी बैठी। 1998 में उत्तर प्रदेश में जगदम्बिका पाल और कल्याण सिंह ने दल–बदल का नया इतिहास रचा। 1999 में हरियाणा में बंसीलाल सरकार देखते ही देखते दल–बदल की भेंट चढ़ गई और इसका लाभ औमप्रकाश चौटाला को मिला।

(VIII) निर्दलीय सदस्यों की संख्या में कमी :– 1952 के लोकसभा चुनाव में निर्दलीय सदस्यों की संख्या 849 थी, जो 1996 में बढ़कर 10535 हो गई, परन्तु 1998–99 में चुनाव सुधार के सख्त प्रावधानों के कारण इस समस्या में भारी कमी आई और ये केवल 1915 ही रह गए।

2.4.5 राजनैतिक दलों की समस्याएँ

भारत में राजनैतिक दलों की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं:–

(1) संगठनात्मक समस्याएँ : भारत में बहुल राजनैतिक व्यवस्था है। जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति के लोग रहते हैं। धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि से व्यवस्था को चलाना सम्भव नहीं माना जाता, जिससे दलों के संगठन प्रभावशाली एवं मजबूत नहीं हो पाते। इसी कारण दलों में विभाजन एवं विघटन हो जाते हैं। क्षेत्रीय दल भी इससे अछूत नहीं रहे।

(2) दल–बदल : भारत में दल–बदल एक सामान्य सी बात है। दल–बदल देश में राजनीतिक स्थिरता को क्षति पहुंचाने के साथ–साथ प्रशासन तथा संसदीय संस्थाओं में लोगों के विश्वास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह दल–बदल 1967 से 1968 तक लगभग 16 सरकारों के पतन के उत्तरदायी है। दल–बदल स्वस्थ दल प्रणाली के विकास में एक बाधा है।

(3) वित्त साधन : भारत में राजनीतिक दल सामान्यतः अपना वित्तीय लेखा–जोखा, यहाँ तक कि सदस्य तथा कोष संचालन के साधनों से प्राप्त धन का ब्यौरा भी नहीं छापते।

व्यवहारिक रूप से सभी राजनीतिक दलों की आय का सामान्य स्रोत संसद तथा राज्य विधानसभाओं के सदस्यों पर लगाया गया चन्दा है। सभी राजनीतिक दलों की आय के मुख्य स्रोत दान थैलियाँ तथा कोष संचालन भी है। 1956 के कम्पनी अधिनियम ने पहली बार राजनीतिक चन्दों के साथ दान तथा अन्य को कोषों के योगदान की सीमित कर दिया। कम्पनियों द्वारा राजनीतिक दलों को दान देने पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए एक विधेयक 1968 में पारित किया गया, परन्तु राजनीतिक दलों के वित्त साधनों की गति लगातार पूर्ववत् चलती रही। आय का एक कम विवादास्पद तरीका दल के नेताओं को प्राप्त थैलियाँ हैं। ये स्थानीय दल कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता तथा व्यापारी लोगों से सामान्यतः एकत्र की जाती हैं तथा अक्सर चुनावों के समय नेताओं को भेंट कर दी जाती हैं।

(4) नेतृत्व का संकट : राजनीतिक दलों में नेतृत्व का संकट (Crsis of Leadership) पाया जाता है। प्रखर और निर्मल नेतृत्व का अभाव है। राजनीति को हमारे नेताओं ने एक गन्दा खेल बना दिया है। उनमें राजनीतिक अवसरवादिता (Political Opportunism) देखने को मिलती है।

(5) काले धन का प्रभाव : चुनाव बहुत खर्चीले हो जाने से वास्तविक जनसेवी चुनाव मैदान में उतरने से कतराते हैं। दलों को पूंजीपतियों और कम्पनियों से आर्थिक सहायता मिलती रही है। जो लोग धन देते हैं, वे बदले में अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। पूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने यह कहा था कि 'एक व्यक्ति चुनाव में लाखों रूपये खर्च करने के बाद ईमानदार हरगिज नहीं रह सकता।' यह एक ऐसा कटु सत्य है जो हमारी राजनीतिक व्यवस्था के खोखलेपन को प्रकट करता है।

(6) जातिवाद और साम्प्रदायिकता : जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसे जीवन मूल्य हमें विरासत में मिले हैं, जिनके कारण हर दल को इन तत्वों के साथ समझौता करना पड़ता है। योग्य उम्मीदवारों की बजाय उन्हें

ऐसे लोगों को चुनावी टिकट देने पड़ते हैं जिनकी जाति वालों का उन चुनावों के क्षेत्र में बाहुल्य हो।

(7) राजनीति का अपराधीकरण : सभी राजनीतिक दलों में अपराधी तत्व घुस आये हैं। अपराधियों ने राजनीतिक नेतृत्व को अपने पंजे में फंसा लिया है। 1966 के लोकसभा चुनाव परिणामों पर टिप्पणी करते हुए इण्डिया टुडे ने लिखा है : किसी भी अपराध का नाम लिजिए और आपको एक–न–एक सांसद मिल सकता है, जिसके ऊपर उसका आरोप लगा होगा। इस मामले में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। चुनाव में रिकार्ड 435 आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशी खड़े हुए थे। उनमें से 27 तो संसद में भी पहुंच गए। इस सूची में 14 सांसदों के साथ भाजपा सबसे ऊपर हैं, हालांकि उनमें से ज्यादातर छोटे–मोटे मामलों में आरोपी हैं। सपा के पास आपराधिक रिकार्ड वाले सात सांसद हैं जिनमें से चार हिस्ट्रीशीटर हैं : कांग्रेस के एक और बसपा के तीन सांसदों के नाम आपराधिक मामलों से जुड़े हैं।''

(8) भारत में 'सह–अस्तित्व की संस्कृति' का अभाव है : विधानमण्डल में जब दलों की संख्या अधिक हो जाती है तो कभी–कभी मिले–जुले मन्त्रिमण्डल का गठन करना पड़ता है। मिली–जुली सरकारें तभी ठीक प्रकार चल सकती हैं जबकि विभिन्न घटकों के बीच परस्पर विश्वास हो। भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि हमारे नेता नीतियों के कारण नहीं व्यक्तिगत आधारों पर आपस में लड़ते–झगड़ते रहते हैं। संक्षेप में, देश को सुस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दो या तीन अखिल भारतीय दलों की आवश्यकता है।

2.4.6 भारतीय राजनीतिक दलों का वर्गीकरण (Classification of Indian Political Parties)

भारतीय राजनीतिक दलों का चार भागों में बांटा जा सकता है : (1) राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल, (2) क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दल, (3) स्थानीय, किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल और (4) तदर्थ दल।

(1) राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल – निर्वाचन आयोग ने राजनीतिक दलों के मान्यता सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन के लिए 1968 के चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आबंटन) आदेश में संशोधन करते हुए 1 दिसम्बर, 2000 को अधिसूचना जारी की है। नए नियमों के तहत राष्ट्रीय स्तर के दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित राजनीतिक दल को लोकसभा चुनाव अथवा विधानसभा चुनावों के किन्हीं चार अथवा अधिक राज्यों में कुल डाले गए वैध मतों के 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही किसी राज्य अथवा राज्यों से लोकसभा की कम–से–कम 4 सीटें जीतनी होंगी अथवा लोकसभा में उसे कम–से–कम 2 प्रतिशत सीटें (मौजूदा 543 सीटों में कम–से–कम 11 सीटें) जीतनी होंगी जो कम–से–कम तीन राज्यों से हासिल की गई हों। ऐसे दल दो प्रकार के हैं – बिना विचारधारा के और विचाराधारा पर आधारित दल। बिना विचारधारा वाले दलों में कांग्रेस को लिया जा सकता है। विचारधारा से अभिप्राय है, किसी विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक दर्शन में विश्वास और प्रतिबद्धता व्यक्त करना। कांग्रेस को वैचारिक दृष्टि से तटस्थ दल कहा जा सकता है। कांग्रेस एक ऐसा दल है जिसमें अनेक विचारधारा और हितों के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं। इसे दल के बजाय एक सार्वजनिक मंच (प्लेटफार्म) कहा जा सकता है।

विचारधारा में विश्वास करने वाले राष्ट्रीय दलों के दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – दक्षिणपंथी और वामपंथी। दक्षिणपंथी दल जहां यथास्थिति को बनाये रखना चाहते हैं, वहां वामपंथी दल आर्थिक और सामाजिक ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन चाहते हैं। स्वतन्त्र दल, जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी को दक्षिणपंथी दल कहा जाता था क्योंकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में इनके दृष्टिकोण ब्रिटिश अनुदारवादी दल से मिलते–जुलते हैं। वामपंथी दल भी दो प्रकार के हैं – उदार और उग्र। उदार दलों में सभी समाजवादी दलों को लिया जा

सकता है तथा उग्र दलों में सभी प्रकार के साम्यवादी दलों को स्थान दिया जा सकता है। उदारवादी दल, गांधीवाद और फेबियनवादी सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं जबकि साम्यवादी दल क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास करते हैं। समस्त प्रकार के अखिल भारतीय दलों का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष है उनकी सदस्यता सभी धर्मों और जातियों के लिए खुली है।

(2) क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दल – ये वे दल हैं जिनका प्रभाव राज्य की सीमा तक ही हैं। राज्य स्तरी य दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित दल को लोकसभा अथवा विधानसभा चुनाव में डाले गए कुल वैध मतों का कम–से–कम 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही राज्य विधानसभा में कम–से–कम दो सीटें जीतना आवश्यक है अथवा विधानसभा की कुल सदस्य संख्या की कम से कम तीन प्रतिशत सीटें अथवा तीन सीटें (इनमें से जो भी अधिक है) जीतना आवश्यक होगा। इनमें तेलगू देशम्, शिव सेना, डी.एम.के., अन्ना डी. एम.के, असम गण परिषद्, सिक्किम संग्राम परिषद्, समाजवादी पार्टी, तमिल मनीला कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस, हरियाणा विकास पार्टी आदि प्रमुख हैं। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, असम, सिक्किम आदि राज्यों में ये दल प्रभावशाली हैं।

(3) स्थानीय, किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल – कतिपय दल विशेष जाति या सम्प्रदाय तक ही सीमित हैं। केरल की मुस्लिम लीग, महाराष्ट्र की शिव सेना, पंजाब का अकादल दल तथा बिहार की झारखण्ड पार्टी ऐसे ही दल हैं।

(4) तदर्थ दल – भारत में ऐसे भी दल हैं जो बनते और बिगड़ते रहते हैं। इन्हें छोटे–छोटे गुट कहा जा सकता है। ऐसे दलों में कांग्रेस (तिवारी), केरल कांग्रेस, बंगला कांग्रेस, हरियाणा कांग्रेस, जनता पार्टी, रामराज्य परिषद् आदि को याद किया जा सकता है। ऐसे दल कब बन जाते हैं और कब अस्त हो जाते हैं इसका पता लगाना कठिन है। ये विभिन्न दलों से निकले असन्तुष्ट नेताओं द्वारा निर्मित गुट हैं।

प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल और उनके कार्यक्रम (Major National Parties and their Programmes)

मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल एवं उनके चुनाव चिन्ह

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	कांग्रेस	हाथ का पंजा
भारतीय जनता पार्टी	भाजपा	कमल
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	कम्यु	हंसिया बाली
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	माकम्यु	हथौड़ा, हंसिया एवं तारा
ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस		फूल एवं घास
राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी	एनसीपी	घड़ी
बहुजन समाजपार्टी	बसपा	हाथी
नेशनल पीपुल्स पार्टी	एनपीपी	पुस्तक

इनमें से प्रमुख राष्ट्रीय दलों की विचारधारा, कार्यक्रम, संगठन एवं भूमिका का यही विवेचन करना अपरिहार्य हैं।

कांग्रेस पार्टी : कांग्रेस (ई) (Congress Party : Congress (I))

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई। 1907 तक कांग्रेस का लक्ष्य विदेशी शासन पर दबाव डालना मात्र था। सन् 1907 से 1919 तक कांग्रेस उदारवादियों और उग्रवादियों में विभक्त रही। सन् 1920 से 1947 तक कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया और देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त कांग्रेस एक राजनीतिक दल में परिवर्तित हो गयी तथा केन्द्र और राज्यों के निर्वाचनों में प्रचण्ड बहुमत प्राप्त कर सत्ता का उपयोग करने लगी। सन् 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस की स्थिति दुर्बल हुई। सन् 1969 में कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गयी तथा 1971 एवं 1972 के निर्वाचनों में कांग्रेस को पुनः प्रचण्ड विजय प्राप्त हुई। श्री हर्षदेव मालवीय ने लिखा है, ''कांग्रेस की भव्य विरासत ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध शानदार संघर्ष और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी भारत तथा जनता के लिए बेहतर जीवन के प्रयास की दिशा में प्राप्त सफलताओं से भरपूर है।''

कांग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है? इस प्रश्न का जवाब 15 सितम्बर 1931 में ही महात्मा गांधी ने लन्दन में 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में भाषण के दौरान किया था, ''कांग्रेस मूलतः भारत में 7 लाख गांवों में बसे मूक, अधभूखे करोड़ों लोगों का प्रतिनिधित्व करती है – चाहे वे तथाकथित ब्रिटिश भारत या भारतीय भारत के हों। कांग्रेस यह मानती है कि उन्हीं हितों की सुरक्षा की जानी चाहिए जो इन करोड़ो मूक लोगों के हितों का साधन करते हैं।'' उन ऐतिहासिक दिनों से लेकर आज तक करोड़ों मूक लोगों तथा राष्ट्रीय हितों और दूसरी ओर कुछ वर्गीय हितों मं संघर्ष छिड़ा, कांगेस अपनी अधिकांश जनता के हितों के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ रही।''

संगठन – कांग्रेस की सदस्यता दो प्रकार की है – प्रारम्भिक और सक्रिय। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष हो, कांग्रेस का सदस्य बन सकता है। सदस्य बनने के लिए दल के उद्देश्यों में लिखित विश्वास प्रकट करना पड़ता है। प्रारम्भिक और सक्रिय सदस्यों के चन्दे तथा अधिकारों में अन्तर है। संगठन की दृष्टि से ग्राम या मोहल्ला कांग्रेस समिति संगठन की आधारभूत इकाई है। ग्राम और मोहल्ला कांग्रेस समितियों के ऊपर तहसील समितियां होती हैं। इसके ऊपर जिला समितियां और प्रान्तीय समितियां होती हैं। संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण देश पच्चीस प्रदेशों में विभक्त है। प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के ऊपर कांग्रेस का राष्ट्रीय या अखिल भारतीय संगठन होता है जो एक अध्यक्ष, एक कार्यकारिणी समिति, एक अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और कांग्रेस के खुले वार्षिक अधिवेशन से मिलकर बनता है। कांग्रेन ने विधान में एक नये संशोधन द्वारा अध्यक्ष की अवधि तीन वर्ष कर दी है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में अध्यक्ष के अतिरिक्त 20 अन्य सदस्य होते हैं। कार्यकारिणी समिति के 10 सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं और 10 सदस्य कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। कार्यकारिणी समिति में ही कांग्रेस की सर्वोच्च शक्ति निहित है। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं – निर्वाचित, पदेन और सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधि। कांग्रेस के संसदीय कार्यों के नियन्त्रण और समन्वय के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति एक संसदीय बोर्ड की स्थापना करती है। जिसमें कांग्रेसाध्यक्ष और पांच अन्य सदस्य होते हैं।

कांग्रेस (आई) की नीतियों और कार्यक्रम (Programme and Policies of the Congress (I))– जनवरी 1980 के लोकसभाके चुनावों के समय इस दल ने जो चुनाव आविस–पत्र (Election Manifesto) जारी किया था और उसके पश्चात् इस दल ने जो नीति प्रस्ताव समय–समय पर पारित किये हैं उसके अनुसार इस दल के कार्यक्रम और नीतियों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैं :–

1. धर्म–निरपेक्ष समाज (Secular Society) – इस दल ने यह वचन दिया था कि यह दल धर्म–निरपेक्ष की

स्थापना के लिए वचनबद्ध है और इस मन्तव्य के लिये यह दल ऐसी कार्यवाहियाँ करेगा जिससे साम्प्रदायिक एकता और धार्मिक सहनशीलता विकसित हो सके। इस दल ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा और राष्ट्रीय जीवन में उनके प्रभावशाली सहभागिता को यकीनी बनाने के लिए आवश्यक पग उठाने का भी वचन दिया था। इस दल इस मत का समर्थक है कि संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार अल्पसंख्यकों के द्वारा स्थापित की गई शैक्षणिक संस्थाओं को पूर्ण सुरक्षा और धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। धर्म–निरपेक्षता को शक्तिशाली बनाने के लिए यह उन राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं के विरूद्ध आवश्यक कार्यवाही करने के पक्ष में है जो संस्थाएँ भारतीय शासन प्रणाली के मूल सिद्धान्तों को नष्ट करने के लिए साम्प्रदायिक वर्गों (Sectional) या जात–पात सम्बन्धी भावनाओं को उत्तेजित करती है।

2. अल्पसंख्यक (Minorities) – इस दल ने यह वचन दिया था कि साम्प्रदायिक हिंसा (Communal Violence) को समाप्त करने के लिए यह दल एक विशेष शक्ति (Force) स्थापित करेगा, जिसका उद्देश्य साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करने में सहायता करना होगा। इस शक्ति में अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लोग भर्ती किए जायेंगे। इसके अतिरिक्त यह दल अल्पसंख्यक आयोग (Minority Commission) को संवैधानिक मान्यता देने के पक्ष में हैं। अल्पसंख्यकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रति भी यह दल विशेष ध्यान देने का समर्थक है। अपने चुनाव आविस–पत्र में इस दल ने अल्पसंख्यकों को विश्वास दिलाया था कि सुरक्षा सेवाओं और सरकार की अन्य सेवाओं में उन्हें उचित रोजगार के अवसर प्रदान किए जाएंगे। इस दल ने यह भी विश्वास दिलाया था कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (Aligarh Muslim University) के अल्पसंख्यक स्वरूप (Minority Character) को यकीनी बनाया जायेगा और यह दल अल्पसंख्यकों के निजी कानून (Personal Law) में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

3. प्रजातन्त्र को शक्तिशाली बनाना (Strengthening of Democracy) – इस दल में यह विश्वास प्रकट किया था कि कुछ विशेष हितों के द्वारा धन का अधिक प्रयोग और शारीरिक पक्ष से डराने–धमकाने (Physical Intimidation) की कार्यवाहियों को रोकने के लिए आवश्यक पग उठाने की तत्काल आवश्यकता है। इस दल के विचार में कार्यवाहियाँ विशेष करके पिछड़े क्षेत्रों में अत्यधिक घटती हैं और जब तक इन कार्यवाहियों को समाप्त नहीं किया जाता तब तक भारतीय लोकतन्त्र शक्तिशाली नहीं बन सकता। इस दल ने जनता दल की सरकार पर यह दोष लगाया था कि इस सरकार ने प्रजातन्त्र विरोधी ऐसी कार्यवाहियों को रोकने के लिए कोई यत्न नहीं किये हैं, अपितु इसके विपरीत चुनावों में विजय प्राप्त करने के लिए जनता दल की सरकार ने स्वयं उन कार्यवाहियों का सहारा लिया हैं। जनता सरकार ने दल परिवर्तन (Defection) को भी उत्साहित किया था और भी कुछ ऐसी कार्यवाहियाँ की थी, जिनके कारण भारतीय प्रजातन्त्र कमजोर है। इसलिए कांग्रेस (I) ने इस बात पर बल दिया था कि भारतीय प्रजातन्त्रीय प्रणाली में जो भी अभाव या पथभ्रष्टता (Aberration) प्रवेश कर गई है। उन सभी को दूर करने के लिए यह दल ठीक रूप से कार्यवाही करेगा।

4. प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण पर दृढ़ विश्वास प्रकट किया था। इस दल का विचार है कि राजनीतिक और सामाजिक आर्थिक गतिविधियों में लोगों को विशाल स्तर पर शामिल करने के लिए प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया को कार्यान्वित रूप देना अनिवार्य है। इस दल का यह मत है कि प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया निम्न स्तर पर आरम्भ होना अनिवार्य है ताकि लोग सरकार के साथ सम्बन्धित स्थानीय स्तर के कार्यों

से क्रियाशील सहभागी (Active Participants) बन सके। यह दल दहेज प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्राथमिकता (Priority) देने के पक्ष में हैं।

5. आर्थिक कार्यक्रम (Economic Programme) – यह दल समाजवादी समाज (Socialist Society) स्थापित करने के लिए बचनबद्ध है। यह दल ऐसा अर्थ व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो शोषण से मुक्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही यह दल योजनाबन्दी का पुननिर्माण करने का समर्थक है। अर्थव्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए इस दल की दृष्टि से अधिक से अधिक वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास (Technological Development) की आवश्यकता है। मुद्रा के प्रसार (Inflation) को रोकने के लिए मांग और पूर्ति (Demand and Supply) में ठीक संतुलन स्थापित करने के लिए यह दल उचित वित्तीय नीतियों को ग्रहण करना चाहता है। इस दल को विश्वास है कि इन मन्तव्यों की प्राप्ति के लिए उत्पादन को विशाल स्तर पर बढ़ाना अति अनिवार्य है और यह तब ही सम्भव हो सकता है। यदि ऐसा आर्थिक वातावरण विकसित किया जाये जिसमें लोग औद्योगिक धन्धों में पैसा लगा सकें। इसके अतिरिक्त इस दल का यह विश्वास है कि जब तक आवश्यक कच्ची सामग्री उचित मात्रा में उत्पादकों को प्राप्त नहीं होती तब तक उत्पादन के निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस मन्तव्य की प्रान्ति के लिए इस दल ने परिवहन के साधनों की योग्यता में सुधार करने, बिजली के उत्पादन को बढ़ाने और स्मगलिंग, जखीराबाजी और अन्य आर्थिक अपराधों को कठोरता सहित निपटाने के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ करने का विश्वास दिया था। इसके अतिरिक्त इस दल का यह मत है कि देश की अर्थव्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए विदेशी मुद्रा के संयम सहित प्रयोग करना अति अनिवार्य है और विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) को केवल ऐसी वस्तुओं को विदेशों से मंगवाने के लिए व्यय किया जाना चाहिए, जो वस्तुएं देश के उत्पादन को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह दल देश के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन की मात्रा और गति को अधिक से अधिक सीमा तक पहुंचाने का इच्छुक है।

6. राष्ट्रीय आमदनी नीति (National Income Policy) – आमदनी सम्बन्धी यह दल एक विशाल राष्ट्रीय नीति निश्चित करना चाहता है। इस दल के विचार के अनुसार ऐसी नीति का मुख्य उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) और पेशे के आयु प्रबन्धों (Earning Structure) में ऐसे परस्पर स्वीकृत स्तर (Norms) स्थापित करना होगा जो मुद्रा प्रसार के दबावों (Inflationary Pressures) से, जहां तक सम्भव हो सके, सुरक्षित रह सकें और उनमें एक परस्पर सन्तुलन कायम रह सके। इसका साधारण अर्थ यह है कि यह दल विभिन्न पेशों और क्षेत्रों सम्बन्धी आमदनी की एक ऐसी नीति निश्चित करना चाहता है जिसके साथ मुद्रा का प्रसार न हो और विभिन्न पेशों से होने वाली आमदनी में एक उचित सन्तुलन बना रहे।

7. रोजगार (Employment) – यह दल रोजगार के अवसरो को बढ़ाने के लिए औद्योगिक विकास के साधन को विशाल स्तर पर अपनाना चाहता है। इस दल का विचार है कि बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए ऐसी औद्योगिक योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये जो रोजगार के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करती हो। अधिक से अधिक रोजगार को यकीनी बनाने के लिए यह दल ग्रामीण और नगर क्षेत्रों में कारीगरों को अधिक से अधिक सुविधाएँ देने का समर्थन करता है ताकि वह अपने लिए आप रोजगार पैदा कर सकें। इस दल का यह सुझाव है कि प्रत्येक परिवार का कम से कम एक व्यस्क सदस्य उतना वेतन कमाता हो जितना कि सामाजिक कीमतों के अनुसार उचित हो। इस मन्तव्य के लिए यह दल एक समय–सीमित कार्यक्रम (Time Bound Programme)लागू करना चाहता है। यह दल रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के मन्तव्य से

वनों का विकास, दरियाओं और सिंचाई की गहरों में से रेत निकालने के कार्यों आदि को विशाल स्तरा पर ग्रहण करना चाहता है। शिक्षक और योग्य युवक पुरूषों और स्त्रियों की सहायता करके उन्हें अपना कारोबार चलाने के योग्य बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

8. काश्तकारी (Agriculture) – यह दल काश्तकारी का आधुनिकीरण (Modernisation) करने के लिए काश्तकारी की उपज को अत्यधिक बढ़ाने के पक्ष में है। यह दल इस विचार का समर्थक है कि प्रायः जनता दल और विशेष करके लोक दल के नेताओं ने बड़े–बड़े भूपतियों और छोटे कृषकों के हितों को परस्पर समरूप या एक समान दिखाने का यत्न किया है। परन्तु इस दल का यह विचार है कि कृषकों या उद्योग विरूद्ध काश्तकारी के नाम पर लोगों की भावनाओं को जाग्रत करना एक राजनीतिक चाल है। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र यह दावा किया था कि कांग्रेस शासन के दौरान की 'लघु कृषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) स्थापित की गई थी। अत्यधिक संख्या में छोटे कृषकों ने इस संस्था से अनेकों प्रकार की रियायतें और लाभ प्राप्त किए थे। 'लघु कृषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) की गतिविधियों का सम्पूर्ण देश में विस्तार करना और इसके कार्यक्रमों का आधुनिकीकरण करना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

इसके अतिरिक्त कृषकों को ब्याज की उचित दर पर कर कर्जे प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करना, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) और अन्य वित्तीय संस्थाएं छोटे और मामूली कृषकों की सहायता के लिए स्थापित करना, कृषकों को कर्जे देने की विधि सरल बनाना, मुर्गीखाने, रेशम के उत्पादन और दूध की डेरियों के द्वारा छोटे कृषकों की आय में वृद्धि काश्तकारी के साथ सम्बन्धित उद्योगों (Agro-Industries) को विशाल स्तर पर स्थापित करना, कृषक काश्तकारी सेवा केन्द्र (Farmer's Agro-Service Centres) खोलने, ग्रामीण क्षेत्र में भण्डार गृहों की सुविधाएँ (Ware Housing Facilities) प्रदान करना, पांच एकड़ तक शुष्क भूमि पर मालिया समाप्त करना और प्रचलित मालिया प्रणाली को समाप्त करके किसी अन्य उचित और साधारण प्रणाली को लागू करना कांग्रेस (I) के कार्यक्रम में शामिल है। इसके अतिरिक्त इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी वचन दिया था कि छोटे और मामूली कृषकों को आर्थिक पक्ष से पिछड़ा वर्ग समझा जाएगा और उन्हें यह सभी सुविधाएं और लाभ प्राप्त होंगे जो आर्थिक पक्ष से अन्य पिछड़े वर्गों को दिए जाते हैं।

9. उद्योग (Industry) – यह दल छोटे ग्रामीण, स्तर और विशाल स्तर के उद्योग के सामूहिक विकास पर विश्वास रखता है। अन्य शब्दों में यह दल प्रत्येक स्तर के उद्योग को विकसित करने के लिए उत्साहित करना चाहता है। यह दल उद्योगों के द्वारा रोजगार के अधिक से अधिक अवसर उत्पन्न करना चाहता है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि यह दल उद्योगों में मशीनीकरण या आधुनिकीकरण (Mechanisation or Modernisation) करना नहीं चाहता। इसके विपरीत यह दल वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की सहायता के साथ विशाल स्तर के उद्योग स्थापित करने के पक्ष में है और उसके साथ–साथ निम्न और मध्य स्तर के और घरेलू उद्योग के विकास को उत्साहित करने का इच्छुक है।

10. बहु–राष्ट्रीय (Multi Nationals) – 'बहु–राष्ट्रीय' शब्द उन उद्योगों या संस्थाओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिनकी शाखाओं या जिनके क्षेत्र का विस्तार विभिन्न देशों में हुआ हो। कांग्रेस (I) ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह वचन दिया था कि उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में बहु–राष्ट्रीय व्यापारों की भूमिका या उनके प्रभावों का पूर्ण रूप से निरीक्षण किया जाएगा ताकि उनकी गतिविधियों को सीमित करने के लिए

आवश्यक सामग्री का अन्वेषण किया जा सके। अन्य शब्दों में यह दल बहु–राष्ट्रीय व्यापारों के विस्तार के पक्ष में नहीं है और देश की अर्थव्यवस्था और उनके हानिकारक या विनाशकारी प्रभावों को निष्फल बनाना चाहता है।

11. श्रम (Labour) – उद्योगों में श्रमिकों की सहभागिता को यकीनी बनाना इस दल के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। इस दल का विचार है कि उत्पादन और औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों का सहभागी होना अति आवश्यक हैं। इस दउ ने यह विश्वास दिया था कि ऐसी सहभागिता का तुरन्त ही विस्तार किया जाएगा और सरकारी व्यापार इस सम्बन्धी प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करेंगे। यह दल सामाजिक न्याय की स्थिरता के लिए श्रमिकों की भलाई को अत्यन्त आवश्यक समझता है। कांग्रेस (I) ने अपने चुनाव आविस–पत्रों में काश्तकारी के साथ सम्बद्ध श्रमिकों (Agriculture Labour) की सर्वोन्नमुखी स्थिति को सुधारने के लिए विशेष कार्यक्रम लागू करने का विश्वास दिया था। काश्तकारी के साथ सम्बद्ध श्रमिकों को घर बनाने के लिए जमीन मुफ्त देना, घर बनाने के लिए सहायता देना, उनके लिए कम से कम वेतन निश्चित करना, उनके बच्चों के लिए स्कूल शिक्षा का प्रबन्ध करना और उनको बेरोजगार होने से सुरक्षित रखना आदि तथ्य कांग्रेस (I) के काश्तकारी के श्रमिकों के साथ सम्बन्धित कार्यक्रम में शामिल थे।

12. कमजोर वर्ग (Weaker Sections) – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह विश्वास दिया था कि कमजोर वर्गों के लिए एक विशेष कार्यक्रम लागू करेगा। पांच वर्षों के समय में सभी अनिवार्य गाँवों को पीने के शुद्ध पानी का प्रबन्ध करना, समस्त देश के ग्रामीण क्षेत्रों में गृह–निर्माण के कार्य की गति की तीव्र करना, कमजोर वर्गों के लोगों को मकान बनाने के लिए मुफ्त भूमि देना, शहरी क्षेत्रों में गन्दे उपनिवेशों की सफाई करना, सफाई कर्मचारियों के प्रति विशेष ध्यान देना, ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारी समाप्त करना और वचनबद्ध श्रम (Bonded Labour) का अन्त करना कमजोर वर्गों की स्थिति को सुधाराने सम्बन्धी ग्रहण किए जाने वाले कार्यक्रम के विशेष लक्षण होंगे। 1975–1976 में संकटकालीन स्थिति के दौरान कांग्रेस दल की सरकार ने 20 सूत्रीय कार्यक्रम (20-Point Programme) चलाया था। कांग्रेस (I) ने 20 सूत्रीय कार्यक्रम को पुनः लागू करने के लिए अपने चुनाव आविस–पत्र में घोषणा की थी। इस दल ने इस बात पर भी बल दिया था कि भूमि सुधारों को लागू करने के लिए गम्भीर यत्न किए जायेंगे और जनता दल के शासन काल में जिस किसी व्यक्ति से भूमि छीन ली गई थी, वह भूमि उस व्यक्ति को वापिस दी जाएगी।

13. अन्तर्राष्ट्रीय नीति (International Policy) – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह घोषित किया था कि इस दल के विचार में भारत का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बड़ी महत्वपूर्ण, गतिशील और लाभदायक भूमिका अभिनीत करनी है। भारत की यह भूमिका विशेष रूप में विकसित और विकासशील देशों में पाये जाने वाले अन्तरों को सीमित करने के प्रति और विश्व शान्ति की स्थापना के प्रति होगी। यह दल प्रभुताशाली समानता, परस्पर आदर और देशों के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप न करने के आधार पर सभी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने और दृढ़ बनाने पर विश्वास रखता है। अपने चुनाव आविस पत्र में इस दल ने यह घोषित किया था कि :–

(I) कांग्रेस बाह्य खतरों के विरूद्ध भारत की क्षेत्रीय और प्रभुसत्ता की रक्षा करेगा।

(II) भारत के आकार, प्राकृतिक स्त्रोतों, मानवी योग्यता, उसकी भौगोलिक स्थिति और उसकी दीर्घ जमीनी, वायु और समुद्री सीमाओं को प्रमुख मानकर यह दल भारत की रक्षा योग्यता (Defence Capability) को शक्तिशाली बनाने का यत्न करेगा।

(III) अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत के गौरव, सम्मान और राष्ट्रीय हितों को कायम रखेगा।

(IV) शान्तमयी आधारों पर भारत के विकास के लिए परमाणु शिल्प–विज्ञान (Nuclear Technology) के प्रयोग से भारत के प्रभावशाली अधिकारों की रक्षा करेगा।

(V) जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिभासित की गई शान्तमयी सह–अस्तित्व की नीति (Policy of paceful Co-existence) और गुटबन्दी से रहित नीति (Policy of Non-Alignment) का दृढ़ता सहित पालन करेगा।

(VI) दक्षिणी–एशिया (South Asia), दक्षिणी पूर्वी एशिया (South East Asia), पश्चिमी एशिया (West Asia), अफ्रीका (Africa) और लेटिन अमेरिका (Latin America) के देशों में निकटवर्ती सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यत्न करेगा।

(VII) यह दल उन देशों के साथ द्वि–पक्षीय (Bi-lateral) और बहु–पक्षीय (Multi-lateral) समझौते करेगा और उनकी परस्पर ऐसे समझौते करने के लिए उत्साहित करेगा। ऐसे समझौते शांति स्थापित करने के लिए परस्पर सहयोग के लिए और इस क्षेत्र को बाह्य हस्तक्षेप से सुरक्षित रखने के लिए इसका शान्तमयी क्षेत्र बनाने के लिए किए जाएंगे।

निष्कर्ष (Conclusion) – कांग्रेस (I) ने 1980 के लोकसभा के चुनावों में 9 राज्यों की विधानसभाओं के चुनावों में शानदार सफलता प्राप्त की थी। साधारण लोगों को यह विश्वास था कि यह दल अपनी घोषित नीतियों अनुसार साधारण लोगों के हितों के कार्य करने के लिए गम्भीर प्रयास करेगा ताकि यह दल अपने प्रति लोगों के विश्वास को स्थिर रख सके। परन्तु जब लोग प्रायः यह अनुभव करने लग पड़े थे कि दल ने अपनी नीतियों को लागू करने के लिए कोई विशेष सफल प्रयास नहीं किए हैं। इसी कारण मई, 1982 में पश्चिमी बंगाल, हरियाणा, केरल और हिमाचल प्रदेश की विधान सभाओं के चुनावों में इस दल को वह शानदार सफलता प्राप्त न हुई जो केवल 2 वर्ष पूर्व लोकसभा और कुछ अन्य राज्यों की विधान सभाओं के चुनावों में इस दल को विजय प्राप्त हुई थी। जनवरी, 1983 में इस दल की आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और मणिपुर की विधानसभाओं के चुनावों में भी निराशा का मुख देखना पड़ा था। इस दल की लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है। इस दल में आंतरिक फूट अत्यधिक है और इसी कारण कई राज्यों में इस दल की सरकारों की स्थिरता को निरन्तर खतरा बना रहता है। इस दल सम्बन्धी यह विचार भी प्रायः प्रचलित है कि यह दल श्रीमती इन्दिरा गाँधी के व्यक्तित्व के इर्द गिर्द की घूमता है। लोगों का विश्वास पुनः जीतने के लिए इस दल को गम्भीर प्रयास करने पड़ेंगे क्योंकि लोगों का भारी बहुमत इस दल की कार्यप्रणाली से सन्तुष्ट नहीं है।

बीस–सूत्री कार्यक्रम – 1975 में घोषित किया गया। 1982 में इसे नवीनता प्रदान की गई। इसमें भूमि सुधार, कृषि उपज, ग्रामीण विकास, खेती योग्य भूमि की सीमा निर्धारण, कृषि श्रमिकों का वेतन, अनुसूचित जाति एवं जनजाति नियोजन स्वस्थ्य, प्रारम्भिक शिक्षा, उचित मूल्य दुकानें आदि का प्रावधान किया जाएगा।

समय परिवतर्नन के साथ–साथ इसके कार्यक्रम तथा विचारधारा भी बदलती रहती है। आजकल इस दल के प्रमुख कार्य परिवार कल्याण, पेयजल, ग्रामीण आवास, बिजली आदि हैं।

लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और कांग्रेस का चुनाव घोषणा–पत्र

लोकसभा के फरवरी 1998 में सम्पन्न हुए मध्यावधि चुनावों के अवसर पर जारी घोषणापत्र में कांग्रेस ने बावरी मस्जिद

को ध्वस्त होने से नहीं बचा पाने के कारण बिना शर्त माफी मांगी और इसके लिए अपनी तत्कालीन सरकार के पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहराव को पूरी तरह जिम्मेदार ठहराया। घोषणा पत्र में संयुक्त मोर्चे को भानुमति का कुनबा बताया। जनता दल को 'एमीवा' कीडे की तरह घोषित किया गया। इसे निराश और घमण्डी लोगों का जमावड़ा बताया गया। कांग्रेस ने जैन आयोग की रिपोर्ट के मुद्दे पर संयुक्त मोर्चा सरकार से समर्थन वापसी को उचित ठहराया और कहा कि किसी भी परिस्थिति में अपने नेता राजीव गांधी की हत्या के प्रश्न पर समझौता नहीं कर सकती।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में अल्पसंख्यकों से अनेक वादे किये हैं। कहा है कि अल्पसंख्यकों और मानवाधिकारों के लिए एक नया मन्त्रालय गठित किया जायेगा। संविधान में संशोधन करके अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग स्थापित करेगी। उर्दू का उसका उचित स्थान दिलाया जायेगा। पार्टी भारतीयों के लिए समान निजी कानून बनाने के विचार को नहीं मानती। कांग्रेस अल्पसंख्यकों के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण की सुविधा देगी। उन्हें अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को दी जाने वाली विशेष सुविधाओं का भी लाभ देगी।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में कहा है कि देश के आदिवासी क्षेत्रों में विशेष न्यायालयों को स्थापित किया जाएगा। बैंकों द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति के किसानों के लिए शुरू की गई सौ करोड़ रूपये की विशेष ऋण व्यवस्था की राशि को दुगुना कर दिया जाएगा। उद्योगों में कर्मचारियों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया जाएगा। पूर्व सैनिकों के पुनर्वास के लिए नए कार्यक्रम शुरू किए जाएंगे। महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने के लिए पार्टी एक राजनीतिक अभियान शुरू करेगी। कांग्रेस सभी स्कूलों में एन.सी.सी. को अनिवार्य कर देगी। कांग्रेस यह सुनिश्चित करेगी कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ सिर्फ गरीब और जरूरतमन्द लोगों को मिले। वर्तमान परिवार नियोजन की खामियों को एक सुनिश्चित तरीके से दूर करने का प्रयास किया जाएगा। चुनाव घोषणा पत्र में कांग्रेस ने अपने आर्थिक एजेन्डा की भी रूपरेखा निर्धारित की है। कहा गया है कि कृषि और ग्रामीण बुनियादी ढांचे में विशेषकर पिछड़े इलाकों में वास्तविक पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। ऋण प्रणालियों को फिर सशक्त बनाना होगा। बिजली, सड़क, बन्दरगाह, कोयला, तेल और गैस, खनन और दूरसंचार जैसे क्षेत्रों में घरेलू और विदेशी सार्वजनिक और निजी पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। पूंजी बाजार में फिर से उत्साह का संचार करना होगा। रोजगार परक आर्थिक गतिविधियों को नीति का विकास मानकर उन पर विशेष ध्यान देना होगा। इनमें निर्यात, कृषि, पशुधन और पशुपालन, सूचना टैक्नोलॉजी, आवा और निर्माण, वनीकरण, छोटे और ग्रामीण उद्योग, कपड़ा तथा पर्यटन आदि उद्योग शामिल हैं।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में कहा है कि वह विदेश नीति को देश की आर्थिक प्राथमिकताओं और चिंताओं से जोड़ेगी। कांग्रेस देश में पाकिस्तान के सहयोग से चल रही आतंकवादी और घुसपैठ की गतिविधियों का डटकर मुकाबला करेगी। हमारी परमाणु नीति शान्तिपूर्ण और विकासात्मक बनी रहेगी, लेकिन जरूरत पड़ने पर हम अपने अन्य विकल्पों को भी खुला रखेंगे। कांग्रेस अमरीका के सम्बन्धों को ओर मजबूत करेगी। यूरोपीय संघ के साथ समझौतो के सिलसिले को आगे बढ़ाया जायेगा। जापान के साथ और निकट के आर्थिक तथा निवेश सम्बन्ध स्थापित करने का विशेष अभियान चलाया जाएगा। रूस के साथ ऋण समस्या का मान्य हल खोंजने के प्रयास किये जाएंगें। कांग्रेस पूर्ण निरस्त्रीकरण के प्रयास जारी रखेगी। कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता की अपनी नीति को फिर दुहराया है। घोषणा–पत्र में कहा गया है कि धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने वाले वामपंथी मोर्चे ने सन् 1989 के चुनावों में भाजपा को सम्मान दिया। वह राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को समर्थन देने में भी भाजपा के साथ रहा। कांग्रेस ने ही भाजपा से न कभी समझौता किया और न करेगी। पार्टी ने देश में आर्थिक स्वराज की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया है।

''पूर्व भारत से नाता है, सरकार चलाना आता है'– के उद्घोष के साथ कांग्रेस ने विश्वास व्यक्त किया कि स्थायित्वपूर्ण और धर्मनिरपेक्ष सरकार के लिए एक बार फिर उसे भारत की जनता का समर्थन मिलेगा।

12वीं लोकसभा में कांग्रेस को 141 सीटें प्राप्त हुई। अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर–प्रदेश जैसे राज्यों में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्तूबर 1999 और कांग्रेस) – 1999 में 13वीं लोकसभा का चुनाव कांग्रेस ने श्रीमती सोनिया गांधी के नेतृत्व में लड़ा। पिछले वर्ष सोनिया के अध्यक्ष पद सम्भालने से पार्टी को नया वंशगत उत्तराधिकारी मिल गया। सोनिया ने इस चुनाव में अल्पसंख्यकों और दलितों का समर्थन फिर से पाने के साथ–साथ अभिजात वर्ग की सद्भावना का पहले जैसा लाभ उठाने का भरसक कोशिश की। मध्यम वर्ग का दिल जीतने के लिए पार्टी के चुनाव घोषणा पत्र में रोजगार पर जोर देते हुए कहा गया कि ''एक करोड़ नए रोजगार के अवसर बनाए जाएंगे।'' अल्पसंख्यकों के लिए विशेष पैकेज की चर्चा करते हुए प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया गया। राष्ट्रीय जनता दल, अन्ना द्रमुक तथा मुस्लिम लीग जैसे दलों से कांग्रेस ने चुनावी तालमेल भी किया। इस चुनाव में कांग्रेस ने 453 सीटों के लिए प्रत्याशी खड़े किए और उसके मात्र 113 प्रत्याशी (28.42% seat) ही लोकसभा में पहुंचे। यदि कर्नाटक में कांग्रेस के भाग्य का छींका न टूटा होता तो उसका आंकड़ा दो अंकों पर ही सिमट जाता। उत्तर प्रदेश में 1998 के शून्य स्कोर के मुकाबले एक बार उसे 10 सीटें प्राप्त हुई।

चुनाव 1999 : कांग्रेस घोषणा पत्र के प्रमुख बिन्दु

- मुद्रास्फीति के नियन्त्रण के लिए केबिनेट समिति का गठन।
- सन् 2003 तक आयात लाइसेन्स का खात्मा करना।
- छोटे किसानों को मिलने वाले कर्ज की मात्रा दोगुनी करना।
- दूरसंचार में विदेशी निवेश की सीमा पर पुनर्विचार करना।
- प्रतिरक्षा सुधारों के लिए समिति का गठन करना।
- राष्ट्रीय वरिष्ठ नागरिक कोश की स्थापना।
- राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा परिषद् का गठन करना।
- श्रम कानूनों का पुनर्निरीक्षण।
- नई कपड़ा नीति।

जनता पार्टी (Janata Party)

मार्च, 1977 में हुए लोकसभा के चुनावों में जनता पार्टी नामक एक नये राजनीतिक दल ने भाग लिया था। इस दल का निर्माण जनवरी, 1977 में चार राजनीतिक दलों – कांग्रेस (संगठन), भारतीय लोकदल, जनसंघ तथा समाजवादी दल ने मिलकर किया था। जनता दल में इन चार विरोधी दलों के अतिरिक्त कई बागी कांग्रेसी भी इस दल में सम्मिलित हुए थे। ये राजनीतिक दल श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा जून, 1975 में आन्तरिक आपातकालीन स्थिति लागू करने के प्रतिक्रम के कारण अस्तित्व में आया था। इस दल ने मार्च, 1977 में लोकसभा के चुनावों में शानदार सफलता

प्राप्त की थी। श्री मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में इस दल ने सरकार का निर्माण किया। स्वतन्त्रता उपरान्त यह प्रथम समय था कि एक गैर–राजनीतिक दल ने केन्द्र में शासन की बागड़ोर सम्भाली थी। वह वर्णनीति है कि बाबू जगजीवन राम ने कांग्रेस से त्यागपत्र देकर 'कांग्रेस फार डैमोक्रेसी' (Congress for Democracy) नामक एक नये राजनीतिक दल को जनवरी 1977 में जन्म दिया था। 1 मार्च 1977 के लोकसभा के चुनावों में इस दल ने जनता पार्टी के सहयोग से चुनाव लड़े थे। तदोपरान्त मई, 1977 में यह दल भी जनता पाटी में सम्मिलित हो गया था।

जनता पार्टी की नीतियां और कार्यक्रम (Policies and Programmes of the Janata Party) – जनवरी 1980 में लोकसभा के चुनावों के समय जनता दल ने अपना चुनाव–आविस–पत्र (Election Manifesto) जारी किया था। इस चुनाव आविस–पत्र में जनता दल ने अपने प्रमुख सिद्धान्तों और नीतियों का वर्णन किया था। जिन्हें हम संक्षेप रूप में निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन वर्णन कर सकते हैं:–

1. प्रारम्भिक सिद्धान्त (Basic Principles) – इस दल के प्रारम्भिक सिद्धान्त इस प्रकार है–

   (i) सत्तावाद वंश–शासन और व्यक्तिगत महानता (Personality Cult) की विरोधता और प्रत्येक स्तर और लोकतन्त्र की स्थापना।

   (ii) प्रभावशाली और स्थायी सरकार जो कानून के शासन (Rule of Law) पर आधारित होगी और जिसमें लोगों को शान्तमय विधि के द्वारा अपने विरोधी विचार प्रकट करने या आन्दोलन करने का अधिकार प्राप्त होगा।

   (iii) धर्म–निरपेक्ष समाज की स्थापना जिसमें सभी धर्मों और नस्लों के लोगों से उचित स्थान प्राप्त होगा।

   (iv) अर्थ–व्यवस्था और प्रशासन में विकेन्द्रीकरण करना ताकि स्थानीय स्वशासन के निम्न स्तर की संस्थाओं को अधिक से अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

   (v) समाजवादी समाज की स्थापना करना जिसमें जन तक क्षेत्र की प्रमुख भूमिका होगी और यह क्षेत्र अति गरीब लोगों के हितों के लिए कार्य करेगा।

   (vi) आत्म–निर्भरता के द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा को यकीनी बनाना।

   (vii) वास्तविक दलबन्दी रहित विदेशी नीति (Policy of Genuine Non-Alignment) का पालन करना।

2. राजनीतिक कार्य (Political Tasks) – इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में निम्नलिखित राजनीतिक कार्यों की पूर्ति करने पर बल दिया था –

   (i) इस दल का विश्वास है कि हमारे देश के संविधान में कुछ विशेष परिस्थितियों को निपटाने के लिए अनिवार्य व्यवस्थाएँ विद्यमान नहीं है। इसलिए यह दल राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों की शक्तियों सम्बन्धी, राष्ट्रपति राज्य लागू करने सम्बन्धी आदि संवैधानिक व्यवस्थाओं का पूर्ण निरीक्षण करना चाहता है और नये हालातों के अनुसार इनमें आवश्यक परिवर्तन करने का इच्छुक हैं। इसके अतिरिक्त यह दल निगरान सरकार (Caretaker Government) की शक्तियों की सीमा और उसकी स्थिति को स्पष्ट रूप से संवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा वर्णन करना चाहता है।

   (ii) यह दल राजनीतिक अधिकारों की शुद्धता का आदर करता है और इस मत का समर्थक है कि मौलिक अधिकारों की अखण्डता प्रत्येक अवस्था में कायम रहनी चाहिए। इस दल का यह मत है कि मौलिक

अधिकारों और निर्देशक सिद्धान्तों में कोई अन्तर विरोधता नहीं है। यह दल मौलिक अधिकारों को सीमित किये बगैर निर्देशक सिद्धान्तों को लागू करना चाहता है।

जनता दल चुनाव–प्रणाली में अग्रलिखित सुधार लागू करना चाहता हैः–

(i) लोकसभा पर राज्य विधानसभाओं के चुनावों के लिए राज्य के द्वारा वित्तीय सहायता दी जाये।

(ii) प्रमाणित राजनीतिक दलों की उचित गतिविधियों के लिए भी राज्य के द्वारा वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध किया जाये।

(iii) राजनीतिक दलों के हिसाब–किताब की प्रत्यक्ष रूप से चुनाव–आयोग (Election Commission) के द्वारा स्थापित की संस्थाओं के द्वारा जनतक जांच पड़ताल (Public Audit) करने का प्रयत्न किया जाये।

(vi) चुनाव के दौरान किसी विशेष पद के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रशासनिक ढांचे के दुरूपयोग को रोकने का प्रबन्ध किया जायें।

(v) सभी मतदाताओं के लिए जान–पहचान कार्ड (Identity Card) जारी किये जायें।

(vi) प्रत्येक मतदाता को निड़रता सहित अपने मत का प्रयोग करने का पूर्ण अवसर दिया जाये।

(vii) मत का अधिकार देने की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष की जाए।

(viii) यह दल इस पक्ष में है कि दल परिवर्तन कीर मन्दवादी को रोकने के लिए अनिवार्य कानून का निर्माण किया जाना चाहिए, यहाँ यह वर्णन योग्य है कि जनता दल की सरकार ने अपने शासन काल के समय दल परिवर्तन को रोकने के लिए एक संवैधानिक संशोधन करने का यत्न किया था, परन्तु जनता दल के कुछ अपने ही विधायकों के दबाव के अधीन सरकार को यह संवैधानिक संशोधन वापिस लेना पड़ा।

3. आर्थिक कार्य (Economic Tasks) – जनता दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में निम्नलिखित आर्थिक कार्यों को कार्यान्वित रूप देने का विश्वास दिया था :–

(i) आर्थिक योजनाबन्दी में काश्तकारी और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी जायेगी।

(ii) जिन कीमतों पर कृषक उत्पादन करने के लिए सामग्री क्रय करता है, उन कीमतों और जिन कीमतों पर वह अपना उत्पादन विक्रय करता है, में उचित सन्तुलन स्थापित किया जायेगा। अन्य शब्दों में कृषक को उसके उत्पादन का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए व्यवस्थाएँ की जाएगी।

(iii) ग्रामीण–श्रमिकों (Rural-Workers) को संघ (Unions) बनाने के लिए सहायता दी जाएगी।

(iv) जनता सरकार के द्वारा त्यागपत्र देने के समय वस्तुओं की कीमतें जिस स्तर पर अस्तित्व में भी उस स्तर की स्थिरता सहित पुनः स्थापित करने का यत्न किया जायेगा। अन्य शब्दों में बढ़ रही कीमतों को रोका जायेगा और कीमतों को कम करने के लिए यत्न किये जायेंगे।

(v) अति गरीबों की भलाई के लिए जनता दल की सरकार ने एक–कार्यक्रम लागू किया था जिसको ऐनटोडिया (Antyodaya) के नाम से जाना जाता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य अति गरीब लोगों को अपने पैरों पर खड़ा करने योग्य बनाना है। जनता दल ने यह दावा किया था कि अपने शासन काल में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 12 लाख गरीब परिवारों को सहायता दी गई थी। इस दल ने अपने

चुनाव–आविस–पत्र में यह विश्वास दिया था कि आने वाले पांच वर्षों में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 125 लाख अति गरीब परिवारों को सहायता दी जाएगी।

(vi) 10 वर्षों के समय के भीतर सभी क्षेत्रों में ग्रामीण रोजगार देने सम्बन्धी योजना (Rural Employment Gurantee Scheme) को लागू किया जायेगा और इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को रोजगार देना अनिवार्य होगा।

(vii) उन बेरोजगार ग्रेजुएटों को भत्ता दिया जायेगा जो रोजगार प्राप्त होने तक सामाजिक सेवाओं की योजनाओं में कार्य करेंगे।

(viii) पांच वर्षों के समय के भीतर भूमिहीन श्रमिकों और कारीगरों के संस्थात्मक कर्जे (Institutional Credit) को तीन गुणा कर दिया जायेगा।

(ix) योजनाबन्दी के खर्चे का 45 प्रतिशत हिस्सा 'सामूहिक ग्रामीण विकास' (Integerated Rural Development) के लिए लगाया जाएगा और भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को 9वीं अनुसूची में अंकित किया जायेगा ताकि न्यायपालिका इन कानूनों को किसी आधार पर असंवैधानिक घोषिक न कर सके। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि संसद संवैधानिक संशोधन के द्वारा जिस कानून को भी 9वीं अनुसूची (9^{th} Schedule) में अंकित कर देती है। वह कानून न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार (Power of Judicial Review) से बाहर होता है।

(x) पांच वर्षों के समय के भीतर सभी फालतू भूमि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के भूमिहीन सदस्यों में विभक्त की दी जाएगी।

(xi) जो भी गुजारे या पट्टेदार निजी रूप में काश्त करते हैं, उनको पांच वर्षों के समय के भीतर उस भूमि के स्वामित्व के अधिकार दे दिये जायेंगे।

(xii) कृषकों को उनके उत्पादनों का पारिश्रमिक मूल्य दिया जायेगा।

(xiii) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण कम किया जायेगा और एकाधिकारों (Monopolies) और अन–उचित व्यापारिक गतिविधियों को समाप्त किया जायेगा।

(xiv) उचित करों और नियन्त्रण द्वारा विलासमयी या अय्याशी की सामग्री के उपभोग को सीमित किया जायेगा।

(xv) जनमत क्षेत्र (Public Sector) और सहकारिता (Co-operatives) की प्रमुख भूमिका को यकीनी बनाया जायेगा। अन्य शब्दों में यह दल जनतक क्षेत्र और सहकारिता के उद्देश्यों को अधिक उत्साहित करने के पक्ष में है।

(xvi) सभी उद्योगों और काश्तकारी श्रमिकों के कम से कम वेतन को यकीनी बनाया जायेगा।

(xvii) बोनस कानून (Bonus Act) में सुधार करने के लिए इसकी कमियों को दूर किया जायेगा।

(xviii) आवश्यक अन्वेषणों और प्रयोगों के द्वारा शान्तमयी मन्तव्यों के लिए प्रमाण शक्ति का विकास किया जायेगा।

4. प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press) – यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार मानता है। यह दल संविधान में संशोधन करके प्रैस की स्वतन्त्रता सम्बन्धी स्पष्ट संवैधानिक व्यवस्था करना चाहता था। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि वर्तमान समय में हमारे संविधान में प्रैस की स्वतन्त्रता सम्बन्धी कोई विशेष वर्णन नहीं किया गया है, अपितु अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत वर्णित भाषणों और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता (Freedom of Speech and Expression) में ही प्रैस की स्वतन्त्रता को सम्मिलित समझा जाता है। यह दल प्रसारण और दूरदर्शन की स्वाधीनता (Autonomy) प्रदान करने का इच्छुक है। इस मन्तव्य के लिए ही इस दल की सरकार ने 'प्रसार भारतीय विधेयक' (Parsar Bharti Bill) लोकसभा में प्रस्तुत किया था, परन्तु लोकसभा के भंग हो जाने के कारण वह विधेयक कानून का रूप धारण न कर सका। यह दल दूरदर्शन और प्रसारण के लिए एक स्वाधीन निगम (Autonomous Corporation) स्थापित करना चाहता है।

5. अल्पसंख्यक (Minorities) – जनता दल का यह विश्वास है कि अल्पसंख्यकों की समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान देना अनिवार्य है ताकि उनको यह विश्वास हो सके कि समूचे राष्ट्र में उनको उचित स्थान प्राप्त होगा। इस दल की सरकार ने अपने शासनकाल में अल्पसंख्यकों की समस्याओं को निपटाने के लिए अल्पसंख्यक आयोग (Minorities Commisssion) स्थापित किया था। यह दल इस आयोग को संवैधानिक मान्यता और कानूनी शक्तियाँ देना चाहता था परन्तु लोकसभा भंग हो जाने के कारण यह दल ऐसा न कर सका। इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में अल्पसंख्यक आयोग को संवैधानिक मान्यता देने सम्बन्धी अपने विचार को पुनः व्यक्त किया था। इस दल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह संवैधानिक मान्यता देने सम्बन्धी अपने विचार को पुनः व्यक्त किया था। इस दल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह दल प्रत्येक सम्भव यत्न करेगा कि सभी अल्पसंख्यकों के विकास के लाभों को समरूप में मान सकें और किसी भी अल्पसंख्यक के विरूद्ध किसी प्रकार का भेदभाव न हो। इस दल ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक स्वरूप (Minority Character of Aligarh Muslim University) को पुनः स्थापित करने का विश्वास दिया था।

6. अनुसूचित जातियाँ, कबीले और पिछड़ी श्रेणियाँ (Schedule Castes, Tribes and Backward Classes) – जनता दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में आर्थिक और सामाजिक पक्ष से पिछड़ी श्रेणियों की समस्याओं का समाधान करने का विश्वास दिया था। इस दल की सरकार ने अपने शासनकाल में श्री बी०पी० मण्डल के नेतृत्व के अन्तर्गत पिछड़ी श्रेणियों सम्बन्धी आयोग (Backward Classes Commission) स्थापित किया था। इस दल ने अनुसूचित जातियों और अनुसचित कबीलों को भी विश्वास दिया था कि उनकी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस दल का विचार है कि जब तक इन जातियों के विरूद्ध सामाजिक भेदभाव कायम रहता है तब तक इन जातियों को संविधान के द्वारा दी गई विशेष सुविधाएँ कायम रहेंगी। अन्य शब्दों में अनुसूचित जातियों और कबीलों के लिए संसद और राज्य विधानमण्डलों में स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे और इन जातियों के विकास के लिए आवश्यक अन्य सुविधाओं का विशेष प्रबन्ध किया जायेगा। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी कहा था कि 'भूमि की सीमा सम्बन्धी कानून' (Land Celling Laws) को लागू करने के फलस्वरूप जो भूमि फालतू होगी उस भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में बांटते समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी। कबायली क्षेत्रों में रहते लोगों को अपने सम्याचार के अनुसार विकसित होने, शोषण और कर्जदारी से बचने और विकास के मन्तव्य के लिए अपनी संस्थाएँ करने के योग्य बनाने के लिए विशेष कार्यवाही की जाएगी।

7. विदेश नीति (Foreign Policy) – इस दल का यह दृढ़ मत है कि राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security) मुख्य

रूप से चार आधारों पर नियमित करती है। राष्ट्रीय एकता (National Integration), आर्थिक विकास (Economic Development), कूटनीति (Diplomacy) और रक्षा (Defence) ये चार आधार हैं जो राष्ट्रीय सुरक्षा के चार स्तम्भों (Pillars) के रूप में कार्य करते हैं। जहाँ तक जनता दल की विदेश नीति का सम्बन्ध है यह दल ऐसी स्वतन्त्र विदेशी नीति ग्रहण करने का इच्छुक है जो विश्व शान्ति के विकास के लिए सहायक सिद्ध हो। इस कारण यह दल सैनिक दलबन्दियों की राजनीति (Politics of Military Bloc) के विरूद्ध है और एक वास्तविक दलबन्दी से रहित (Genuine Non-Alignment) विदेशी नीति के लिए वचनबद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्वक ढंग से हल करने के लिए, विश्व–व्यापार और सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए और प्रत्येक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने के लिए यह दल संयुक्त राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने का इच्छुक है। यह दल नस्लवाद और उपनिवेशवाद के समस्त रूपों का विरोधी और मानव अधिकारों का समर्थक है। यह दल सभी राष्ट्रों के साथ सामान्य विकासशील देशों के साथ विशेष करके मित्रतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। दक्षिणी एशिया (South Asia) के क्षेत्र के सभी देशों में क्षेत्रीय सहयोग को विकसित करने के लिए उत्साह देना, दक्षिणी पूर्वी और पश्चिमी एशिया (South East and West Asia) में इस प्रकार की कार्यवाहियों का समर्थन करना, हिन्द महासागर को शाक्ति का क्षेत्र बनाने के लिए कार्य करना और दक्षिणी अफ्रीका में चल रहे स्वतन्त्रता संग्राम को पूर्ण सहयोग देना इस दल के कार्यक्रम में सम्मिलित है। यह दल भारत के पड़ोसी देशों के साथ और 'तीसरे विश्व' (Third World) के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का विशेष रूप में इच्छुक है। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि तीसरे संसार में पिछड़े और विकासशील देशों के अतिरिक्त वे देश भी सम्मिलित हैं, जो उपनिवेशवाद (Colonialism) का शिकार रहे हैं और उपनिवेशवाद से मुक्ति प्राप्त करनके पश्चात् सर्वपक्षीय विकास के लिए यत्न कर रहे हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) – जनता पार्टी में सम्मिलित भिन्न–भिन्न राजनीतिक दल अपने पृथक राजनीतिक अस्तित्व को पूर्णतया न कर सके। इसका निष्कर्ष यह निकलना कि इस दल में राजनीतिक एकता और राजनीतिक एकरूपता स्थापित न हो सकी। दल के नेताओं की परस्पर राजनीतिक विरोधता दिन–प्रति–दिन बढती गई। अन्त में इस दल के अनेकों विधायकों ने दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। इसी कारण जुलाई, 1979 में प्रधानमंत्री श्री देसाई को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और इस प्रकार गैर कांग्रेसी राजनीतिक दल का शासन समाप्त हो गया। दल के नेताओं की आन्तरिक फूट के कारण इस दल के नेता इससे पृथक होते गये और उन्होंने अपने अलग राजनीतिक दल स्थापित कर लिये। वर्तमान समय में भारतीय राजनीतिक में इस दल को कोई विशेष महत्व प्राप्त नहीं है। केवल कर्नाटक राज्य में ही इस दल ने कुछ अन्य प्रान्तीय दलों की सहायता से सरकार का निर्माण किया है। देश के पर्याप्त बड़े भाग में इस दल का कोई विशेष राजनीतिक प्रभाव नहीं है, जिसके कारण यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह दल शायद ही कभी 1977 जैसी अपनी शानदार उपलब्धि को पुनः दोहरा सके।

भारतीय लोक दल (Bhartiya Lok Dal)

भारतीय लोकदल सितम्बर, 1979 में अस्तित्व में आया था। इस दल का निर्माण करने में उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध किसान नेता का विशेष हाथ था। चौधरी चरण सिंह उस समय केन्द्र में निगरान सरकार (Caretaker Government) के प्रधानमंत्री थे। लोकदल का निर्माण करने से प्रसिद्ध नेता श्री राजनारायण ने भी चौधरी चरणसिंह का साथ दिया था परन्तु शीघ्र ही श्री नारायण लोकदल से अलग हो गए।

लोकदल की नीतियाँ और कार्यक्रम (Policioes and Programmes of Lok Dal)– जनवरी 1980 में हुए लोकसभा के चुनावों के समय लोकदल ने अपना चुनाव आविस–पत्र में यह भी कहा था कि यह करने की आवश्यकता नहीं है

कि लोकदल राष्ट्रीय एकता, सभी धर्मों के लिए आदर, लोकतन्त्र का विकास और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक और आर्थिक एकता के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना के लिए लोकदल द्वारा जारी किए चुनाव आविस–पत्र में वर्णित इस दल की नीतियों और कार्यक्रमों को संक्षिप्त रूप से हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैंः–

1. **स्वच्छ और योग्य प्रशासन (A clean and efficient Administration)**– लोकदल ने अत्यधिक महत्ता एक ईमानदार और योग्य प्रशासन की स्थापना को दी है। लोकदल एक ऐसा प्रशासन स्थापित करना चाहता है जहाँ सरकारी कर्मचारी पूर्ण उत्तरदायित्व सहित अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण योग्यता सहित निभाएंगे और जिस प्रशासन मे किसी प्रकार की देरी, फिजूलखर्ची और भ्रष्टाचार नहीं होगा। लोकदल का विश्वास है कि भ्रष्टाचार ऊपर से आरम्भ होता है और धीरे–धीरे समस्त समाज को भ्रष्ट कर देता है। इसलिए यदि जनतक जीवन के ऊपरी स्तर पर उच्चकोटि की निजी ईमानदारी का अस्तित्व नहीं होता, तब तक प्रशासन में भ्रष्टाचार को समाप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए लोकदल ऐसी विशेष संस्थाएँ स्थापित करना चाहता है जो भ्रष्टाचार को समाप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए लोकदल ऐसी विशेष संस्थाएँ स्थापित करना चाहता है जो भ्रष्टाचार सरकार की ओर से की जाने वाली पहल कदमी का इन्तजार न करे। भ्रष्टाचार नियन्त्रणों को समाप्त करना चाहता है और अधिकारियों की इच्छुक शक्तियाँ (Discretionary Powers) के प्रयोग सम्बन्धी स्पष्ट नियमों और विधियों को निश्चित करना चाहता है। इस देश का यह विचार है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि दोषी और अयोग्य व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही की जायेगी।

2. **कर प्रणाली (Taxation System)**– दल यह भी अनुभव करता है कि प्रचलित कर प्रणाली के अधीन करोड़ों रूपयों पर कोई कर नहीं लगाया जाता और करोड़ों ही रूपये के कर ठीक रूप से उगाहे नहीं जाते। इसलिए लोकदल प्रचलित कर प्रणाली की कीमतों को दूर करके ऐसी कर प्रणाली लागू करना चाहता है, जिस कर के अन्तर्गत करों की चोरी या करों की अदायगी सम्बन्धी हेराफेरी न हो सके। इस दल का यह विचार है कि आमदनी में से कुछ बचत करते हैं उस पर कर नहीं लगाना चाहिए, अपितु जो धन विभिन्न अवसरों पर धनी व्यक्तियों के द्वारा व्यय किया जाता है। उस व्यय पर कर लगाया जाना चाहिए। यह दल ऐसे अप्रत्यक्ष करों (Indirect Taxation) को कम करना चाहता है जिसका भार गरीब व्यक्तियों पर पड़ता है।

3. **चुनाव के लिए राज्य द्वारा वित्तीय सहायता (State Aid for Elections)**– इस दल का विचार है कि चुनावों में काले धन की महत्ता या भूमिका को समाप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि राज्य के द्वारा चुनाव लड़ने के लिए वित्तीय सहायता दी जाये। इस मन्तव्य के लिए यह दल एक सरकारी विधि (State Fund) निश्चित करना चाहता है जिसमें से चुनावों के समय प्रत्याशियों को वित्तीय सहायता दी जा सके। इसके अतिरिक्त इस दल का विचार है कि राजनीतिक दलों को अपने कार्य करने के लिए प्रत्येक वर्ष राज्य की ओर से वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए और कानून के द्वारा अब अवश्य निश्चित कर देना चाहिए कि राजनीतिक दल अपने हिसाब–किताब की जांच (Audit) करें और अपने समस्त लेखों को प्रकाशित करें।

4. **सार्वजनिक क्षेत्र** (Public Sector) – इस दल का मत है कि सार्वजनिक क्षेत्र भी राष्ट्र के धन की अत्यधिक बर्बादी करता हैं। इस दल ने अपने आविस–पत्र में कहा था 1971–72 तक सार्वजनिक क्षेत्र में समस्त निगम (Corporation) की अपेक्षा राष्ट्र को उतना लाभ प्राप्त नहीं हो रहा, जितना इन एकाधिकारों से होना चाहिए। लोकदल का विचार है कि सार्वजनिक क्षेत्र की निराशाजनक उपलब्धियों का इन एकाधिकारों में राजनीतिज्ञों और सेवकों का नाजायज हस्तक्षेप है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारों के प्रबन्धकों को इतनी

अधिक सुविधाएँ और इतना वेतन नहीं मिलता जितना कि निजी क्षेत्र के व्यापारों में कार्य कर रहे प्रबन्धकों को दिया जाता है। कम वेतन और उचित सुविधाओं के अस्तित्व के कारण कला कुशल और योग्य व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहते। लोकदल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी वचन दिया थाा कि यह दल जनमत क्षेत्रों के व्यापार की स्वाधीनता स्थापित करेगा और इसके हाथ ही इन व्यापारों के प्रबन्धकों को जिम्मेदार भी बनायेगा ताकि उनके द्वारा की गई गलतियों या असावधानियों की जिम्मेदारी निश्चित की जा सके। यह दल इस विचार का भी समर्थक है कि यदि कोई सार्वजनिक व्यापार निरन्तर घाटा दिखा रहा है तो उस एकाधिकार को तुरन्त बन्द कर दिया जाना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा एकाधिकार हमारी अर्थव्यवस्था के मौलिक ढांचे का अनिवार्य अंग है तो उसके द्वारा घाटा दिखाए जाने के बावजूद भी इसको कायम रखा जा सकता है। लोकदल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह स्पष्ट शब्दों में कहा था कि भविष्य में सार्वजनिक क्षेत्र में केवल ऐसे व्यापार और उद्योग या जिन व्यापारों पर अत्यधिक धन व्यय करना निजी क्षेत्र के लिए सम्भव नहीं है।

5. **चुनाव प्रणाली (Electoral System)**– इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह स्पष्ट वर्णन किया था कि स्वतन्त्र और विशुद्ध चुनावों के बिना लोकतन्त्र एक ढांग या दिखावा बन जाता है। इसलिए यह दल चुनाव प्रणाली में ऐसे सुधार करना चाहता है तो स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों को यकीनी बना सके और इस प्रकार देश में वास्तविक लोकतन्त्रीय पद्धति स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

6. **प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press)**– यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक अनिवार्य शर्त समझता है और इस कारण यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता के लिए वचनबद्ध है। यह दल चाहता है कि संविधान में संशोधन करके मौलिक अधिकार वाले अध्याय में प्रैस की स्वतन्त्रता का स्पष्ट वर्णन किया जाना चाहिए।

7. **अन्तर–राजकीय विवाद (Inter-State Disputes)**– इस दल का यह विश्वास है कि शासक दल ने अन्तर–राजकीय विवादों का ठीक रूप में समाधान करने का गम्भीर यत्न कभी नहीं किया है, अपितु ऐसे विवादों को निरन्तर लटकाया हैं। अन्तर–राजकीय झगड़ों के कारण कई बार 'जान नुक़सान' भी हुआ है। इसलिए लोकदल अन्तर–राजकीय विवादों का निपटारा करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 363 के एक स्थायी आयोग (Permanent Commission) स्थापित करने का इच्छुक है। प्रत्येक प्रकार के अन्तर–राजकीय विवाद इस विभाग को सौंपे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार समेत सारे राज्यों के लिए इस आयोग के निर्णयों को स्वीकृत करना अनिवार्य होगा।

8. **लोकदल की आर्थिक नीति (Lok Dal's Economic Policy)**– लोकदल ऐसी प्रणाली के पक्ष में भी नहीं है जिस प्रणाली के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों को अन्य लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं के शोषण करने की असीमित स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यह दल ऐसी प्रणाली के पक्ष में भी जिस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य के पास समस्त लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता को नष्ट करने की असीमति या निरंकुश शक्ति प्राप्त हो। लोकदल ऐसे गांधीवादी अर्थव्यवस्था पर विश्वास रखता है जो मुख्य रूप में आत्म रोजगार (Self-Employment) पर आधारित हो। इस दल का विश्वास है कि सम्पति विस्तृत रूप में फैली होनी चाहिए ताकि सम्पत्ति को शोषण का साधन न बनाया जा सके। इस दल ने यह विश्वास दिया था कि यदि इस दल के हाथों में राजनीतिक शक्ति आ गई तो यह दल भी लोगों को कार्य का अधिकार (Right to Work) देगा। इस दल का मत है कि प्रचलित प्रणाली में अमीर अत्यधिक अमीर और गरीब अत्यधिक गरीब हो रहा है। इस दुःखदायक अवस्था का

तब ही अन्त हो सकता है यदि ऐसी अर्थव्यवस्था स्थापित की जाए जिसमें काश्तकारी और घरेलू उद्योगों को प्रमुख स्थान प्राप्त हो। अन्य शब्दों में लोकदल का यह विचार है कि ऐसे व्यापार स्थापित किये जाने चाहिए जिनमें अधिक से अधिक श्रमिकों की भूमिका की आवश्यकता हो। अन्य शब्दों मे यह दल बड़े–बड़े मशीनी उद्योगों के अधिक पक्ष में नहीं है। इस दल का यह मत है कि अर्थव्यवस्था को काश्तकारी और घरेलू उद्योगों पर आधारित करने के साथ ही निजी पूंजीवाद (Private Capitalism) और राज्य पूंजीवाद (State Capitalism) की बुराईयों पर काबू पाया और पूर्ण रोजगार को यकीनी बनाया जा सकता है। यह दल आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना चाहता है और धन को केन्द्रित होने से और शक्ति के दुरूपयोग को रोकने के लिए यह दल गांधी जी द्वारा प्रभावित अमानतदारी प्रणाली (Trusteeship System) को अनुभव के तौर पर लागू करने के पक्ष में है। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि लोकदल बड़े उद्योगों की स्थापना के विरूद्ध नहीं है, परन्तु यह दल काश्तकारी और घरेलू उद्योगों के विकास के प्रति विशेष ध्यान देना चाहता है।

9. **काश्तकारी का महत्व (Significance of Agricuture)**– लोकदल का यह विश्वास है कि काश्तकारी के विकास के बिना देश का आर्थिक विकास नहीं हो सकता। इसलिए यह दल काश्तकारी के विकास को प्राथमिकता देना चाहता है। इस दल का यह मत है कि यदि हम अपनी जरूरत से अधिक अन्न का उत्पादन करेंगे तब ही हम अन्न को अन्य देशों को भेजने के योग्य हो सकेंगे। इस दल का यह भी मत है कि शीघ्र ही भविष्य में कुछ अन्य देशों को अनाज की अत्यधिक कमी होगी और ऐसी स्थिति में इन देशों में अन्न देकर हम अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के योग्य हो सकेंगे। इसलिए लोकदल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह कहा था कि यह दल काश्तकारी के विकास के लिए कोई कमी नहीं रहने देगा और छोटे और साधारण कृषकों को कर्जे की सुविधाएँ दी जायेंगी। इसके अतिरिक्त कृषकों की अच्छी प्रकार के बीज, खाद और सिंचाई के साधनों की सेवाएं उचित दर पर देने का प्रबन्ध किया जायेगा और जो काश्तकारी भूमि सरकार ने सार्वजनिक मन्तव्यों के लिए प्राप्त की है। वह भूमि उसके स्वामियों को वापिस कर दी जाएगी या पट्टे पर दे दी जाएगी यदि निश्चित समय के भीतर सरकार उस भूमि को प्रयोग में नहीं ले आती। इस दल का मत है कि भूतकाल में भूमि के क्षय (Soil Erosion) के प्रति सरकार ने बहुत कम ध्यान दिया है। परन्तु यदि भूमि के क्षय की गति इस प्रकार ही चलती रही तो हमारी भूमि कोई फसल देने के योग्य नहीं रहेगी। इसलिए इस दल का यह विचार है कि भूमि के प्रयोग के साथ–साथ भूमि की रक्षा भी उतनी ही अनिवार्य है। इस दल का विचार है कि राष्ट्र के अस्तित्व का मुख्य आधार भूमि है इसलिए लोकदल देश की भूमि की सुरक्षा के प्रत्येक सम्भव यत्न करेगा।

10. **काश्तकारी–उत्पादन का मूल्य (Pricing of Agricultural Production)**– लोकदल इस विचार का है कि कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। कृषक उत्पादन के लिए आवश्यक सामग्री पर जो खर्च को मुख्य मानकर कृषकों को उनके उत्पादन का पारिश्रमिक मूल्य निश्चित करना लोकदल की महत्वपूर्ण नीति है। लोकदल यह नहीं चाहता कि कृषक किसी विवशता के कारण अपने उत्पादन को कम मूल्य पर बेच दें। लोकदल इस विचार का समर्थक है कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए तो राजकीय संस्थाओं (State Agencies) को कृषकों की रक्षा के लिए उनके उत्पादन को उचित मूल्य पर क्रय करने के लिए मण्डी में प्रवेश करना चाहिए।

11. **भूमि सुधार** (Land Reform) – लोकदल का इस विचार का समर्थक है कि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जहाँ काश्तकारी सम्बन्धी नयी मनोवैज्ञानिक विधियों को ग्रहण करने की आवश्यकता है वहाँ इस मन्तव्य के लिए

काश्तकारी की मनोवृत्ति को भी परिवर्तित करने की आवश्यकता है। इस दल का विचार है कि यदि काश्तकार काो उस भूमि के टुकड़े का स्वामी बना दिया जाये तो वह उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक उत्साहित होगा। इसलिए लोकदल मुजाहरों को भूमि का स्थायित्व सौंपने के पक्ष में हैं और जागीरदारी प्रणाली को बिल्कुल समाप्त करना चाहता है। यह दल केवल सेना में कार्य कर रहे सैनिकों को ही अपनी भूमि पट्टे पर देने को आज्ञा देता हैं और अन्य किसी भी कृषक को ऐसा करने से रोकने के लिए अनिवार्य कानून के निर्माण करने के पक्ष में है। यह दल ऐसे व्यक्तियों को भी अपनी भूमि पट्टे पर देने की आज्ञा देता है जो व्यक्ति शारीरिक या मानसिक कारणों के कारण स्वयं काश्तकारी करने के योग्य नहीं है। भूमि सुधार सम्बन्धी सभी कानूनों को यह दल 9वीं अनुसूची (9^{th} Schedule) में अंकित करने का समर्थक है ताकि यह कानून न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहें।

12. **औद्योगिकरण का नमूना (Pattern of Industrialisation)**– इस दल का विचार है कि औद्योगिक विकास के लिए पूंजी और श्रम दो तथ्यों की आवश्यकता है। हमारे देश में श्रम (Labour) बहुत सस्ती है और पूंजी की अपेक्षा इसकी प्राप्ति आसानी के साथ हो सकती है। इसलिए लोकदल ऐसी औद्योगिक नीति के पक्ष में नहीं है जिसके अन्तर्गत अत्यधिक पूंजी के द्वारा बड़े–बड़े उद्योग स्थापित किए जाएं और श्रम को अधिक से अधिक प्रयोग में न लाया जा सके। अन्य शब्दों में लोकदल पूंजी आधारित उद्योगों (Cepital Intensive Industries) की अपेक्षा श्रम–आधारित उद्योगों (Labour Intensive Industries) को प्राथमिकता देता है। लोकदल ऐसी अर्थव्यवस्था के पक्ष में है जो घरेलू और निम्नस्तर के उद्योगों पर आधारित हो। इस दल का यह विचार है कि नगरी क्षेत्रों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के प्रति अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। परन्तु यह दल पूंजी पर आधारित बड़े–बड़े कारखानों की अपेक्षा ग्रामीण–क्षेत्रों में घरेलू और छोटे उद्योगों को स्थापित करना चाहता है। यह दल इस विचार का भी है कि यदि देश के हित बड़े–बड़े स्तर के उद्योगों (Large Scale Industries) की स्थापना की मांग करते हैं तो ऐसे उद्योग भी स्थापित किए जा सकते हैं। परन्तु ऐसे उद्योग हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार नहीं होने चाहिए, अपितु घरेलू और छोटे उद्योग ही देश की अर्थ व्यवस्था मुख्य का आधार होने चाहिए। इसी कारण लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में स्पष्ट रूप में घोषणा की थी कि वह दल किसी ऐसे माल के उत्पादन के लिए पूंजी आधारित बड़े स्तर के उद्योग स्थापित नहीं करेगा जो अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों का अधिक से अधिक विकास हो सके, इस योजना के उद्देश्य स्थापित नहीं करेगा जो उद्देश्य या जिस माल का उत्पादन घरेलू या निम्न स्तर के उद्योगों के द्वारा किया जा सकता है।

13. **गांवों का कायाकल्प (Rejuvenation of Villages)**– लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में यह भी कहा था कि भारत की सम्पूर्ण स्थिति सम्बन्धी एक कड़वी सच्चाई यह है कि 5,75,000 गांवों के पास अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आर्थिक सामर्थ्य नहीं है। ऐसी स्थिति में गांवों को कायाकल्प करने की विशेष आवश्यकता है। लोकदल के मत के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय गांवों और शहरों में आर्थिक अवस्थाओं सम्बन्धी पाये जाते। परस्पर अन्तर स्वतन्त्रता के पश्चात् कम नहीं हुए हैं, अपितु इसमें वृद्धि हुई है। इसलिए लोकदल ने यह विश्वास दिया था कि लोकदल इन बढ़ रहे अन्तरों को केवल रोकेगा ही नहीं, अपितु एक विशाल स्तर की योजना चलायेगा, जिसके अन्तर्गत गांवों में रहते लोगों को रहने के लिए अच्छे मकान, पीने के लिए शुद्ध जल, सफाई की आधुनिक सुविधाओं, विश्वास योग्य बिजली की सुविधा, आवागमन की अत्यधिक सुविधाएँ, सेहत और शिक्षा सेवाओं आदि देने की व्यवस्था की जायेगी। इस योजना का उद्देश्य एक ऐसा ग्रामीण

समाज स्थापित करना होगा, जिसमें भूमि के स्वामित्व के आधार पर या जात–पात के आधार पर लोगों में भेदभाव या अन्तर न पाए जाते हों। इसके अतिरिक्त लोकदल गांवों को ऐसा रूप देना चाहता है कि गांव में ही ग्रामीण लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके और आधुनिक जीवन की आवश्यक जरूरतें लोगों को मिल सके। यह दल ग्रामीण क्षेत्र में ही ऐसे एकाधिकारी को भी स्थापित करना चाहता है जिनका काश्तकारी के साथ सम्बन्ध नहीं है। इस दल के विचार में ऐसा करने के साथ ग्रामीण क्षेत्र में लोगों को रोजगार प्राप्त होगा। परन्तु यहाँ यह वर्णन योग्य है कि यह दल पूंजी–आधारित एकाधिकारी के मुकाबले श्रम–आधारित एकाधिकारों को प्राथमिकता देता है।

14. **श्रम नीति (Labour Policy)**– लोकदल श्रम नीति का भी पुनः निर्माण ऐसे रूप में करना चाहता है जो औद्योगिक क्रान्ति को विकसित कर सके, उत्पादन को रोकने की सद्भावनाओं को समाप्त कर सकें, उत्पादन और श्रमिकों की सामर्थ्य में वृद्धि कर सके और श्रमिकों के साथ किए जाते दुर्व्यवहार को जड़ से समाप्त कर सकें। यह दल श्रमिकों के व्यापारिक संघ (Trade Unions) बनाने के अधिकार को स्वीकार करता है, परन्तु इस दल का यह विचार है कि यह श्रमिकों को व्यापारिक संघ के साधनों के ऐसे रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे देश की अर्थ–व्यवस्था को क्षति हो। लोकदल यह भी चाहता है कि उत्पादन के विकास के साथ श्रमिकों के वेतन की वृद्धि को जोड़ दिया जाना चाहिए। इस दल यह भी चाहता है कि उत्पादन के विकास के साथ श्रमिकों के वेतन की वृद्धि को जोड़ दिया जाना चाहिए। इस दल का यह विचार है कि औद्योगिक प्रबन्ध में अनुशासन हीनता का मुख्य कारण यह है कि विभिन्न औद्योगिक या व्यापारिक एकाधिकारों में राजनीति कृति व्यापारिक संघ (Politicised Trade Unions) मौजूद है। इसलिए लोकदल चाहता है कि कानून के द्वारा यह निश्चित कर देना चाहिए कि इस बड़े एकाधिकार में केवल एक ही व्यापारिक संघ हो सकता है। व्यापारिक संघ की मान्यता या निर्माण सम्बन्धी एकाधिकार के श्रमिकों के द्वारा किया जा सकता है। लोकदल शिशु–कृत (Child Labour) और वचनबद्ध कृत (Bonded Labour) पर तुरन्त कानूनी पाबन्दी लाना चाहता है।

15. **अनुसूचित जातियां और कबीले** (Scheduled Castes and Tribes) – लोकदल भारतीय समाज में जाति की प्रमुखता को समाप्त करना चाहता है। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी कहा था कि सरकारी गजटिड पदों पर नियुक्तियाँ करते समय उन युवकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अपनी जाति से बाहर शादी करते हैं। लोकदल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह दल हरिजनों या अनुसूचित जातियों और कबीलों की भलाई के लिए विशेष कार्य करने का समर्थक है। यह दल इन जातियों और कबीलों के लिए सेवाओं में स्थान सुरक्षित रखने की प्रथा को जारी रखना चाहता है और इन सुविधाओं के अतिरिक्त लाइसेंस या परमिट देने में मामलों सम्बन्धी भी इन जातियों के लोगों ने विशेष संरक्षण (Safeguards) निश्चित करने का समर्थक है। अन्य शब्दों में परमिट या लाईसेंसों का कुछ हिस्सा इन जातियों के लोगों को सुरक्षित रखना लोकदल की नीति में शामिल है।

16. **विदेशी नीति और सुरक्षा (Foreign Policy and Defence)**– लोकदल राष्ट्रीय हितों के अनुकूल विदेशी नीति ग्रहण करना चाहता है। यह दल उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद और नस्लवाद का विरोधी है। लोकदल सभी राष्ट्रों से मित्रता करना चाहता है और विदेशी क्षेत्र में यह दल गुटबन्दी से रहित नीति (Policy of Non-Alignment) के लिए वचनबद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तमयी रूप में हल करना एक नई और उचित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना और तीसरे संसार के राष्ट्रों से सहयोगी के रूप में कार्य करना

लोकदल की विदेशी नीति की मुख्य विशेषताएँ हैं। लोकदल भारत के पड़ोसी देशों के साथ चिरकाल से लटके आ रहे विवादों को निपटाना चाहता है और एक अच्छी पड़ोसी नीति को विकसित करने का इच्छुक है। सैनिक गुटबन्दियों को यह दल समाप्त करना चाहता है और विश्वव्यापी निःशस्त्रीकरण भी इस दल को विदेश नीति का महत्वपूर्ण भाग है। लोकदल सम्पूर्ण विश्व में मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए वचनबद्ध है। इस दल का यह भी मत है कि देश की अच्छी विदेशी नीति इसकी रक्षा का सबसे बड़ा साधन है। लोकदल भारतीय शस्त्रधारी सेनाओं का प्रत्येक पक्ष से आधुनिकीकरण करना चाहता है और देश की रक्षा सामर्थ्य को पूर्ण रूप में विकसित करने का समर्थक है। यह दल भूतपूर्व सैनिकों की सेवाओं का प्रगतिशील कार्यों को प्रयोग में लेने का समर्थक है।

निष्कर्ष (Conclusion)– भारतीय लोकदल का निर्माण करने वाले नेताओं ने जनता पार्टी का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। परन्तु अन्य राजनीतिक दलों से मिलकर ये नेता जनता पार्टी को स्थिर न रख सके तथा जनता पार्टी से अलग होकर इस दल का निर्माण कर लिया। इस दल के निर्माण के समय यह आशा उत्पन्न हुई थी कि किसी समय यह राजनीतिक दल केन्द्र में कांग्रेस (आई) का विकल्प (Alternative) बन सकता है। परन्तु इसकी गत चार वर्षों की कार्य प्रणाली ने इस आशा को लगभग समाप्त ही कर दिया। उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा को छोड़कर शेष राज्यों में इस दल का कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

भारत की वर्तमान दल राजनीति से यह अनुमान लगाना कुछ कठिन है कि भविष्य में लोकदल किस दिशा की ओर जायेगा। परन्तु लोकदल सम्बन्धी यह तथ्य बिना किसी वाद–विवाद के प्रायः स्वीकार किया जाता है कि विशाल स्तर के उद्योगों की विरोधता और घरेलू उद्योगों को भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार बनाना इस दल की अत्यन्त दोषपूर्ण नीति है। आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी युग में विशाल स्तत के उद्योगों को महत्ता को झूठलाया नहीं जा सकता। यह ठीक है कि जब तक हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्र का ठीक रूप से विकास नहीं होता और कृषकों को उनके परिश्रम कापूरा फल प्राप्त नहीं होता, तब तक भारत में समाजवादी समाज या समान (Equalitarian Society) की स्थापना नहीं हो सकती परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रामीण क्षेत्र के विकास के साथ–साथ नगरों का सर्वोन्मुखी विकास के प्रति भी ध्यान देना अनिवार्य है। लोकदल की स्थापना सम्बन्धी यह तथ्य स्वीकार करने से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस दल ने ग्रामीण क्षेत्र में चेतनता और जागृति विकसित की है और प्रत्येक राजनीतिक आन्तरिक फूट का शिकार है। यदि लोकदल के संगठन को प्रभावशाली और शक्तिशाली बनाने के सच्चे यत्न किए जायें और इस दल में आन्तरिक एकता स्थापित करने के लिए लगन के साथ भरपूर यत्न किए जायें तो सम्भावना हो सकती है कि यह दल भारतीय राजनीति में शासक दल के लिए गम्भीर चुनौती के रूप में प्रकट हो सके।

भारतीय जनता पार्टी (Bharatiya Janata Party)

मार्च 1977 के लोकसभा के चुनावों से पहले भारतीय राजनीति में भारतीय जनमत नाम का महत्वपूर्ण राजनीतिक दल मौजूद था। इस दल को जन्म देने वाले हिन्दू महासभा के प्रमुख नेता डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी थे। 21 अक्तूबर 1951 को दिल्ली में सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रमुख हिन्दू नेता विशेषतया सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में ही भारतीय जनसंघ की स्थापना की गई और डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी को इस नये राजनीतिक दल का प्रथम प्रधान मनोनीत किया गया। कुछ लोगों को यह मत है कि जनसंघ हिन्दू महासभा का ही बच्च था। विचारकों का एक और मत यह भी है कि जनसंघ का जन्म राष्ट्रीय स्वयं सेवक के सदस्य थे। 1977 में इस दल ने अन्य दलों के साथ मिलकर जनता पार्टी का निर्माण किया था। जुलाई 1979 तक जनता दल की सरकार केन्द्र में कायम रही और भूतपूर्व

जन–संघ के प्रमुख नेता महत्वपूर्ण जनतक पदों पर सुशोभित रहे थे। जनता पार्टी आन्तरिक फूट का शिकार थी और इसी कारण इस दल के नेता एक–दूसरे के विरूद्ध दोष लगाते रहते थे। जनता दल में भूतपूर्व भारतीय लोकदल (B.L.D.) और समाजवादी दल भी सम्मिलित हुए थे। इन दलों के नेता यह दोष प्रायः लगाते थे कि भूतपूर्व जनसंघ के सदस्य सरकारी दफ्तरों में अपना प्रभाव जा रहे हैं और सरकार के प्रत्येक विभाग में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रभाव बढ़ रहा है। भूतपूर्व भारतीय लोकदल और समाजवादी दल के नेता यह मांग करते थे कि जनता दल और राष्ट्रीय सेवक संघ में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। अन्य शब्दों में वे यह चाहते थे कि एक व्यक्ति केवल एक ही राजनीतिक दल का सदस्य हो सकता है और किसी अन्य ऐसी संस्था का सदस्य नहीं हो सकता जिसका स्वरूप अधिकांश भी साम्प्रदायिक या राजनीतिक हो। इसलिए यह नेता मांग करते थे कि जनता पार्टी में सम्मिलित हुए भूतपूर्व जनसंघ के सदस्यों को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (R.S.S.) से अपने सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिए। इसके साथ ही यह नेता जनता दल के अधिकारियों पर बल देते थे कि यह दोहरी सदस्यता (Dual membership) पर पाबन्दी लगा दें। जनता दल की आन्तरिक फूट के और अनेकों कारणों में से एक कारण इस दल के कुछ सदस्यों की दोहरी सदस्यता का मामला था। जनता पार्टी अपने शासन काल में इस जटिल समस्या का कोई समाधान न ढूंढ सकी।

जनवरी 1980 में लोकसभा के चुनाव हुए थे। इन चुनावों में जनता दल को अपमानजनक पराजय का मुख देखना पड़ा था। इस निराशाजनक पराजय ने जनता पार्टी के अधिकारियों को दल के सदस्यों को दोहरी सदस्यता के मामले को निपटाने के लिए कुछ सीमा तक मजबूर कर दिया क्योंकि इस बात पर यह दोष लगने लगे थे कि यह दल भूतपूर्व जनसंघ के अतिरिक्त किसी अन्य वर्ग का विशेष प्रतिनिधित्व नहीं करता। अन्त में 19 मार्च, 1980 को जनता संसदीय बोर्ड (Janata Parliamentary Board) ने यह निर्णय लिया, इस दल का कोई भी विधायक या अधिकारी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की दैनिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेगा। 4 अप्रैल 1980 को जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी (National Executive) ने जनता संसदीय बोर्ड के उस निर्णय की पुष्टि कर दी। जनता दल के भूतपूर्व जनसंघ सदस्यों को जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का यह निर्णय स्वीकार नहीं था। इसलिए उन्होंने जनता पार्टी से त्यागपत्र दे दिए और 6 अप्रैल 1980 को उन्होंने दिल्ली से एक सम्मेलन किया। यह सम्मेलन 5 और 6 अप्रैल दो दिन चलता रहा और अन्त 6 अप्रैल 1980 को भारतीय जनता दल (Bharatiya Janata Party) नाम का पृथक राजनीतिक दल अस्तित्व में आया था। जनता सरकार के भूतपूर्व विदेशी मन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी (Attal Bihari Vajpayee) को इस दल का सर्व सम्मति से प्रधान मनोनीत किया गया। यह ठीक है कि इस दल में राम जेठमलानी, श्री सिकन्दर बख्त, श्री शान्ति भूषण आदि जैसे गैर–जनसंघी सदस्य भी सम्मिलित हुए थे, परन्तु मुख्यतया भारतीय जनता दल की स्थापना भूतपूर्व भारतीय जनसंघ को पुनः जीवित करने के समान है। 24 अप्रैल 1980 को भारतीय जनता पार्टी को चुनाव आयोग द्वारा मान्यता दे दी गई थी।

भारतीय जनता पार्टी का कार्यक्रम (Programme of Bharatiya Janata Party) – यह दल जनवरी 1980 के चुनावों के पश्चात् अस्तित्व में आया था। मई 1980 में 9 राज्यों के विधानसभाओं के चुनावों के समय इस दल को पृथक–पृथक राज्य शाखाओं ने अपने चुनाव उद्देश्यों की घोषणा की थी। जब 6 अप्रैल 1980 को यह दल अस्तित्व में आया था तब उस समय दल के प्रथम अध्यक्ष श्री वाजयपेयी ने दल की नीतियों सम्बन्धी एक संक्षिप्त ब्यान दिया था। उस ब्यान के आधार पर और मई, 1980 में 9 राज्यों के विधानसभाओं के चुनावों के समय इस दल की राज्य शाखाओं के द्वारा जारी किए चुनाव उद्देश्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इसकी प्रमुख नीतियाँ इस प्रकार है –

1. यह दल वंश–तानाशाही का विरोधी है।

2. श्री जय प्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति (Total Revolution) सम्बन्धी आदर्श को लागू करना इस दल का प्रमुख उद्देश्य है।

3. राष्ट्रवाद, लोकतन्त्र और समाजवाद के आदर्शों को शक्तिशाली बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल हैं।

4. यह दल आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना चाहता है।

5. यह दल गैर–साम्प्रदायिक और सिद्धान्तपूर्ण राजनीति का समर्थक है।

6. यह दल की नीतियों का मुख्य आधार और उद्देश्य–ग्रामीण क्षेत्र का विकास।

अस्तित्व में लाने के पश्चात् इस दल ने अपनी नीतियों तथा कार्यक्रम सम्बन्धी कई प्रस्ताव पास किए तथा दल के अधिकारियों के समय–समय पर कुछ घोषणाएँ भी की गई है। उन प्रस्तावों तथा घोषणाओं द्वारा इस दल ने निम्नलिखित नीतियों तथा कार्यक्रमों पर अपना विश्वास प्रकट किया है :–

1. उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना (Establishment of National Commission of North-East Region) – 1979 से आयात राज्य में विदेशियो को राज्य में से निकालने सम्बन्धी आसामी विद्यार्थियों तथा कुछ दूसरे संगठनों द्वारा आन्दोलन चलाया जा रहा है। इस आन्दोलन के कारण आसाम में स्थिति बड़ी गम्भीर रूप की बनी हुई है। उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र के दूसरे राज्यों में भी शान्तिमयी स्थिति नहीं पाई जाती है। स्थिति की गम्भीरता तथा नाजुकता के कारण 15 जुलाई 1980 को इस दल के प्रधान श्री वाजपेयी ने अगरतला (Agartala) में भाषण देते हुए यह मांग की थी कि उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र की समूची समस्या का अध्ययन करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग नियुक्त किया जाये। यह दल चाहता है कि शासकदल तथा दूसरे राजनीतिक दल राजनीतिक भावनाओं से ऊपर उठकर इस क्षेत्र की समस्याओं को हल करने के लिए यत्न करें। इस दल का यह मत है कि यदि ऐसा न किया तो इस क्षेत्र की राजनीतिक समस्या देश की अखण्डता के लिए एक गम्भीर खतरा सिद्ध हो सकती है।

2. गांधीवाद समाजवाद (Gandhian Socialism) – 30 सितम्बर 1980 को बम्बई में हुए इस दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में इस दल ने गांधीवादी समाजवाद को अपनी राजनीतिक विचारधारा (Political Ideology) के रूप में स्वीकार किया था। इस दल का विचार है कि स्वतन्त्रता (Freedom) तथा रोजगार (Employment) गांधीवाद के दो प्रमुख सिद्धान्त है। यह दल चाहता है कि आर्थिक शक्ति न ही राज्य के पास और न ही विद्यार्थियों के हाथ में केन्द्रीय हो। यह दल अहिंसक साधनों द्वारा सहयोगी स्वतन्त्र राज्य (Co-operative Commonwealth) स्थापित करना चाहता है।

3. पांच वचनबद्धताएं (Five Commitments) – 28 दिसम्बर से 30 दिसम्बर, 1980 तक इस दल का राष्ट्रीय सम्मेलन बम्बई में हुआ था। इस दल ने पांच सिद्धान्तों को अपनी नीतियों का मूल आधार बनाने की घोषणा की थी। इन पांचों सिद्धान्तों की इस दल ने (हमारी पांच वचनबद्धताएँ) (Our five commitments) का नाम दिया था। यह पांच सिद्धान्त या वचनबद्धताएं इस प्रकार है :–

   (i) राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकीकरण (Nationalism and National Integration)

   (ii) लोकतन्त्र (Democracy)

   (iii) सकारात्मक धर्म निरपेक्षता (Positive Secularism)

(iv) गांधीवाद समाजवाद (Gandhian Socialism)

(v) मूल्यों या सम्मानों पर आधारित राजनीति (Value based Politics)

4. आर्थिक नीति (Economics Policy) – बम्बई में हुए राष्ट्रीय सम्मेलन में इस दल ने अपनी आर्थिक नीति ग्रहण की थी। उस आर्थिक नीति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैः–

(i) आर्थिक शक्ति का विशाल स्तर पर विकेन्द्रीयकरण।

(ii) एकाधिकारों (Monopolies) के विकास को रोकना।

(iii) शोषण को रोकने के योग्य प्रबन्ध करना।

(iv) उत्पादन को बढ़ाना तथा सामाजिक न्याय को विश्वासपूर्ण बनाना।

(v) ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में रोजगार के साधनों को काफी विशाल स्तर पर विकसित करके गरीबी को दूर करना।

(vi) राष्ट्रीय निवेश (National Investment) की समूची प्रणाली में प्रचण्ड परिवर्तन (Drastic Change) करना।

(vii) काले धन का अन्त करने के लिए कर प्रणाली में उचित सुधार करने तथा करों का उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड देना।

(viii) सारी उपभोगी सामग्री (Consumer Goods) का उत्पादन घरेलू या छोटे क्षेत्र (Small Sector) में किया जायेगा।

(ix) सारी फालतू भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में बांटने के लिए तीन वर्षीय समयबद्ध योजना तैयार एवं लागू की जायेगी।

(x) ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की विश्वासपूर्ण बनाने के लिए रोजगार गारन्टी योजना (Employment Guarantee Scheme) लागू करना।

(xi) पशुओं और फसलों का बीमा करने सम्बन्धी योजनाएं लागू करना।

(xii) यह दल चाहता है कि औद्योगिक क्षेत्र में न तो सार्वजनिक क्षेत्र और न ही निजी क्षेत्र का एकाधिकार हो इस दल का विचार है कि हथियारों का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में ही होना चाहिए।

(xiii) यह दल उपभोगी नियम (Consumer Corporation) स्थापित करना चाहता है। इस निगम का मुख्य काम उपभोगी सामग्री या वस्तुओं की उपलब्धि को उचित मूल्य को विश्वासपूर्ण बनाना होगा।

(xiv) यह दल चाहता है कि किसानों को उनके उत्पादन का लाभदायक मूल्य दिया जाये।

(xv) यह दल आयकर (Income Tax) के दरों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का समर्थक है।

5. गरीबी जलावतन विधि (Banish Poverty Fund) – यह दल पांच अरब रूपए की गरीबी जलावतन निधि स्थापित करना चाहता है। आरम्भ में यह निधि केवल एक वर्ष के लिए होगी तथा उसके बाद हर वर्ष इस निधि की रकम को बढ़ाया जा सकता है। इस निधि में आधा धन केन्द्रीय सरकार तथा आधा धन राज्य

सरकार द्वारा दिया जाना चाहिए। यह निधि अति गरीब लोगों के वर्गों को ऊँचा उठाने के लिए प्रयोग की जाएगी। इस दल का यह विचार है कि यदि इस निधि का उचित संचालन किया जाए तो केवल पांच सालों के समय के अन्दर लगभग दस करोड़ व्यक्ति गरीबी सीमा (Poverty Line) के ऊपर उठाए जा सकते हैं।

6. सत्तावाद के विरूद्ध (Against Authoritarianism) – यह दल लोकतन्त्र का समर्थक तथा सत्तावाद का विरोधी है। 28 दिसम्बर, 1980 को बम्बई में दल के राष्ट्रीय सम्मेलन को सम्बोधन करते हुए दल के प्रधान श्री ए०बी० वाजपेयी ने अपने प्रधानगी भाषण में कहा था कि उनका दल सत्तावाद तथा अराजकता का कठोर विरोधी है। यह दल बिना किसी भेदभाव के सब भारतीयों को हर प्रकार के अधिकार प्रदान करने के पक्ष में है ताकि हमारे देश में प्रजातन्त्रीय प्रणाली स्थिर हो सके।

7. अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के पक्ष में (In favour of Reservations for Scheduled Caste) – 26 अप्रैल, 1981 को इस दल की राष्ट्रीय परिषद् (National Council) ने कोचीन में एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया था कि यह दल अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े हुए कबीलों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के पक्ष में है। इसके साथ ही इस दल की राष्ट्रीय परिषद् ने यह मांग की थी कि उच्च शक्ति वाली एक समिति (A High Powered Committee) नियुक्त की जाये तथा वह समिति इस सम्बन्धी सिफारिशें करे कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति के वास्तविक उद्देश्य किस तरह प्राप्त किये जा सकते हैं। इस दल ने केन्द्रीय सरकार से यह भी मांग की थी कि वह एक ऐसा दस्तावेज प्रकाशित करे, जिसमें यह बताया जाये कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति के वास्तविक उद्देश्य किस तरह प्राप्त किये जा सकते हैं। इस दल ने केन्द्रीय सरकार से यह भी मांग की थी कि वह एक ऐसा दस्तावेज प्रकाशित करे जिसमें यह बताया जाये कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति को लागू करने से कौन–कौन से तथ्य सामने आये हैं तथा यह नीति किस सीमा तक ठीक रूप में लागू की गई है।

मई 1980 में हुए 9 राज्यों के विधानसभाओं के चुनावों में इस दल ने कोई विशेष महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं की थी। परन्तु इस सम्बन्धी हम यह कह सकते हैं कि उस समय इसकी आयु केवल दो महीने थी। इस अल्प समय में कोई भी राजनीतिक दल लोकप्रिय नहीं बन सकता। मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में इस दल का अत्यधिक प्रभाव है। उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों के कई भागों में इस दल को कुछ प्रसिद्धि प्राप्त हैं। परन्तु अन्य राज्यों में इस दल का प्रभाव–क्षेत्र अभी स्थापित नहीं हुआ है। मई, 1982 के चुनावों में इस दल ने केरल में 68 उम्मीदवार खड़े किए थे, परन्तु इस दल का कोई भी उम्मीदवार सफल नहीं हुआ। हिमाचल प्रदेश में इस दल के 56 उम्मीदवारों में से 39 उम्मीदवार और हरियाणा में 23 उम्मीदवारों में 6 उम्मीदवार सफल हुए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह दल भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करने के योग्य हो सकता है, पर इस योग्य होने से पहले इस दल के नेताओं को लोगों को यह विश्वास करवाने के लिए कि यह दल भूतपूर्व जनसंघ का नया रूप नहीं है, इसके लिए बड़े कठोर और गम्भीर यत्न करने पड़ेंगे। यदि इस दल के नेता भारतीय लोगों को विश्वास न दिला सके तो यह केन्द्रीय स्तर पर कोई विशेष भूमिका अभिनीत करने के योग्य नहीं हो सकेगा। राष्ट्रीय हित यह मांग करते हैं कि यह दल समस्त धर्मों तथा वर्गों के प्रतिनिधि के रूप में उभरने के लिए यत्न करे ताकि शासक दल को परिवर्तित चुनौती देने के योग्य हो सके।

12वीं लोकसभा के चुनाव (1998) और भाजपा का चुनाव घोषणा पत्र – भारतीय जनता पार्टी ने फरवरी 1998 लोकसभा चुनावों के लिए जारी किए गए घोषणा पत्र में उन सब मुद्दों का समावेश किया है जिन पर वह निरन्तर जोर देती रही है, और यह भी बताने का प्रयास किया है कि वह देश को किस दिशा में मोड़ना चाहती है। भाजपा ने

घोषणा पत्र में पचास प्रमुख वायदे किये हैं। ये वायदे इस प्रकार है :–

1. भाजपा प्रतिबद्ध है कि अयोध्या में उस जन्म स्थान पर भव्य श्रीराम मन्दिर निर्माण हो सके, जहाँ इस समय एक अस्थाई मन्दिर है। पार्टी मन्दिर के निर्माण के लिए आम सहमति, कानूनी एवं संवैधानिक मार्गों का पता लगाएगी।

2. भाजपा 50 वर्षों के अनुभव के प्रकाश में भारत के संविधान की भली–भांति समीक्षा करने के लिए एक आयोग बनाएगी, जिसमें संविधान के विशेषज्ञ और प्रतिष्ठित संसद विशेषज्ञ होंगे।

3. भाजपा संविधान के अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए प्रतिबद्ध है।

4. भाजपा उत्तरांचल, वनांचल, विदर्भ और छत्तीसगढ़ की अलग राज्य के रूप में स्थापना करेगी। दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाएगा।

5. भाजपा धारा 370 को समाप्त करेगी।

6. भाजपा सत्ता में आने पर तुरन्त एक व्यापक चुनाव सुधार विधेयक पेश करेगी, जिसके लिए बहुत कुछ काम किया जा चुका है, परन्तु उस पर अमल नहीं किया गया है। भाजपा पार्टियों के लिए लेखा परीक्षित हिसाब–किताब सार्वजनिक जांच के लिए प्रस्तुत करने की अनिवार्य कर देगी।

7. भाजपा आतंकवाद का सामना करने के लिए उपयुक्त कानून बनाएगी और साथ ही ध्यान रखेगी कि उस कानून के दुरूपयोग की कोई गुंजाइश न हो और शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य सरकार को समय पर सहायतार देगी। स्थानीय पुलिस बलों की मदद के लिए पर्याप्त केन्द्रीय पुलिस भेजेगी। हम एक दंगा मुक्त भारत बनाएंगे।

8. भाजपा सरकारिया आयोग की सिफारिशों को तत्काल लागू करेगी। भाजपा राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व राज्य सरकारों से परामर्श करेगी और ऐसे उपाय ढूंढ़ेगी, जिनसे राजभावनों का दुरूपयोग राजनतिक प्रयोजनों के लिए न किया जा सके। भाजपा राज्यों के लिए संसाधनों का आबंटन बढ़ाएगी।

9. भाजपा प्रधानमंत्री सहित सार्वजनिक पद पर प्रतिष्ठित किसी भी व्यक्ति के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए लोकपाल नियुक्त करेगी। भाजपा प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि के लिए आवश्यक कर देगी कि वह अपनी तथा अपनी पति–पत्नी, आश्रित बच्चों और माता–पिता की आय और सम्पत्ति का ब्यौरा 90 दिन के अन्दर सार्वजनिक करे। इन घोषित ब्यौरों की सार्वजनिक जांच की जा सकेगी और इन्हें प्रतिवर्ष देना होगा।

10. भाजपा ऐसी नीतियाँ अपनाएगी, जिससे सकल घरेलू उत्पाद की सतत् 8–9 प्रतिशत की अभिवृद्धि की वार्षिक दर बनाए रखी जा सके। इसका मतलब होगा कृषि में वृद्धि की कम से कम 5 प्रतिशत की वार्षिक दर और औद्योगिक वृद्धि की कम से कम 12 प्रतिशत की वार्षिक दर बनाए रखी जाए।

11. भाजपा सरकार प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के दायित्व की स्वेच्छा से निर्वहन की एक पद्धति तैयार करेगी, जिसमें कुछ चुने हुए मामलों में निर्धारित कर की परीक्षण के तौर पर जांच की जाएगी और करवंचको की दोष सिद्धि में शीघ्रता लाएगी।

12. भाजपा सरकार जापान में एम.आई.टी.आई की तरह एक ढांचागत मंच के द्वारा भारतीय उद्योग के साथ दैनिक कार्यकारी सम्बन्ध सुनिश्चित करेगी।

13. भाजपा प्रतिवर्ष एक करोड़ नौकरियों का सृजन करेगी। हम ऐसे क्षेत्रों पर बल देंगे जिनमें रोजगार की बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं, जिनमें लघु कारीगर आधारित एवं ग्रामीण उद्योग, ढांचागत सुविधाएँ, आवास (शहरी एवं ग्रामीण), निर्माण, कृषि, परती भूमि विकास तथा वान्निकी और निर्यात के लिए सघन श्रम शक्ति उत्पादन शामिल है।

14. भाजपा लघु उद्योग के क्षेत्र को जो हमारी अर्थव्यवस्था और रोजगार की रीढ़ है, न ही देश के बड़े औद्योगिक घरानों और न ही विदेशी कम्पनियों की असमान स्पर्धा की मुसीबत में डालेगी।

15. भाजपा भागीदारी (अनिगमित) क्षेत्र के लिए एक पृथक विकास बैंक की स्थापना पर भी विचार करेगी। भागीदारी क्षेत्र के योगदान के बारे में एक चेतना उत्पन्न करने तथा राष्ट्रव्यापी शासकीय ज्यादतियों से इसकी रक्षा करने के लिए एक राष्ट्रीय कानून बनाने का कार्यक्रम भी शुरू किया जाएगा।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्तूबर 1999 और भाजपा)– 13वीं लोकसभा चुनावों के अवसर पर भाजपा ने अपना पृथक् घोषणा–पत्र जारी नहीं किया। राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन का प्रमुख घटक होने के कारण पार्टी ने राजग घोषणा–पत्र के आधार पर ही चुनाव लड़ा। इस चुनाव में पार्टी ने राम मन्दिर, अनुच्छेद 370, समान नागरिक संहिता जैसे विवादास्पद मुद्दों को फिलहाल ठण्डे बस्ते में डाल दिया। 24 दलों ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन को साथ लेकर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने 339 सीटों पर प्रत्याशी खड़े कर 182 सीटें (23-70% मतों के साथ) हासिल की। यह निश्चित रूप से अटल लहर वाला चुनाव था। वाजपेयी के मुकाबले दूसरे नेता बौने, क्षेत्रीय या महज अनुभवहीन दिखे। इन चुनावों में भाजपा ने दक्षिण में अपनी स्थिति मजबूत की और असम में नया आधार बनाया है।

चुनाव 1999 : राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के घोषणा–पत्र के प्रमुख बिन्दु

- विदेशी मूल के लोगों को विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका में उच्च पद देने पर पाबन्दी।
- लोकसभा अपना कार्यकाल पूरा करें, इसकी पक्की व्यवस्था।
- घरेलू उद्योगों को खास महत्व।
- नई सूचना प्रौद्योगिकी नीति।
- स्वरोजगार और महिलाओं के उद्यमों को कर्ज देने के लिए बैंक की स्थापना।
- राष्ट्रीय बचत को सकल घरेलू उत्पाद के 24 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत करना।
- योजना राशि का 60 प्रतिशत कृषि और ग्रामीण विकास पर।
- निजी आपरेटरों को नियन्त्रित करने के लिए प्रसारण विधेयक।

इंडिया टुडे ने लिखा है : ''दशक (1990) शुरू होते ही कांग्रेस का परिवार राज खत्म हुआ और गठजोड़ा की राजनीति का दौर शुरू हुआ वक्त की नब्ज को भाजपा ने दूसरों के मुकाबले अच्छी तरह पकड़ा कांग्रेस के बाहरी

समर्थन से चलने वाले 'तीसरे मार्चे' के शासन को झेलने के बाद 1998 में भाजपा नेतृत्व वाले गठबन्धन के लिए आधार बन गया। लेकिन अन्ना द्रुमुक के साथ महंगे गठबन्धन और सरकार गिरने के बाद भाजपा नेतृत्व वाला इन्द्रधनुषी गठबन्धन दोबारा सत्ता में आ गया भाजपा अपनी भगवा विचारधारा को गौण करके इन्द्रधनुष के दोनों सिरों को पकड़े रखना सीख गई।''

भारतीय जनता पार्टी का चेन्नई घोषणा–पत्र

28–30 दिसम्बर, 1999 को भाजपा की राष्ट्रीय परिषद ने अपनी चेन्नई बैठक में चैन्नई घोषणा–पत्र को स्वीकृति प्रदान की। गृहमन्त्री लाल कृष्ण आडवाणी के अनुसार यही घोषणा–पत्र अब भाजपा की आगे की सोच है। घोषणा–पत्र में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को दरकिनार कर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन (राजग) के एजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने का संकल्प व्यक्त किया गया है। प्रारूप में कहा गया है कि हर कार्यकर्त्ता को यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि राजग के एजेण्डे को छोड़कर पार्टी का अपना कोई एजेण्डा नहीं है। अल्पसंख्यकों के बारे में पार्टी का दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए घोषणा–पत्र में कहा गया है कि भाजपा कभी एक–दूसरे के धर्म में मतभेदों को राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक नहीं बनने देगी।

संक्षेप में, भाजपा ने अपने को नई सदी के लिए तैयार करने के लिए जारी 'चेन्नई घोषणा–पत्र' के प्रारूप में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को अलग रखकर राजग के एजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने तथा देश को बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के कृत्रिम विभाजन से मुक्त करने का संकल्प लिया है।

साम्यवादी (Communist Pary)

एन.एन. राय की प्रेरणा से 26 दिसम्बर, 1925 को भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई। राय की सलाह ने साम्यवादी दल कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की शाखा मान लिया गया और सन् 1928 में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने ही भारत में साम्यवादी दल को कार्य प्रणाली निश्चित की। यथार्थ में भारतीय साम्यवादी आन्दोलन सोवियत संघ की देखरेख में ही शुरू हुआ और कई भारतीय साम्यवादियों को सोवियत संघ में प्रशिक्षण भी दिया गया। स्वाधीनता आन्दोलन के समय अनेक साम्यवादी नेताओं ने कांग्रेस के साथ मिलजुलकर कार्य किया, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के समय कांगेस और साम्यवादी नेताओं के दृष्टिकोणों में आकाश पाताल का अन्तर आ गया। जहाँ कांग्रेस जनता को ब्रिटिश राज के विरूद्ध संघर्ष को आह्वान कर रही थी वहीं साम्यवादी जनता से आग्रह कर रहे थे कि ब्रिटिश सरकार से सहयोग करे। इसका कारण यही था कि सोवियत संघ और ब्रिटेन मिलकर नाजी जर्मनी के विरूद्ध महायुद्ध लड़ रहे थे। दिसम्बर 1945 में कांग्रेस महासमिति ने सभी साम्यवादियों को अपने दल से निष्कासित कर दिया। जब भारत का नया संविधान अस्तित्व में आया तो साम्यवादी दल ने इसे दासता का घोषणा–पत्र कहा।

संगठन – साम्यवादी दल के निम्न इकाई सेल है। इसमें दो या तीन सदस्य होते हैं। इसके बाद ग्राम, शहर, जिला एवं प्रान्तीय स्तर पर 'सम्मेलन' होते हैं। प्रत्येक स्तर के सम्मेलन की एक कार्यकारिणी समिति होती है। साम्यवादी दल की सर्वोच्च शक्ति अखिल भारतीय दल कांग्रेस में निहित होती है। इसके प्रतिनिधि राज्य सम्मेलनों द्वारा भेजे जाते हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस एक राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण करती है और यह परिषद् एक केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करता है। केन्द्रीय समिति में महासचिव तथा दल के मुख्य नेता होते हैं। दल का एक केन्द्रीय नियन्त्रण आयोग भी होता है। साम्यवादी दल का संगठन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है।

भारतीय राजनीति में साम्यवादी दल – स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साम्यवादी दल ने 14 से 17 फरवरी, 1948

को अपने 'कलकत्ता सम्मेलन में कलकत्ता थीसिस' के अनुसार 'स्वाधीनता' को सच्ची स्वाधीनता नहीं माना गया, नेहरू सरकार को पूंजीवादी हितों का रक्षक कहा गया और यह माना गया कि सरकार बड़े व्यवसायिक हितों का संरक्षण करने वाली है। साम्यवादी दल का यह विश्वास था कि सरकार आंग्ल अमरीकी चंगुल में फंसी हुई है, अतः दल ने सभी क्रान्तिकारी तत्वों को संगठित करके एक लोकतान्त्रिक गठबन्धन तैयार करने का निर्णय लिया। दल के महासचिव रणदिवे ने तो यहाँ तक कहा कि भारत में रूस की अक्तूबर क्रांति के समतुल्य 'अन्तिम क्रांति' प्रारम्भ की जा सकती है। मार्च 1947 में पश्चिमी बंगाल सरकार ने साम्यवादी दल को अवैध घोषित कर दिया। कई साम्यवादी नेताओं को देश के विभिन्न भागों में गिरफ्तार भी कर लिया गया। साम्यवादियों ने देश के विभिन्न भागों में हड़ताल बन्द भी आयोजित किये। तेलंगाना प्रदेश में तो साम्यवादियों ने आतंक का राज्य ही स्थापित कर दिया। साम्यवाद की गतिविधियों से तंग आ करके केन्द्रीय सरकार ने उन्हें 'निवारक विरोध अधिनियम' के अन्तर्गत गिरफ्तार भी कर लिया। प्रथम आम चुनाव में साम्यवादी दल ने लोकसभा के 27 स्थानों पर विजय प्राप्त की और राज्य विधानमण्डलों में उसे 181 स्थान प्राप्त हुए। लोकसभा में सबसे बड़ा विरोधी दल होने के कारण उसके नेता ए०के० गोपालन ने गैर कांग्रेसी दलों का संयुक्त गठबन्धन बनाने का प्रयास भी किया। दूसरे जन निर्वाचन में दल को लोकसभा में 29 स्थान प्राप्त हुए। केरल राज्य में दूसरे चुनाव में साम्यवादियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और 5 अप्रैल, 1975 को उन्होंने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। विश्व के इतिहास में पहली बार चुनावों के माध्यम से साम्यवादियों को सत्ता में आने का यह पहला मौका मिला था।

साम्यवादी दल में कई कारणों से दरार पड़ने लगी। दिसम्बर 1953 की तीसरी कांग्रेस में साम्यवादी नेताओं के मतभेद खुले तौर से सामने आने लगे। सर्वप्रथम राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन के सवाल को लेकर नेताओं के बीच विवाद बढ़ा। अजय घोष, पी.सी. जोशी आदि का कहना था कि नेहरू सरकार प्रगतिशील नीतियों में विश्वास करती है, अतः उसके साथ सहयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर भूपेश गुप्त, रमन मूर्ति इत्यादि नेहरू सरकार को पूंजीवाद परस्त मानते थे और उसका विरोध करना चाहते थे। साम्यवादी दल में मतभेद का दूसरा चरण खुश्चेव की निस्टालिनीकरण की नीति थी। 1962 के भारत चीन संघर्ष को लेकर भी गम्भीर मतभेद देखा जा सकता था। सन् 1964 के बाद तो साम्यवादी दल के दोनों गुटों के तनाव बहुत अधिक बढ़ा। फरवरी 1963 में डांगे द्वारा लिखे कुछ पत्रों को लेकर साम्यवादी दल में गम्भीर वाद विवाद छिड़ गया। दल का वामपन्थी गुट चाहता था कि डांगे अपने पद से त्यागपत्र दे दें, किन्तु डांगे उनकी बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसी स्थिति में दल के कतिपय प्रमुख सदस्य जैसे सुन्दरैया, ज्योति बसु, ए.के. गोपालन, नम्बूद्रीप्रसाद, भूपेश गुप्त, प्रमोद दास गुप्ता इत्यादि दल से अलग हो गये। दोनों गुटों में समझौते के प्रयास भी किये गये, किन्तु वामपंथी गुट के लोगों ने गोपालन के नेतृत्व में 11 सदस्यों का एक नया गुट संगठित कर लिया। इस गुट को भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) कहा जाने लगा।

विभाजन के पश्चात् साम्यवादी दल वैचारिक दृष्टिकोण से सोवियत संघ के निकट रहा है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि दल ने सत्ताधारी कांग्रेस दल के साथ सहयोग करने की नीति प्रारम्भ कर दी। साम्यवादी दल ने कांग्रेस से सहयोग करने की नीति की शुरूआत मोहन कुमार मंगलम् की 'थीसिस' के आधार पर की। कुमार मंगलम् के अनुसार साम्यवादी कांग्रेस में घुस करके अन्ततोगत्वा सत्ता पर कब्जा कर सकते हैं। यह बात सर्वविदित है कि 1971 और 1972 के निर्वाचनों में साम्यवादी दल ने कांग्रेस के साथ न केवल सहयोगि किया अपितु चुनाव–गठबन्धन भी किया। चुनावों के पश्चात् साम्यवादी दल ने केरल और पश्चिमी बंगाल में कांग्रेस से मिल–जुलकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। साम्यवादी दल को अपनी रणनीति का तात्कालिक लाभ भी प्राप्त हुआ है। अनेक भूतपूर्व साम्यवादियों को केन्द्र और राज्यों में मन्त्रिपदों पर भी नियुक्त किया गया।

सिद्धान्त और कार्यक्रम

भारत का साम्यवादी दल कार्ल मार्क्स व लेनिन के विचारों से प्रेरणा ग्रहण करता है। साम्यवादियों का उद्देश्य पुरानी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को समाप्त करके एक ऐसे समाज का निर्माण करना है। जो मार्क्स व लेनिन के सिद्धान्तों पर आधारित हो। भारतीय साम्यवादी दल मजदूरों व किसानों के संरक्षण का दावा करता है। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहता है जिसमें असमानता, जातपात, शोषण व सामाजिक कुरीतियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सभी नागरिकों को रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा सामाजिक कुरीतियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सभी नागरिकों को रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा की गारण्टी दी जायेगी। श्री डांगे के नेतृत्व में साम्यवादी दल ने चीनी कम्युनिस्ट की अपेक्षा रूसी कम्युनिज्म को चुना।

साम्यवादी दल ने हिंसात्मक कार्यवाहियों को त्याग दिया है। साम्यवादी दल कांग्रेस को प्रगतिशील दल मानता है और उसके साथ सहयोग करना चाहता है। वह संविधान में इस प्रकार का संशोधन चाहता है ताकि संविधान संशोधनों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सके। दल ने सुझाव दिया है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति संसद व विधानसभाओं द्वारा स्वीकृत नामों की सूची में से की जाए। संसद को यह अधिकार होना चाहिए कि वह साधारण बहुमत के आधार पर प्रस्ताव पारित करके सर्वोच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को हटा सके। दल का सुझाव है कि एकाधिकारी पूंजीपतियों, राजाओं तथा अन्य धनी व्यक्तियों के सम्पत्ति के अधिकार को बहुत कड़ाई के साथ सीमित करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाये। जहाँ तक हो सके जन साधारण की जिसमें छोटी सम्पत्ति रखने वाले सम्मिलित हैं। सम्पत्ति को पूंजीपतियों, जमींदारों, सूदखोरों आदि के हमलों से बचाया जाये। दल चाहता था कि मतदाताओं की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी जाये। लोकतन्त्र व विधानसभाओं के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को चालू किया जाये। राज्यपाल, विधानपरिषदों के पद भी समाप्त कर दिये जाये।

साम्यवादी दल चाहता है कि कृषि में जोत की वर्तमान सीमा को काफी कम कर दिया जाये, जोत–सीमा के लिए परिवार को इकाई माना जाये और सीमाबन्दी से छूटों को समाप्त कर दिया जाये। औद्योगिक क्षेत्र में दल की मांग है कि एकाधिकार पूजीपंतियों की कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। विदेशी तेल कम्पनियों और विदेशी बैकों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। बेरोजगारी भत्ता दिया जाये। श्रमिकों, सरकारी कर्मचारियों आदि को आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन दिया जाये। दल चाहता है कि उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरूद्ध तथा सोवियत रूस व अन्य साम्यवादी देशों के साथ मैत्री पर आधारितश शान्ति व गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी जायें। रंगभेद के विरूद्ध और अधिक कार्यवाही की जाये ताकि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाये। दल ने अपने 1971 के घोषणा पत्र में कहा कि संविधान में यह आवश्यक संशोधन कर न्यायपालिका को इस बात के लिए विवश किया जाना चाहिए कि वह कानूनों की व्याख्या निहित स्वार्थों के हित में नहीं वरन् देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए करे। साथ ही न्यायपालिका को संविधान की प्रस्तावना तथा निर्देशक सिद्धान्तों में मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए।

साम्यवादी दल संवैधानिक तरीकों तथा लोकतन्त्र में विश्वास करता है। यह दल 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही', 'क्रांति की अनिवार्यता' को नहीं दोहराता है। 1971 में लोकसभा में इसके सदस्य 23 सदस्य निर्वाचित हुए। इसने कांग्रेस के साथ सहयोग और समर्थन की नीति अपनायी। इस दल का प्रभाव आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल व केरल राज्यों में अधिक है।

1977 के लोकसभा के चुनावों के समय श्रीमती गांधी के विरूद्ध रोष का वातावरण बन चुका था। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी को भी कोई विशेष कामयाबी हासिल नहीं हुए। 1977 में गठित लोकसभा में साम्यवादी दल के केवल 7 सदस्य थे।

नवम्बर 1979 में श्री एस.के. डांगे ने पार्टी के चेयरमैन पद से और केन्द्रीय समिति से त्यागपत्र दे दिया। श्री डांगे का मत था कि वामपन्थी ताकतें श्रीमती गांधी के नेतृत्व में ही आगे बढ़ सकती है, परन्तु साम्यवादी दल के महासचिव राजेश्वर राव श्री डांगे की मान्यता (थीसिस) को सही नहीं समझते। उनके अनुसार आपातकाल में श्रीमती गांधी का समर्थन गलत था। 1980 में एस. ए. डांगे की पुत्री श्रीमती रोजा देश पाण्डे को पार्टी से निकाल दिया गया। उन्होंने और उनके साथियों ने मिलकर अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

1980 के लोकसभा चुनावों के लिए वामपन्थी मोर्चे का गठन किया गया था। कम्युनिस्ट पार्टी ने कुल मिलाकर 11 स्थानों पर विजय हासिल की। मई 1980 के विधानसभा चुनावों में कम्युनिस्ट पार्टी ने बिहार में अपने प्रभाव को कायम रखा। तमिलनाडु और पंजाब में उसने क्रमशः 10 व 9 सीटें प्राप्त की। 1981 में श्री डांगे को कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल दिया गया। पार्टी से निकालने के कई कारण बताये गये, जैसे दल विरोधी गतिविधियों को प्रोत्साहन देना और श्रीमती रोजा देशपांडे द्वारा संस्थापित कम्युनिस्ट पार्टी के समारोह में भाग लेना।

कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता और सदस्य मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये हैं, इसलिए उसका जनाधार (Mass Base) जब नहीं के बराबर है। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं का कहना है कि यदि दोनों पार्टियों एक हो जायें तो राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति पर उसका जबरदस्त असर पड़ेगा। मई 1982 में कम्युनिस्ट पार्टी में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में चुनाव लड़ा। पश्चिम बंगाल में वामपन्थी मोर्चे को भारी बहुमत मिला, पर केरल में उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा।

दिसम्बर 1984 में लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने 66 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और 6 स्थानों पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। दल को 2.7 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। मार्च 1987 में कम्युनिस्ट पार्टी ने मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में चुनाव लड़े। पश्चिमी बंगाल में वामपन्थी मोर्चे को भारी बहुमत मिला। उसने 294 स्थानों में से 251 पर सफलता प्राप्त की जिसमें 11 सीटें कम्युनिस्ट पार्टी की थी। केरल में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में वामपंथी मोर्चे की सरकार बनी। कम्युनिस्ट पार्टी उसे सरकार में शामिल हुई।

नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में साम्यवादी पार्टी ने 49 सीटों पर चुनाव लड़ा अ और उसे 12 सीटें हासिल हुई। 1991 के 10वीं लोकसभा चुनावों में पार्टी को 14 सीटें प्राप्त हुई।

ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव (1996) और भारतीय साम्यवादी दल – भारतीय साम्यवादी दल ने 1991–95 के वर्षों में भारत सरकार की उदारवादी आर्थिक नीतियों का प्रबल विरोध किया और चुनाव के समय में जारी घोषणा–पत्र में कहा गया कि पार्टी निर्बाध उदारीकरण की नीति का त्याग कर देगी, सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण रोक देगी और जीवन के लिए आवश्यक 14 वस्तुएँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत लगभग 50 प्रतिशत कम मूल्य पर उपलब्ध कराएगी। चुनाव सुधार, भ्रष्टाचार निवारण, लोकपाल की स्थापना, अल्पसंख्यकों के जीवन तथा अधिकारों की रक्षा, भूमि सुधार कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें लागू करने तथा केन्द्र में संसाधनों के अति केन्द्रीकरण को रोकने आदि की बातें कही गई। उद्योगों के प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी सुनिश्चित करने और भूमि, सम्पत्ति और जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुषों के बराबर हक दिलाने की बात भी कही गई है।

1996 में लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने 43 सीटों पर चुनाव लड़ा और 12 सीटों (2.0 प्रतिशत

मत) पर उसे सफलता मिली। साम्यवादी दल संयुक्त मोर्चे में शामिल हुआ और श्री इन्द्रजीत गुप्त को गृहमन्त्री तथा श्री चतुरानन मिश्र को कृषि मन्त्री बनाया गया।

12वीं लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और भारतीय साम्यवादी दल – फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को 9 सीटें प्राप्त हुई। इनमें से 3 सीटें पश्चिम बंगाल तथा 2.2 सीटें केरल और आन्ध्र प्रदेश से उसे मिली।

साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) (Communist Party Marxist)

सन् 1964 में साम्यवादी दल दो भागों में विभक्त हो गया तथा एक नये दल भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) का जन्म हुआ। इसके नेता प्रमोद दास गुप्ता, ज्योति बसु, ए.के. गोपालन तथा पी. राममूर्ति है। 1967 ई. के चुनावों में इस दल को भारतीय साम्यवादी दल के मुकाबले में अधिक सफलता मिली। इनको लोकसभा में 19 व राज्य विधानसभाओं में 126 स्थान प्राप्त हुए। केरल में नम्बूद्रीप्रसाद के नेतृत्व में संयुक्त सरकार का निर्माण हुआ। पश्चिमी बंगाल में अजय मुखर्जी की संयुक्त सरकार में मार्क्सवादी साम्यवादी दल की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सन् 1971 के चुनावों में इसकी शक्ति में वृद्धि हुई और लोकसभा में इसके 25 सदस्य हो गये।

संगठन – मार्क्सवादी साम्यवादी दल का संगठन साम्यवादी दल की भांति ही सीढ़ीनुमा है। निम्न स्तर पर सैल होते हैं और उनके ऊपर ग्राम, शहर, तालुका, जिला एवं राज्य समितियाँ होती है। सभी समितियों की एक–एक कार्यकारिणी समिति होती है। केन्द्रीय समिति दल की सर्वोच्च संस्था है। केन्द्रीय समिति एक पोलिट ब्यूरो का चुनाव करती है। इसमें दल के प्रमुख नेता सम्मिलित है।

मार्क्सवादी दल का सामाजिक आधार व राजनीतिक उपलब्धि

किसी समय कम्युनिस्ट पार्टी संसद में प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका निभा रही थी और कई राज्यों की विधानसभाओं में भी उसका अच्छा प्रभाव था। बाद में उनका एक बड़ा हिस्सा टूटकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी बन गया। पहले जिन राज्यों में कम्यूनिस्ट पार्टी प्रभावी थी, वहां अब मार्क्सवादियों की प्रधानता देखने को मिलती है। जैसे–जैसे भारतीय साम्यवादी पार्टी क्षीण होती रही, वैसे–वैसे मार्क्सवादी आगे बढ़ते गये। अब केवल बिहार ही एक ऐसा राज्य है जहाँ मार्क्सवादी के मुकाबले कम्युनिस्टों का संगठन ज्यादा मजबूत है।

1971 के मध्यावधि चुनावों में मार्क्सवादी दल को लोकसभा में 25 सीटें मिली। पश्चिमी बंगाल इस दल का विशेष गढ़ है, परन्तु आन्ध्र प्रदेश, केरल व त्रिपुरा में इस दल का संगठन काफी मजबूत है। छठी लोकसभा में इस दल के 22 सदस्य थे। 1980 के लोकसभा चुनाव में मार्क्सवादी दल के 36 सदस्य चुनकर आये, जिनमें से 27 पश्चिम बंगाल में चुने गये। मई 1980 के विधानसभाई चुनावों में पार्टी को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। तमिलनाडु में मार्क्सवादी पार्टी ने 11 सीटें जीती और पंजा में उसे 5 स्थानों पर विजय मिली। मई 1982 के चुनावों के वामपन्थी मोर्चे की पश्चिमी बंगाल में उल्लेखनीय सफलता मिली। वहाँ मोर्चे को तीन–चौथाई बहुमत मिला। मोर्चे के प्रमुख घटक मार्क्सवादी पार्टी को इतनी सीटें मिली कि विधानसभा से उसे अकेले बहुमत प्राप्त हो गया। केरल विधानसभा से वामपन्थी मोर्चे को प्राप्त 63 सीटों में से मार्क्सवादी 26 सीटें ले पायी। जनवरी 1983 में त्रिपुरा में फिर से वाम मोर्चे की सरकार बनी, जिसमें सबसे ज्यादा मन्त्री मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के थे।

विचारधारा, नीतियाँ तथा कार्यक्रम

मार्क्सवादी, साम्यवादी पार्टी डांगे तथा सी.पी.आई. की ऐसे संशोधनवादियों के रूप में निन्दा करती है जो अपनी वर्ग

सहयोग की अवसरवादी धारणा का अनुसरण करना चाहते हैं। यह सी.वी.आई. पर आरोप लगाती है कि उसने श्रीमती गांधी के अधीन कांग्रेस दुर्जूआ–जमींदार सरकार के साथ गठजोड़ किया जिसने आपातकालीन स्थिति की घोषणा की और सभी विरोधी नेताओं को जेलों में डाल दिया।

इस दल के नेता 'किसानों और मजदूरों की तानाशाही' कायम करना चाहते हैं। यद्यपि उन्होंने चुनाव की राजनीति का परित्याग करना उचित नहीं समझा अर्थात् वे चुनावों में भाग लेते हैं, परन्तु उनका असली झुकाव लोकतन्त्रीय व वैधानिक पद्धतियों की ओर न होकर प्रदर्शन, घेराव का मोर्चो की ओर है।

मार्क्सवादी पार्टी काफी समय तक जनवादी चीन की ओर झुकी रही, परन्तु अफगानिस्तान में रूसी कार्यवाही का संगठन करके उसने अपने को रूस के काफी निकट कर दिया। मार्क्सवादी पार्टी पर रूस की ओर से यह दबाव डाला जाता रहा कि वह कांग्रेस (आई) के प्रति नरम रूख अपनाये पर मार्क्सवादी पार्टी इसके लिए तैयार नहीं थी। पार्टी में विजयवाड़ा सम्मेलन (1982) के बाद महासचिव नम्बुद्रीप्रसाद ने कहा था, ''रूस ने पार्टी का जनसमर्थन देखना शुरू कर दिया। हमारी पार्टी सोवियत रूस को मान्यता प्राप्त करने के लिए कांग्रेस (आई) के प्रति नरमी बरतने को तैयार नहीं है। मार्क्सवादी पार्टी बिना सोवियत रूस की मान्यता के 18 वर्षों तक चलती रही है।''

यदि 1977–1980 व 1989 के चुनावों के लिए जारी किये गये घोषणा–पत्र को देखें तो इस दल के कार्यक्रम का निम्नलिखित रूप हमारे सामने आता है –

संवैधानिक क्षेत्र में– मार्क्सवादी दल मजदूर वर्ग के नेतृत्व में जन लोकतन्त्र स्थापित करना चाहता है। यह लोगों की प्रभुसत्ता के आधार पर एक नया विधान चाहता है, जिसमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व की अनुमति देगा और राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। इसके अनुसार राज्यपाल के पद और केन्द्रीय व राज्य विधानमण्डलों में दूसरे सदनों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह राज्यों की और अधिक शक्तियाँ प्रदान करने, सभी नागरिकों को समान अधिकार, सभी भाषाओं के लिए समानता और राज्य सरकारों को भारतीय प्रशासनिक तथा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने का समर्थक है। इसके अनुसार काम करने के अधिकार को मूल अधिकारों की सूची में शामिल किया जाना चाहिए और बेरोजगारी भत्ते की व्यवस्था की जानी चाहिए।

राजनीतिक क्षेत्र में– मार्क्सवादी दल एक नयी शासन प्रणाली लाना चाहता है जिसे 'जन लोकतन्त्र' कहा जाता है। इसके अनुसार एक सर्वहारा राज्य की स्थापना की जानी चाहिए, जिसमें शोषण के लिए कोई स्थान न हो। यह समाजवाद के लिए संसदीय मार्ग को अस्वीकार करता है। मार्क्सवादी दल न्यायालपालिका की प्रतिबद्धता पर बल देता है। अभिप्राय यह है कि न्यायपालिका जनता की इच्छा के अनुरूप कार्य करे। सामाजिक सुधार लाने के लिए जो कानून बनाये जायें उन्हें अदालतों में चुनौती दी जा सके। मार्क्सवादी दल की मान्यता है कि राज्यों की शक्तिशाली बनाया जाये। उनका कहना है कि समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य विधानमण्डल को ही प्राप्त हो।

आर्थिक क्षेत्र में –(1) चीनी, कपड़ा, जूट सीमेण्ट व अन्य महत्वपूर्ण उद्योग–धन्धों को तुरन्त राष्ट्रीयकरण किया जाए तथा विदेशों में भारतीयों की जो पूंजी है, उस पर सरकार का अधिकार स्थापित किया जाये, (2) कारखानों व अन्य क्षेत्रों में कर्मचारियों की 'प्रबन्ध कार्यों' में भाग लेने का अधिकार दिया जाये, छोटे किसानों को ऋण प्राप्त करने की सुविधाएँ मिलें और गरीबों से कर न लेकर करों का बोझ अमीरों के ऊपर डाला जाये, (3) जमींदारी प्रथा का पूर्ण खात्मा किया जाए तथा भूमिहीनों एवं समाज के कमजोर वर्गों के बीच तेजी से भूमि बांटने का काम किया जाये। किसानों, खेतिहर मजदूरों एवं गांवों की गरीब जनता पर जो ऋण हैं, वे तत्काल रद्द किये जायें। उन्हें मकान बनाने

के लिए निःशुल्क जमीनें दी जायें। गरीब किसानों को किसी भी अवस्था में उसके खेतों से बेदखल न किया जाये।

सामाजिक क्षेत्र में –मार्क्सवादियों ने निम्नलिखित कार्यक्रम पर बल दिया है : (1) हरिजनों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों व विद्यालयों में स्थान आरक्षित किये जायेंगे। जिन हरिजन भाईयों ने बौद्ध धर्म अपना लिया है, उन्हें वे सुविधाएँ बराबर मिलती रहनी चाहिएं, (2) मुसलमानों और उर्दू भाषा के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा, (3) अहिन्दी भाषा–भाषियों पर हिन्दी नहीं लादी जाएगी।

विदेश नीति के क्षेत्र में –मार्क्सवादियों का कहना है कि भारत का हित इसी बात में है कि वह पूंजीवादी ताकतों का विरोध करें तथा समाजवादी देशों के साथ अपने सम्बन्ध मजबूत बनायें। समाजवादी वियतनाम और कंपूचिया की हैंग सैमरिन सरकार के साथ उसे विशेष हमदर्दी थी। पार्टी तीसरी दुनिया के उन देशों का समर्थन करती है जो अपन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पार्टी की यह मांग थी कि भारत सोवियत मैत्री सन्धि पर पूरी तरह अमल किया जाये और चीन के साथ सम्बन्ध सामान्य बनाये जायें।

पश्चिमी बंगाल के देहाती क्षेत्रों में भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने में पार्टी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मार्क्सवादी दल वहाँ सभी जिलों में अपनी जड़ें जमाने में सफल हुआ है।

दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी ने 64 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और उसके 22 प्रत्याशी विजयी हुए। उसे 5.7 प्रतिशत मत मिले। मई 1987 में पश्चिम बंगाल में वामपन्थी मोर्चे ने लगातार तीसरी बार शानदार विजय हासिल की। इस विजय का मुख्य श्रेय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को जाता है जिसे 294 विधानसभाई स्थानों में से 187 स्थान मिले। केरल में भी वामपन्थी मोर्चे की सरकार बनी, जिसका प्रमुख घटक मार्क्सवादी दल हैं त्रिपुरा में आयोजित विधानसभा चुनावों (अप्रैल, 1993) में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने अकेले 60 में से 36 सीटें जीतकर पूर्ण बहुमत हासिल कर लिया।

नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में माकपा ने 64 स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये और उसे 33 सीटें प्राप्त हुई। दसवीं लोकसभा चुनावों (1991) में पार्टी को 35 सीटें प्राप्त हुई।

ग्याहरवीं लोकसभा के चुनाव (1996) और मार्क्सवादी दल का चुनाव घोषण पत्र – मार्क्सवादी दल ने अपने 46 सूत्री घोषणा पत्र में मतदाताओं से वायदा किया था कि वह सत्ता में आने पर नरसिंह राव सरकार की 'निर्वाध उदारीकरण' की नीति को त्याग देगी, सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण रोक देगी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत जीवन के लिए आवश्यक 14 वस्तुएँ 50 प्रतिशत कम कीमत पर उपलब्ध कराएंगी, पांचवे वेतन आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करेगी, संसद तथा विधानमण्डलों में महिलाओं के लिए एक–तिहाई स्थान आरक्षित कराएगी, सभी गांवों में पेयजल उपलब्ध कराएगी, राष्ट्रीय बजट का 10 प्रतिशत और राज्य के बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करेगी, रोजगार तथा आवास का मूल अधिकार का दर्जा देगी और धर्मान्तरण कर ईसाई बने दलितों को अनुसूचित जातियों को मिलने वाली सुविधाएँ प्रदान करेगी।

इसके साथ ही विदेशी निवेश को प्राथमिकता नहीं देने, सार्वजनिक क्षेत्र को स्वायत्तता देने, प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी सुनिश्चित करने, सैन्य कर्मचारियों के एक पद के लिए एक वेतन देने, भूमि सुधार कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें सख्ती के साथ लागू करने, खेतिहर मजदूरों के लिए केन्द्रीय कानून बनाने, सम्पत्ति तथा भूमि में महिलाओं को पुरुषों के बराबर का हक दिलाने, अल्पसंख्यकों को जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा देने, चुनाव सुधार के लिए व्यापक विधेयक लाने, लोकपाल विधेयक लाने उसके दायरे में प्रधानमन्त्री को लाने, केन्द्र में संशोधनों का अतिकेन्द्रीकरण रोकने, राजनीति का अपराधीकरण रोकने, आम जनता को शीघ्र तथा सस्ता न्याय दिलाने, राज्यों को

अधिक अधिकार देने और पंचायतों को अधिकार सम्पन्न बनाने का भी वायदा किया है।

1996 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने 75 सीटों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये और 32 सीटों (6.1 प्रतिशत मत) पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। मार्क्सवादी दल ने केन्द्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार को बाहर से समर्थन दिया।

12वीं लोकसभा चुनाव (चुनाव 1998) और मार्क्सवादी दल – फरवरी 1998 में सम्पन्न लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल को 32 सीटें प्राप्त हुई और दल ने कांग्रेस के नेतृत्व में गैर–भाजपा सरकार को बाहर से समर्थन देने के लिए तैयार हो गया। सीताराम येचुरी और प्रकाश कारत सरीखे पदाधिकारी कांग्रेस को भाजपा से कम खतरनाक दुश्मन बताने लगे।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्तूबर 1999) और साम्यवादी दल – बार–बार खण्डित जनादेश के चलते 1996 से ही मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी की अगुवाई में राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा वाम मोर्चो 1999 में अपनी जोड़–तोड़ की क्षमता खो बैठा। 11वीं लोकसभा (1996–98) में वह सत्तारूढ़ संयुक्त मोर्चे को पीछे से चलाने वाला सशस्त चालक था।

13वीं लोकसभा के चुनावों में मार्क्सवादी साम्प्रदायी दल ने 72 प्रत्याशी खड़े किए और उसके 33 प्रत्याशी लोकसभा में पहुंचे। दल को 5.38 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। मई 2001 में सम्पन्न पं० बंगाल विधानसभा चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में वाम मोर्चे को 294 में से 199 सीटों पर जीत हासिल हुई। अकेली मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी को 143 सीटें प्राप्त हुई।

माकपा में 1977 में मोरारजी देसाई की सरकार को, 1989 में वी.पी. सिंह की सरकार को तथा 1996–97 में देवगौड़ा एवं गुजराल सरकारों को बाहर से समर्थन दिया था। देश में सबसे लम्बे समय तक मुख्यमन्त्री रहने का रिकार्ड बनाने वाले नेता ज्योति बसु माकपा के ख्याति प्राप्त दिग्गज हैं।

2.4.7 भारत में क्षेत्रीय और राज्य स्तर की पार्टियाँ (Regional and State Parties in India)

महाराष्ट्र में शिव सेना, कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम, तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (अन्नाद्रमुक) तथा पंजाब में अकाली दल के प्रभाव के बाद यह सवाल उठना अस्वभावित नहीं है कि क्या भारत में राज्य स्तरीय पार्टियाँ ही पनपेगी? राज्य स्तरीय पार्टियाँ नई नहीं है। देश में बंगला कांग्रेस, केरल कांग्रेस, उत्कल कांग्रेस जैसी कांग्रेस नामधारी क्षेत्रीय दलों तथा विशाल हरियाणा पार्टी, गणतन्त्रपरिषद्, शेतकारी कामगार पार्टी, सम्पूर्ण महाराष्ट्र एकीकरण, महा गुजरात जनता परिषद्, जैसी राज्य पार्टियों का भी उतार–चढ़ाव देखा है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में उनका विकास हुआ और अन्य परिस्थितियों में वे दूसरों से मिल गयी या समाप्त हो गयी। सन् 1967 में पंजाब से लेकर पश्चिम बंगाल तक और बाद में मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में जो सरकार बनीं, उन्हें संयुक्त विधायक दल का नाम दिया गया, परन्तु उन दलों की बड़ी शक्ति राज्य स्तरीयय पार्टियाँ ही थी। भले ही वह राव वीरेन्द्र सिंह की विशाल हरियाणा पार्टी हो, चौधरी चरणसिंह का भारतीय क्रान्ति दल हो, उड़ीसा के राजाओं की गणतन्त्र परिषद् या अजय मुखर्जी की बंगला कांग्रेस हो। दक्षिण में अन्नादुरै का द्रविड़ मुनेत्र कड़गम शक्तिशाली बनी।

11वीं लोकसभा में राज्य स्तरीय (क्षेत्रीय) दलों का वर्चस्व स्थापित हुआ और यूनाइटेड फ्रण्ट के भागीदार के रूप में वे केन्द्र की मिली जुली सरकार के आधार स्तम्भ बने। 13 पार्टी के यूनाईटेड फ्रण्ट में तेलगूदेशम्, द्रमुक, नेशनल कान्फ्रेन्स, तमिल मनीला कांग्रेस, समाजवादी पार्टी और असम गण परिषद् को भी केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व मिला। आज उन्हें 'राष्ट्रीय हितों का पोषण करने वाली क्षेत्रीय पार्टियाँ' कहा जाने लगा है।

क्षेत्रीय दलों का उद्‌भव जन आन्दोलन से हुआ। द्रमुक अगर द्रविड़ कडगम की ब्राह्मण विरोधी राजनीति की उपज है, तो तेलगूदेशम का जन्म कांग्रेसी सरकारों द्वारा तेलगु 'स्वाभिमान' को ठेस पहुंचाने के कारण हुआ और 'विदेशियों' के खिलाफ अन्य जातियतावादी छाप आन्दोलन के कारण असम गण परिषद् अस्तित्व में आई।

'राज्य स्तरीय' दलों की 'क्षेत्रीय दल' सम्बोधित करने की हमारी आदत रही है। असल में असम गण परिषद् (असम), नेशनल कांफ्रेन्स (जम्मू–कश्मीर), डी.एम.के. (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), शिवसेना (महाराष्ट्र), सिक्कम संग्राम परिषद् (सिक्किम), आदि सभी स्तरीय दल है। ये अलग–अलग राज्यों में प्रभावशाली है, न कि किसी 'क्षेत्र' (Region) विशेष में।

क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय दलों की विशेषताएँ (Salient Features of Regional and State Parties)

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय दलों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इन दलों की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं :–

1. भारतीय राजनीति में राज्य दलों का वर्चस्व सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद बढ़ने लगा।
2. भारत के क्षेत्रीय दल आमतौर से राज्य स्तरीय दल ही है।
3. इन राज्य स्तरीय दलों की प्रमुख मांग राज्य स्वायत्तता है।
4. इन राज्य स्तरीय दलों की प्रमुख प्रतिस्पर्धा कांग्रेस दल से रही है।
5. राज्य स्तरीय दलों की संकुचित अपील और आधार होते हैं, जैसे उपसंस्कृति, जातीयता और धर्म के तत्व आदि।
6. क्षेत्रवाद का उदय केन्द्र के खिलाफ विद्रोह से होता है।
7. क्षेत्रवाद की वस्तुतः सत्ता हासिल करने का वैसा ही शॉर्टकट है जैसे शॉर्टकट राष्ट्रीय राजनीतिक करने वाले दल अपनाते है।

भारत में प्रमुख राज्य स्तरीय दल (Major State Parties in India)

भारत में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के राज्य स्तरीय दल है। पहले प्रकार के राज्य स्तरीय दल वे हैं जो वास्तव में जाति, धर्म, क्षेत्र अथवा सामुदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते है और उन पर आधारित है। इसके प्रमुख उदाहरण द्रविड़ मुन्ड़ें कड़गम, या अन्नाद्रमुक (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), नेशनल कांफ्रेन्स (जम्मू–कश्मीर), शिव सेना (महाराष्ट्र), झारखण्ड पार्टी (बिहार) तथा उत्तर पूर्व में कुछ आदिवासी संगठन जैसे नागालैण्ड नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, मिजो नेशनल फ्रण्ट, आदि है। दूसरे प्रकार के राज्य दल वे हैं जो किसी समस्या विशेष को लेकर अथवा सदस्यों की क्षुब्धता के कारण राष्ट्रीय दलों विशेष रूप से कांग्रेस से अलग होकर बने हैं। इनमें से अधिकतर दल केवल कुछ समय के लिए राष्ट्रीय रहे। कुछ ने स्वयं को राष्ट्रीय अकाली दल सिक्खों की मुख्य राजनीति व सामाजिक संस्था है। अकाली दल राज्य स्तरीय दल है क्योंकि यह पंजाब तक ही सीमित है। गुरुद्वारों (सिक्ख मन्दिरों) को पम्परानिष्ठ सिक्ख समुदाय के अधिकार क्षेत्र में लाने के लिए एक सुधार समूह का गठन किया गया। सन् 1925 में अकाली प्रत्यक्ष कार्यवाही के द्वारा गुरूद्वारों को वयस्क मताधिकार द्वारा सिक्ख समुदाय में से चुनी हुई एक समिति के अधिकार क्षेत्र में लाने में सफल हुए। समितियों के सौ से अधिक गुरूद्वारों पर नियन्त्रण तथा उनकी दान सम्पत्ति ने पंजाब में अकाली दल की स्थिति का प्रयोग शक्तिशाली बना दिया। धार्मिक दृष्टिकोण से यह ''पन्थ की सुरक्षा'' (सिक्ख धार्मिक दल

या समुदाय) के लिए बना है। राजनीतिक दृष्टि से अपने संविधान के अनुसार यह एक ऐसे ''वातावरण के निर्माण के लिए बचाया गया जिसमें सिक्ख राष्ट्रीय अभिव्यक्ति को पूरी सन्तुष्टि प्राप्त हो सके।'' इनके राजनीतिक उद्देश्यों ने पंजाबी सूबे या पंजाबी भाषायी राज्य की मांग का मार्ग प्रशस्त किया।

जब पंजाब द्विभाषी राज्य था तब अकाली दल ने सरकार के साथ सन्धि घोषित कर दी तथा 1957 के चुनावों के समय कांग्रेस के साथ मिल गये। फिर भी 1960 में पंजाबी सूबे के समर्थन में प्रदर्शन बढ़ गये। लेकिन इसके फलस्वरूप अकालियों के बीच गुटबन्दी का जन्म हुआ। लगभग तीस वर्षों तक मास्टर तारा सिंह अकाली दल के एक प्रभावशाली नेता रहे। फिर भी 1962 में उनके प्रमुख अनुयायी सन्त फतेहसिंह ने अकाली दल की एक प्रतिद्वन्दी शाखा की स्थापना की जो शीघ्र मास्टर तारासिंह के दल पर पूरी तरह छा गयी। 1966 में अलग पंजाब राज्य की रचना करके पंजाबी सूबे के लिए अकाली दल की चिरकालिक तथा आग्रहपूर्ण मांग मंजूर कर ली। 1998 में मास्टर तारासिंह की मृत्यु हो गई तथा अकाली दल के दोनों पक्ष फिर से एक हो गये। 1969 के मध्यावधि चुनाव में विधानसभा में दोबारा गठित दल के कांग्रेस से अधिक सदस्य चुने गये। जनसंघ के साथ एक आश्चर्यजनक मेल कर अकाली दल ने पंजाब में सरकार बनायी। 1977 के चुनावों में अकाली दल ने जनता सरकार का समर्थन किया। जुलाई 1979 में जनता पार्टी सरकार पर संकट के समय अकाली दल ने उसका साथ छोड़ दिया। जनवरी 1980 में लोकसभा चुनाव में दल को भारी असफलता की स्थिति का सामना करना पड़ा। मई 1980 के विधानसभा चुनाव में इस दल ने भारतीय साम्यवादी दल और मार्क्सवादी दल के साथ समझौते के आधार पर लड़े और दल ने पंजाब के ग्रामीण अंचलों में अपनी लोकप्रियता का परिचय दिया। चुनाव परिणामों से यह स्पष्ट है कि पंजाब के कांग्रेस (आई) को चुनौती देने की क्षमता रखता है।

पहले चुनाव से ही अकाली दल पंजाब में कांग्रेस के पश्चात् दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में सफल रहा है। वास्तव में अकाली दल और तीसरे नम्बर के दल के बीच का अन्तर कांग्रेस और अकाली दल के बीच के अन्तर से कहीं अधिक रहा। सन् 1952 में अकाली दल को वैध मतों का 24 प्रतिशत प्राप्त हुआ। सन् 1957 के चुनाव से पहले अकाली दल कांग्रेस में सम्मिलित हो गया और इसने एक अलग राजनीतिक दल के रूप में चुनाव नहीं लड़ा। सन् 1962 में दल को 20.7 प्रतिशत, 1967 में 24.7 प्रतिशत और 1969 में 19.5 प्रतिशत मत मिलें। सन् 1972 में अकाली दल को 27.7 प्रतिशत और 1977 में 31.4 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

ऊपर वर्णित चुनाव सफलताओं के विश्लेषण से अकाली समर्थन के बारे में कुछ विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। पहली बात तो यह है कि पंजाब में इस दल का निश्चित आधार है जो दलीय व्यवस्था में उथल–पुथल के बावजूद इस दल को समर्थन देता है। अध्ययनों से पता चलता है कि यह आधार मुख्य रूप से ग्रामीण सिक्ख कृषक वर्ग का है। अकाली दल इस वर्ग का आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी विशेषता यह है कि सदैव दूसरे नम्बर पर दल रहने के बावजूद अकाली दल की चुनाव जीतने की क्षमता सीमित है। सन् 1977 के चुनाव को छोड़कर इस दल का मत प्रतिशत कभी भी 30 प्रतिशत से ऊपर नहीं गया। इसका कारण इसकी केवल एक ही धार्मिक सम्प्रदाय से अपील और आर्थिक कार्यक्रम में वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व है।

जून 1980 के चुनावों में पराजय के बाद अकाली नेताओं को निराशा ने घेर लिया। अकाली दल कई धड़ों में बंट गया। मुख्य धड़े का नेतृत्व सन्त हरचन्द सिंह लोंगोवाल और पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री प्रकाश सिंह बादल कर रहे थे। कई मुद्दों को लेकर उन्होंने पंजाब की कांग्रेस (आई) सरकार और भारत सरकार के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। अकाली दल की मुख्य मांगे रही हैं :– (1) हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के पंजाबी भाषी इलाके पंजाब में शामिल किये जायें। (2) चण्ड़ीगढ़ को अकेले पंजाब की राजधानी स्वीकृत किया जाये। (3) भाखड़ नंगल

जैसे जल विद्युत केन्द्र पंजाब के नियन्त्रण में रहें (4) पंजाब में भारी उद्योगों की स्थापना की जाये, (5) गुरूद्वारों की प्रबन्ध समितियों व सिक्खों के अन्य धार्मिक मामलों में सरकार हस्तक्षेप न करे। इन मागों को लेकर अकाली दल ने न केवल धरने दिये और प्रदर्शन किया, बल्कि 'रास्ता रोको' और 'रेल रोको' जैसे आन्दोलन भी चलाये। धीरे–धीरे अकाली आन्दोलन एक खतरनाक मोड़ पर पहुंच गया। सन्त लोंगोवाल आन्दोलन शान्तिपूर्ण ढंग से चलाना चाहते थे, पर अकाली दल के भीतर उन लोगों की संख्या बढ़ी जो 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सिख राज्य' का समर्थन करते थे। पंजाब के उग्रवादियों की बागडोर सन्त जरनेल सिंह भिण्डरावाला के हाथों में आ गई। कई पुलिस अधिकारी, सरकार कर्मचारी और निर्दोष व निहत्थे लोग उग्रवादियों की हिंसा का निशाना बने। फलस्वरूप जून 1984 में पंजाब में फौजी कार्यवाही की गई। स्वर्ण मन्दिर में सेना के प्रवेश और भिण्डरेवाले के अन्त के बाद पंजाब की समस्या के राजनीतिक समाधान की जरूरत थी। 24 जुलाई 1985 को अकाली दल और केन्द्र सरकार के बीच एक समझौता हुआ। समझौते के अन्तर्गत चण्ड़ीगढ़ शहर पंजाब को और उसके बदले में पंजाब के हिन्दी भाषी इलाके हरियाणा को दिये जाने हैं। श्रीमती गांधी की हत्या के बाद नवम्बर 1984 में हुए दंगों की जांच के लिए एक आयोग की स्थापना की गई तथा अकालियों का आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव सरकारिया आयोग को विचार के लिए सौंप दिया गया।

अकाली दल के चुनाव घोषणा–पत्र में दावा किया गया है कि अकाली दल आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक न्याय के आधार पर खड़ा राजनीतिक दल है, जिसका उद्देश्य अधिनायकवाद का विरोध और व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा कराना है। अकाली दल संविधान के संघीय स्वरूप, राज्यों की स्वायतता और अल्पसंख्यकों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषायी हितों की रक्षा के मुद्दों पर विशेष बल देता है। यह दल पंजाब और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में गुरूमुखी भाषा और लिपि के अधिकारिक प्रयोग का विशेष समर्थक है।

अकाली दल प्रमुखतया पंजाब के कृषकों का राजनीतिक दल है। अपने आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इसके द्वारा भूमि सुधार कानूनों की क्रियान्विति, कृषि के आधुनिकीकरण, कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलवाने, उर्वरकों के दाम घटवाने और ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के विकास की बात कही गयी है। सन् 1962 के चुनाव में जब अकाली दल को ग्रामीण कृषक वर्ग का अधिक समर्थन प्राप्त हुआ है। दल की नीतियों में तदानुसार परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अब अकाली दल तथाकथित अनावश्यक भूमि सुधारों का विरोध करता है और शहरी सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए तत्पर हैं। इसी प्रकार उचित दाम पर अनाज की बिक्री के स्थान पर आज इसकी मांग किसानों को उचित न्यूनतम कीमत प्राप्त करवाने की है। अकाली दल 10 एकड़ तक की भूमि पर राजस्व की छूट, सिंचाई की अधिक सुविधाएँ, गांव में बिजली, सस्त दामों पर खाद, कृषकों को बैंकों और अन्य संस्थाओं से ऋण की सुविधाओं, आदि के लिए विशेष प्रयत्नशील है। अब उसकी दूसरी रूचि पंजाब के औद्योगिकीरण भी है क्योंकि अनेक बड़े किसानों के पास खेतों से कमाया व्यापक धन उद्योगों में लगाने के लिए उपलब्ध है। पंजाब के रहने वाले हिन्दू–हरिजन और एक सीमा तक शहरी सिक्ख अकाली दल को समर्थन नहीं देते। इसी का दूसरा पहलू यह है कि अकाली दल अपनी संकीर्णता के बावजूद अकेले विधानसभा में बहुमत नहीं प्राप्त कर सकता।

सितम्बर 1985 के विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों में अकाली दल को पंजाब में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई। विधानसभा के 115 स्थानों में से 73 तथा लोकसभा के 13 स्थानों में से 7 स्थान जीतकर राज्य में पहली बार उसने अपने बलबूते पर सरकार बनायी। काफी संख्या में हिन्दू मतदाताओं ने भी अकालियों को मत दिये। 1987 में पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया जो नवम्बर 1991 तक जारी रहा। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में अकाली दल (मान गुट) को 7 स्थान प्राप्त हुए।

अकाली दल में सदैव से ही दो या अधिक गुटों में विभाजन की स्थिति रही है और फरवरी 92 से पंजाब

विधानसभा और पंजाब से लोकसभा चुनाव के समय चार अकाली दल थे : अकाली दल (मान), अकाली दल (लोंगोवाल–बरनाला), अकाली दल (बादल तलवण्डी), और अकाली दल (के अर्थात् काबुल सिंह)। इनमें से केवल अकाली दल (के) ने ही विधानसभा और लोकसभा चुनाों में भाग लिया और उसे भी असफलता ही हाथ लगी। अन्य अकाली दलों ने फरवरी 92 के विधानसभा चुनावों का बहिष्कार किया।

फरवरी 1997 में सम्पन्न पंजाब विधानसभा के चुनावों में अकाली दल भाजपा गठबन्धनों को शानदार सफलता मिली। गठबन्धन को 117 सीटों पर हुए चुनावों में 93 सीटें तथा 45.8 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। अकेले शिरोमणी अकाली दल को 75 सीटें मिली और अकाली नेता श्री प्रकाश सिंह बादल के नेतृत्व में अकाली भाजपा गठबन्धन की सरकार अस्तित्व में आई।

फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनाव अकाली दल ने भाजपा के साथ मिलकर लड़े और 13 सीटों में से 8 सीटें अकाली दल को प्राप्त हुई।

सितम्बर–अक्तूबर 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव अकाली दल ने भाजपा के साथ मिलकर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के तले लड़े और मात्र 2 सीटों पर विजय प्राप्त हुई।

द्रविड़ मुनेत्र कड़गम तथा अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (D.M.L. and A.D.M.K.)

तमिलनाडु राज्य में द्रविड़ कड़गम एक स्थानीय द्रविड़ आन्दोलन की राजनीतिक शक्ति का प्रतीक है। इसकी मूल जड़े जस्टिस पार्टी (दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ) में भी जो गैर ब्राह्मण आन्दोलन था। परिसर के नाम से विख्यात ई.बी. रामास्वामी नाइकर जो 1938 में जस्टिस पार्टी के अध्यक्ष थे, ने राजनीति को तमिल रूप देने का कार्यक्रम शुरू किया और तमिलनाडु में एक नये राज्य द्रविड़िस्तान बनाने की मांग रखी। 1944 में पेरियर ने दल का द्रविड़ कड़गम के नाम से पुनः निर्माण किया और अपना लक्ष्य एक स्वतन्त्र द्रविड़िस्तान की प्राप्ति रखा। इसने तमिल समुदाय को एक पूर्ण इकाई के रूप में राजनीतिक गतिविधियों के द्वारा ऊंचा उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। द्रविड़ कड़गम एक ब्राह्मण विरोधी और धर्म विरोधी दल था।

जस्टिस पार्टी के सक्रिय सदस्य और पेरियर के मुख्य समर्थक तथा द्रविड़ कड़गम के एक समूह के नेता सी. एन. अन्नादुराई ने 1949 में एकनेय दल द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का गठन किया। यह एक प्रकार से पेरियर की प्रजातन्त्र विरोधी नीति के विरूद्ध विरोध था। अन्नादुराई जनता के प्रिय महान नेता व ओजस्वी वक्ता थे, उन्होंने जल्दी ही द्रविड़मुनु कड़गम को तमिल राजनीति में विशिष्ट स्थान दिया दिया। 1957 में पहली बार द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने चुनावों मे हिस्सा लिया और 15 प्रतिशत मत प्राप्त किये। इसके पश्चात् इसने तीव्र प्रगति की तथा 1967 के आम चुनाव में डी.एम.के. को 48 स्थान प्राप्त हुए। हिन्दी विरोध और आगे चलकर 'राज्यों के लिए स्वतन्त्रता' इस दल की नीति और कार्यक्रम के प्रमुख आधार रहे हैं।

अन्ना डी.एम.के – डी.एम.के. अध्यक्ष करूणानिधि और कोषाध्यक्ष एम.जी. रामचन्द्रन के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाने पर अक्तूबर 1972 में एम.जी. रामचन्द्रन ने डी.एम.के. से अलग होकर अन्ना डी.एम.के. का निर्माण किया। अन्ना डी.एम.के. एक क्षेत्रीय दल है, जिसका प्रभाव क्षेत्र तमिलनाडु और पाण्डिचेरी में है। जून 1977 के राज्य विधानसभा चुनावों में अन्ना डी.एम.के. ने 130 स्थान प्राप्त किये तथा एम.जी. रामचन्द्रन के नेतृत्व में राज्य मन्त्रिमण्डल का गठन किया। अपनी स्थापना के समय से ही अन्ना डी.एम.के. की मूलनीति यथासम्भव केन्द्र के शासक दल के साथ सहयोग करने की रही है। इसी कारण 1977 के लोकसभा तथा विधानसभा चुनाव इसने सत्ता कांग्रेस के साथ सहयोग करते हुए लड़े, लेकिन जब केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बन गयी तो जनता पार्टी के समीप आने के कार्य किया और

जब इसका पतन हो गया तो जनता 'एस' के साथ सरकार में भागीदारी की। मई 1980 के विधानसभा चुनावों में तमिलनाडु में दो गठबन्धन थे – पहला, कांग्रेस डी.एम.के. गठबन्धन तथा दूसरा वामपन्थी तथा अन्य छोटे दलों के साथ अन्ना डी.एम.के. गठबन्धन। इसमें अन्ना डी.एम.के. गठबन्धन ने सफलता प्राप्त कर तमिलनाडु में अपनी सरकार का निर्माण किया।

तमिलनाडु के दोनों राज्य स्तरीय दलों की राज्य में नीति एक सी है और दोनों ही अखिल भारतीय सन्दर्भ में केन्द्र में सत्तारूढ़ दलों – चाहे कांग्रेस हो या जनता पार्टी साथ देते रहे है या साथ देने के इच्छुक रहे है। रॉबर्ट हार्डग्रेव के अनुसार, ''डी.एन.के.आर. के एक दूसरे के प्रतिद्धन्दी जरूर है पर इन दोनों दलों की नीतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।'' दोनों दलों के कार्यक्रम के खास–खास मुद्दे इस प्रकार है – (1) समाज के पिछड़े वर्गों को समान अवसर किये जाये तथा छुआछूत कोपूरी तरह से समाप्त किया जाये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सरकार ने राज्य के लगभग 65 हजार निर्धन बच्चों को दोपहर का भोजन मुफ्त देने की योजना लागू करके एक साहसिक कदम उठाया। 1982–83 के बजट में इसके लिए एक अरब रूपये की व्यवस्था की गयी, (2) अन्धविश्वास नष्ट किये जायें तथा हर क्षेत्र में 'बुद्धिवाद' (Rationalism) और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाये, (3) तमिल भाषा और संस्कृति का प्रचार किया जाये तथा हिन्दी के जबरन लादे जाने का विरोध किया जाये, (4) डी.एम.के. की एक प्रमुख मांग यह रही है कि राज्यों को अधिक स्वायत्तता और वित्तीय साधन दिये जायें। 1970 में डी.एम.के. ने 'राज्य स्वायत्तता सम्मेलन' आयोजित किया। राजपन्नार समिति प्रतिवेदन के आधार पर अपनी राज्य स्वायत्तता की मांग को तार्किक आधार प्रदान किया।

दिसम्बर 1984 में तमिलनाडु विधानसभा चुनावों में अन्नाद्रमुक को 11 सीटें प्राप्त हुई। वैसे उसने लोकसभा की 12 सीटों के लिए ही चुनाव लड़ा था। राज्य विधानसभा को 234 सीटों में से उसे 133 सीटें प्राप्त हुई और इस प्रकार तमिलनाडु में राज्य राजनीति की बागड़ोर पुनः अन्ना डी.एम.के. दल के हाथों में गयी।

फरवरी 1989 में तमिलनाडु विधानसभा में डी.एम.के. दल को 147 स्थान प्राप्त हुए। इसके विपरीत अन्नाद्रमुक (जयललिता) को 21.7 प्रतिशत मत और 27 स्थान एवं अन्ना द्रमुक (जानकी) को 9.1 प्रतिशत मत और 1 स्थान मिला। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में डी.एम.के. को एक भी सीट प्राप्त नहीं हुई जबकि अन्ना डी.एम.के (जयललिता) को 13 सीटें मिलीं 1991 में द्रमुक सरकार को बर्खास्त कर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। तमिलनाडु विधानसभा चुनावों में जयललिता और अन्नाद्रमुक को अप्रत्याशित सफलता मिली। जहां द्रमुक को मात्र एक सीट मिली वहाँ अन्ना द्रमुक को 163 सीटें मिली और जयललिता मुख्यमंत्री पद पर आसीत हुई। जयललिता लोगों को यह विश्वास दिलाने में कामयाब रही कि द्रमुक ने राज्य में उग्रवादी गतिविधियों को शह दी। मार्च 93 में अन्ना द्रमुक की नेता जयललिता ने औपचारिक घोषणा कर कांग्रेस (ई) के साथ गठबन्धन की स्थिति को समाप्त कर दिया।

1996 के लोकसभा तथा तमिलनाडु विधानसभा चुनाव डी.एम.के. तमिल मनीला कांग्रेस के साथ गठबन्धन तथा सिनेमाई व्यक्तित्व रजनीकान्त के समर्थन से बड़े और भारी सफलता अर्जित की। संयुक्त मोर्चे के एक भागीदार दल के रूप में डी.एम.के. देवगौड़ा और इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में बनने वाली केन्द्रीय सरकार का सहभागी दल था। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनाव अन्ना डी.एम.के ने भाजपा के साथ मिलकर लड़े और 18 सीटें प्राप्त हुई जबकि डी.एम.के. की मात्र 5 सीटें मिली। डी.एम.के. ने तमिल मनीला कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ा था।

सितम्बर–अक्तूबर 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनाव द्रमुक ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के तहत लड़े और 12 सीटों पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। द्रमुक के प्रतिनिधि वायजपेयी मन्त्रिमण्डल में भी शामिल हुए।

अन्नाद्रमुक ने अप्रैल 1999 में वाजपेयी सरकार से समर्थन वापिस लेकर उसे गिराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 13वीं लोकसभा के चुनाव अन्नाद्रमुक ने कांग्रेस के साथ तालमेल कर लड़े और उसके 10 प्रत्याशी विजयी हुए।

मई 2001 में सम्पन्न तमिलनाडु विधानसभा के चुनावों में अन्ना द्रमुक के नेतृत्व वाले गठबन्धन ने मुख्यमन्त्री करूणानिधि के नेतृत्व को शिकस्त देकर सत्ता पर अधिकार कर लिया। राज्य विधान की 234 सीटों हेतु सम्पन्न चुनावों में अन्ना द्रमुक को 196 तथा द्रमुक मोर्चे को केवल 36 सीटें प्राप्त हुई इनमें अकेले अन्ना द्रमुक को 27 सीटों पर सफलता मिली।

नेशनल कांफ्रेंस (National Conference)

नेशनल कांफ्रेंस की मूल जड़ 1930 के दशक में 'वाचनालय दल' के रूप में थी। लेख मोहम्मद अब्दुल्ला इस छोटे से दल के राजनीतिक वाद–विवादों का नेतृत्व करते रहे। 'वाचनालय दल' शीघ्र ही अखिल जम्मू व कश्मीर मुस्लिम कांग्रेस में बदल गया। 1938 में अपने पहले अधिवेशन में नेशनल कांफ्रेंस ने वयस्क मताधिकार की तथा अल्पसंख्यकों के लिए स्थानों के आरक्षण की सिफारिश की। भारत के विभाजन के समय नेशनल कांफ्रेंस के नेता जेल में थे। भारतीय संघ में कश्मीर के विलय के बाद शेख अब्दुल्ला प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने भारतीय विधानसभा पर अनुच्छेद 370 को अंगीकार करने के लिए जोर डाला, जिसके अन्तर्गत जम्मू व कश्मीर राज्य के भारत गणराज्य के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किये गये।

केन्द्रीय सरकार के साथ कश्मीर के मामलों के एकीकरण की प्रक्रिया का शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कांफ्रेंस ने विरोध किया तथा इससे इन्हें अगस्त 1953 में कैद व नजरबन्द कर दिया गया। जनवरी 1964 में मुख्यमन्त्री सादिक ने नेशनल कांफ्रेंस 'कश्मीर स्वतन्त्रता आन्दोलन के सबसे पुराने दल' के उन्मूलन पर अध्यक्षता की। भूतपूर्व प्रधान बख्शी गुलाम मुहम्मद ने स्वयं अपने नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस को पुनर्जीवित करने का निर्णय किया।

जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा के लिए 1967 के आम चुनावों में बख्शी की नेशनल कांफ्रेंस ने केवल आठ स्थान प्राप्त किये, हालांकि इसने कुल मतों का 34 प्रतिशत प्राप्त किये। यह जनता में असन्तोष का केन्द्र बिन्दु बन गयी।

1968 के शुरू में शेख अब्दुल्ला को बिना शर्त रिहा कर दिया। सितम्बर 1972 में कश्मीर में हुए नागरिक मतदान में उसके समर्थकों की लगभग सम्पूर्ण विजय ने नेशनल कांफ्रेंस की राजनीतिक शक्ति के पुनः उभर आने की घोषणा की। फरवरी 1975 में शेख अब्दुल्ला तथा प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी के बीच समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते के परिणामस्वरूप शेख अब्दुल्ला तथा उनकी नेशनल कांफ्रेंस ने आत्म–निर्णय जनमत संग्रह का नारा छोड़ दिया। इस समझौते के आधार पर शेख के द्वारा जम्मू–कश्मीर में कांग्रेस के सहयोग से सत्ता ग्रहण की गयी, लेकिन नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस दल के सम्बन्ध तनावपूर्ण बनते गये। मार्च 1977 के चुनावों में स्वतन्त्रता के बाद पहली बार शेख अब्दुल्ला तथा उनका दल नेशनल कांफ्रेंस ने डाले गये मतों का 48 प्रतिशत प्राप्त किया तथा मुख्यमन्त्री शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया।

जून 1983 में कश्मीर विधानसभा चुनावों में सत्तारूढ़ नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) में जबरदस्त टक्कर हुई। नेशनल कांफ्रेंस को 64 स्थान प्राप्त हुए और डॉ० फारूख अब्दुल्ला पुनः मुख्यमन्त्री पद पर आसीत हुए। उसके बाद नेशनल कांफ्रेंस का स्वर केन्द्र विरोधी होता रहा और डॉ० फारूख 'राज्य स्वायत्तता' की मांग करने लगे।

अक्तूबर 1983 में श्रीनगर में प्रतिपक्षी नेताओं का सम्मेलन आयोजित करके उन्होंने राज्य स्वायत्तता और केन्द्र राज्य सम्बन्धों के पुनः निर्धारण का जोरदार समर्थन किया।

जुलाई 1984 में नेशनल कांफ्रेंस से दल–बदल के कारण डॉ० फारूख की सरकार अल्पमत में आ गयी और राज्यपाल जगमोहन ने उसे बर्खास्त कर दिया। केन्द्र ने फारूख अब्दुल्ला पर यह आरोप लगाया था कि वह पृथकतावादी तत्वों से मिले हुए हैं और भारत विरोधी गतिविधियों में सलंग्न है। जम्मू–कश्मीर की बागड़ोर जी.एम. शाह के हाथों में सौंप दी गयी जो नेशनल कांफ्रेंस के प्रतिद्वन्द्वी गुट के नेता थे। दिसम्बर 1984 में लोकसभा चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस ने 4 प्रत्याशी खड़े किये और तीन स्थानों पर उसे विजय प्राप्त हुई। नवम्बर 1986 में कश्मीर में राष्ट्रपति शासन की जगह लोकप्रिय सरकार का गठन किया गया, जिसका नेतृत्व डॉ० फारूख अब्दुल्ला कर रहे थे। सरकार में नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) दोनों ही दलों के व्यक्ति शामिल थे। मार्च 1987 के विधानसभा चुनाव में दो दलों के इस मोर्चे को भारी सफलता मिली और कश्मीर में पुनः एक मिली–जुली सरकार का गठन किया गया। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस को 6 में से 3 सीटें प्राप्त हुई।

1990–96 की कालावधि में जम्मू–कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियाँ बड़े पैमाने पर शुरू हुई। जनवरी, 1990 में वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया और जुलाई 1990 से 8 अक्तूबर 1996 तक वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू रहा। सितम्बर 1996 में लगभग 9 वर्ष बाद वहाँ विधानसभा की 87 सीटों के लिए चुनाव सम्पन्न हुए। चुनाव परिणामों से स्पष्ट होता है कि कश्मीर की जनता ने पुनः डॉ० अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस को सौंपने का निश्चय किया। उनकी पार्टी को 57 सीटें प्राप्त हुई। 9 अक्तूबर, 1996 को डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ ली।

12वीं लोकसभा में नेशनल कांफ्रेंस के 3 प्रत्याशी चुनाव जीतकर पहुंचे जबकि 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में 4 सीटों पर नेशनल कांफ्रेंस के प्रत्याशी विजयी हुए। 1998 में नेशनल कांफ्रेंस ने भाजपा गठबन्धन को समर्थन प्रदान किया और 1999 में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन में शामिल होकर राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका में निर्वाह का प्रयत्न किया है।

मुस्लिम लीग (Muslim League)

सन् 1996 में स्थापित यह दल देश के विभाजन के बाद भारत से लगभग समाप्त हो गया। 1970 के लगभग यह पहले केरल और फिर तमिलनाडु में सक्रिय हो गया। मार्च 1977 के चुनावों में इसने लोकसभा को दो सीटें (तमिलनाडु और केरल) जीती। केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर भारत के कुछ राज्यों में यह दल अपने प्रभाव के लिए सचेष्ट है। मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य भारतीय मुसलमानों के हितों और मुस्लिम समुदायों के विशेष सामाजिक कानूनों आदि की रक्षा है। जनवरी 1980 के चुनावों में मुस्लिम लीग ने लोकसभा की 3 सीटें जीती इनमें 2 केरल से तथा 1 तमिलनाडु से मिली। 1996 और 1998 के लोकसभा चुनावों में मुस्लिम लीग को क्रमशः 2–2 सीटें प्राप्त हुई। 1999 के लोकसभा चुनावों में मुस्लिम लीग के दो सदस्य लोकसभा में जीतकर पहुंचे। केरल में इसका अच्छा प्रभाव है। वस्तुतः इसने मालाबार जैसे केरल के कुछ भागों और तमिलनाडु के मुस्लिम बहुत इलाके में अपनी स्थायी निर्वाचन आधार बना लिया है। 1981–82 में लीग के नेता मोहम्मद कोया केरल के मुख्यमन्त्री भी रह चुके हैं। केरल में मिली–जुली सरकारों के निर्माण में लीग का सहयोग एक प्रभावक तत्व है। इसने राष्ट्रीय स्तर पर अधिकतर कांग्रेस (ई) का समर्थन किया है। अपने कार्यक्रम और लक्ष्य से यह एक समुदाय अभिमुख दल है।

तेलगुदेशम् (Telgu Desham)

तेलगूदेशम् आंध्र प्रदेश में नवनिर्मित राज्य स्तरीय दल है। जनवरी 1983 के आन्ध्र प्रदेश विधानसभा के चुनावों के 9–10 माह पूर्व इस दल की स्थापना की गयी। आन्ध्र प्रदेश कांग्रेस का गढ़ रहा है और तेलगूदेशम् की स्थापना कांग्रेस शासन की प्रतिक्रिया रही है। आमतौर पर यह माना जाता है कि अकेले रामाराव ने तेलगूदेशम् पार्टी का गठन

किया। मगर वास्तविकता यह है कि इस राजनीतिक दल की स्थापना में आन्ध्र प्रदेश के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों का हाथ है, जिनकी राजनीतिक आकांक्षाएँ किसी से छिपी नहीं हुई है। इसी सिलसिले में 'ई–नाडु' तेलुगू समाचार पत्र के संस्थापक राजजीराव का नाम चर्चित हो गया है जो क्षेत्रीय समस्याओं के प्रकाशन से ही लोकप्रिय हो गया। राजजीराव और उनके साथियों ने कई वर्षों से पूरे आन्ध्र प्रदेश में क्षेत्रीय दल का गठन कर सकते थे क्योंकि वे समझ चुके थे कि कांग्रेस के शासन से प्रदेश के लोग क्षुब्ध हैं मगर कोई व्यावहारिक विकल्प न होने के कारण लोगों को बार–बार श्रीमती गांधी के करिश्में की शरण लेनी पड़ती थी।

जनवरी 1983 में आन्ध्र विधानसभा के चुनावों में तेलगूदेशम् को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। उसने 289 स्थानों पर चुनाव लड़ा और 294 सदस्यीय विधानसभा में उसके 202 सदस्य निर्वाचित हुए। एन.डी. रामाराव मुख्यमन्त्री बने।

तेलगूदेशम् का चुनावी कार्यक्रम इस प्रकार था :

1. उनकी पार्टी राज्य को स्वच्छ और स्थिर प्रशासन प्रदान करेगी।
2. लोगों को चावल दो रूपये प्रति किलो की दर से उपलब्ध कराया जायेगा।
3. अफसरों की जवाबदेही पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।
4. निरर्थक और अलाभकारी खर्चों की कटौती होगी।
5. उद्योगों, कृषि, सिंचाई, बिजली और ग्रामीण विकास आदि क्षेत्रों में सलाह–मशविरे के लिए आवश्यक मंच बनाये जायेंगे, जिससे जन प्रतिनिधियों को शामिल किया जाएगा।
6. उन सभी नियमों को खत्म कर दिया जायेगा, जिन पर बेकार का खर्चा होता है।
7. प्राथमिक पाठशालाओं के छात्रों को दोपहर का भोजन देने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम बनाया जायेगा।
8. तेलगू प्रदेश की सरकारी भाषा होगी, सभी कामकाज इसी भाषा में किया जायेगा। मगर अन्य राज्यों और केन्द्र से हिन्दी ही सम्पर्क भाषा है। अंग्रेजी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।

सत्तारूढ़ होने के बाद तेलगूदेशम् ने पड़ोसी राज्यों और प्रतिपक्षी दलों के साथ सहयोग की नीति अपनायी। रामाराव ने मन्दिरों की नगरी तिरूपति में एक महिला विश्वविद्यालय की स्थापना करवायी। वे छः हजार रूपये वार्षिक आय से कम वाले परिवारों को दो रूपये प्रति किलो की दर पर चावल दिलवाने लगे।

तेलगूदेशम् दल राज्य स्वायत्तता पर प्रबल समर्थक है। विजयवाड़ा और श्रीनगर में आयोजित सम्मेलनों में दल ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार कर मांग की।

दिसम्बर 1984 में लोकसभा चुनावों में तेलगूदेशम् ने 32 स्थानों पर चुनाव लड़ा और उसे 28 सीटें प्राप्त हुई। आठवीं लोकसभा में तेलगूदेशम् सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरा। मार्च 1989 के राज्य विधानसभा चुनावों में तेलगूदेशम् ने विधानसभा की दो तिहाई से अधिक सीटें जीती। नवम्बर 1989 के राज्य विधानसभा चुनावों में तेलगूदेशम् को भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा। लोकसभा को 42 सीटों में तेलगू देशम को सिर्फ 2 सीटें मिली। विधानसभा चुनाव में यह पार्टी हार गई तथा 5 वर्ष बाद आन्ध्र प्रदेश में पुनः कांग्रेस सरकार लौट आई। 1991 के लोकसभा चुनावों में इसे मात्र 13 सीटें मिली। मार्च 1992 में इस पार्टी का विभाजन हो गया। लोकसभा में इसके 5 सदस्यों ने पृथक गुट बनाकर तेलगूदेशम् से नाता जोड़ लिया। दिसम्बर 1994 में हुए विधानसभा चुनावों में एन.डी. रामाराव के नेतृत्व में तेलगूदेशम् अप्रत्याशित बहुमत से विजयी हुई। पार्टी को 294 में से 225 सीटें प्राप्त हुई। अगस्त 1995 में

तेलगूदेशम् का पुनः विभाजन हो गया। सत्तारूढ़ तेलगूदेशम् से अलग हुए गुट के नेता चन्द्रबाबू नायडू को एन.टी. रामाराव के स्थान पर पार्टी का अध्यक्ष चुन लिया गया। तेलगूदेशम् के विभाजन का मूल कारण रामाराव की दूसरी पत्नी लक्ष्मी पार्वती की राजनीतिक महत्वाकांक्षी थी। लक्ष्मी पार्वती की ओर से राजनीति में जो भूमिका निभाई गई उससे विधायक और मंत्रीगण नाराज हो गये। तेलगूदेशम् का विभाजन पार्टी के नेता रामाराव की कार्यशैली के खिलाफ पार्टी में आन्तरिक विद्रोह का भी परिणाम कहा जा सकता है।

1996 के लोकसभा चुनावों में तेलगूदेशम् को 16 सीटें प्राप्त हुई। मुख्यमन्त्री चन्द्रबाबू नायडू के सक्रिय प्रयत्नों के केन्द्र में यूनाईटेड फ्रण्ट की सरकार बनी जिसमें तेलगूदेशम् एक सहभागी दल था। श्री चन्द्रबाबू नायडू यूनाईटेड फ्रन्ट की संचालन समिति के संयोजक थे तथा देवगौडा सरकार के त्यागपत्र के बाद प्रधानमंत्री पद पर इन्द्रकुमार गुजराल के पक्ष में आम सहमति तैयार करने में उनकी प्रभावी भूमिका रही। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में तेलगूदेशम् को यद्यपि 12 सीटें प्राप्त हुई किन्तु केन्द्र में सरकार बनाने की चाबी उसके नेता चन्द्रबाबू नायडू के हाथों में आ गई। 13 माह की वाजपेयी सरकार में उनका आचरण प्रशंसनीय रहा। 1999 के लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव चन्द्रबाबू नायडू के लिए नई प्रौद्योगिकी से लैस प्रशासन पर जनमत संग्रह थे। आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम् ने भाजपा से समझौता कर यह चुनाव लड़ा। 294 सदस्यीय राज्य विधानसभा के लिए सम्पन्न चुनावों में तेलगूदेशम् पार्टी की 179 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। लोकसभा के लिए उसके 29 प्रत्याशी विजयी हुए। उसके प्रत्याशी जी.एन. बालयोगी लोकसभा के स्पीकर पद पर आसित है।

असम गण परिषद् –असम का प्रमुख क्षेत्रीय दल असम गण परिषद् है। जिस तेजी से इसका उत्थान हुआ उतनी ही तेजी से इसके प्रभाव का ह्रास भी हुआ। असम गण परिषद् का उदय असम आन्दोलन (1979-1985) की कोख में हुआ। 1979–85 में असमिया मूल के लोगों में यह आशंका घर कर चुकी थी कि वे अल्पसंख्यक बन जायेंगे क्योंकि भारत की सीमा पार लोगों लोग आकर बसते जा रहे हैं। इसलिए 1979 में वहाँ एक विशाल आन्दोलन की शुरूआत हुई। इस आन्दोलन का नेतृत्व शुरू से आखिर तक विद्यार्थियों ने किया। विद्यार्थी नेताओं ने अन्त तक इस आग्रह को कायम रखा कि वे राजनीतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। अगस्त 1985 में असम समझौता हुआ, जिसके तहत् व्यवस्थित रूप से चुनाव हुए। उसमें आन्दोलनकारियों ने चुनाव लड़ने के लिए असम गण परिषद् के नाम से एक क्षेत्रीय दल का गठन किया जिसने विधानसभा में पूर्ण बहुमत हासिल किया। प्रफुल्ल कुमार महन्त, जो विद्यार्थी आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे, 24 दिसम्बर 1985 को असम के मुख्यमन्त्री बने। बाद में असम गण परिषद् राष्ट्रीय मोर्चे का घटक बन गया और विश्वनाथ प्रतापसिंह सरकार में उसके प्रतिनिधि शामिल हुए।

असम गण परिषद् की सरकार वोडो आन्दोलन से निबटने में असमर्थ रही। उल्फा के नेतृत्व में चलाये जा रहे अलगाववादी आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया था। अतः चन्द्रशेखर सरकार ने असम सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। जून 1991 के चुनावों में असम गण परिषद् को 121 में से 19 सीटें ही प्राप्त हुई और राज्य में कांग्रेस (ई) सत्तारूढ़ हो गई।

असम गण परिषद् के युवा नेता अपने पांच वर्ष के शासनकाल में जनता का विश्वास खोने लगे थे। वे भ्रष्टाचार के दलदल में फंसते गये। वे विदेशियों की समस्या को भूल गये, जिसके लिए छः वर्षों तक आन्दोलन किया था। असम गण परिषद् विभाजित हो गई और उसका करिश्मा लुप्त होने लगा।

1995 में असम गण परिषद् में पुनः एकता स्थापित हो गई और परिषद् ने विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लिया। 1996 के लोकसभा चुनावों में उसे 5 सीटें प्राप्त हुई और केन्द्र में युनाइटेड फ्रण्ट की मिलीजुली सरकार

में असम गण परिषद् के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा तथा 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में असम गण परिषद् को एक भी सीट हासिल नहीं हुई।

मई 2001 में सम्पन्न असम विधानसभा चुनावों में असम गण परिषद् को 126 सदस्यीय विधानसभा में केवल 20 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। मुख्यमन्त्री प्रफुल्ल कुमार स्वयं गुवाहाटी के दिसपुर निर्वाचन क्षेत्र से हार गये।

बहुजन समाज पार्टी (Bahujan Samaj Party)

बहुजन समाज पार्टी की स्थापना 14 अप्रैल, 1984 को पंजाब में जन्में कांशीराम ने डॉ० भीम राव अम्बेडकर के जन्म दिन के अवसर पर उत्तर प्रदेश में की। इस पार्टी की स्थापना में दो दबाव समूहों बामसैफ (BAMCEF – Backward and Minority Communities Employees Federation) और डी.एस.–4 (DS-4) ने मिलकर की थी। बहुजन समाज पार्टी जिसे बसपा कहा जाता है का पहला नाम डी.एस.–4 (DS-4) था, जिसका अर्थ है दलित, शोषित समाज, संघर्ष समिति (Dalit, Shoshit Samaj Sangharsh Samiti) यह पार्टी साहू महाराज, महात्मा फूले, महात्मा रामस्वामी नयनार, डॉ० भीमराव अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों के विचारों में आस्था रखते हैं। पार्टी के संस्थापक और वर्तमान अध्यक्ष कांशीराम के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन–जातियों शैक्षणिक ताकि सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग अल्पसंख्यक कारीगर और वे भी सारे दलित जिनता पूंजीपतियों ने शोषण किया है, बहुजन समाज है। बहुजन समाज पार्टी की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक नीतियाँ एवं कार्यक्रमों के प्रति सहमति रखने वाला कोई भी व्यक्ति पार्टी का सदस्य बन सकता है। यह पार्टी सामाजिक परिवर्तन की समर्थक है। इस पार्टी पर जाति विशेष के आधार पर संगठित होने का आक्षेप लगाया जाता है लेकिन यह पार्टी सभी कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व का दावा करती है। प्रारंभ में बहुजन समाज पार्टी का प्रभव केवल पंजाब तक ही सीमित था लेकिन धीरे–धीरे इसका प्रभाव देश के अन्य राज्यों विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा आदि में फैल गया। 1994 से यह दल भारतीय राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित कर रहा है।

बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता (Recognition of Bahujan Samaj Party as National Political Party)

चुनाव आयोग ने 28 नवम्बर 1997 को बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। चुनाव आयोग के निर्णय के अनुसार बहुजन समाज पार्टी के रूप में असम, सिक्किम और पांडिचेरी को छोड़कर सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में अपने चुनाव चिन्ह 'हाथी' का प्रयोग कर सकेगी।

पार्टी का चुनाव निशान और झण्डा (Election Symbol and Flag of the Party)

बहुजन समाज पार्टी को चुनाव आयोग ने हाथी का चुनाव चिन्ह प्रदान किया है। लेकिन, पार्टी इस चुनाव चिन्ह का प्रयोग असम, सिक्किम और पांडिचेरी में नहीं कर सकेंगी। पार्टी का झण्डा नीले रंग का है जिस पर हाथी का निशान है।

पार्टी के पदाधिकारी (Office Bearers of the Party)

बहुजन समाज पार्टी के वर्तमान अध्यक्ष कांशीराम हैं और सुश्री मायावती इसकी उपाध्यक्षा है। अरविन्द नेताम तथा तीन अन्य पार्टी के महासचिव है।

बहुजन समाज पार्टी की नीतियाँ और कार्यक्रम (Policies and Programmes of Bahujan Samaj Party)

बहुजन समाज पार्टी का उद्देश्य बहुजन समाज को समानता व न्याय की अधिकार दिलाना है। पार्टी संविधान निर्माता

डॉ० भीम राव अम्बेडकर के द्वारा दलितों के उद्धार के लिए चलाए गए संघर्ष को आगे बढ़ाने में विश्वास करती है। पार्टी दलितों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों तथा पिछड़े वर्गों के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक विकास के लिए अपनी वचनबद्धता रखती है। बहुजन पार्टी की नीतियों और कार्यक्रमों का वर्णन इस प्रकार है :–

1. **सामाजिक कार्यक्रम (Social Programme)**– बहुजन समाज पार्टी महात्मा फूले, महात्मा रामास्वामी नयनार, डॉ० भीम राव अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों की विचारधारा में विश्वास रखती है। बसपा दलित वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के सामाजिक न्याय दिलाने के लिए वचनबद्ध है। इस पार्टी का सामाजिक कार्यक्रम निम्नलिखित हैं–

   (i) छुआछूत को समाप्त करना और छुआछूत का पालन करने वालों के विरूद्ध कठोर कानूनी कार्यवाही करना।

   (ii) धर्म, जाति, जन्म, नस्ल आदि के आधार पर किये जा रहे भेदभाव को समाप्त करना।

   (iii) दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक शोषण को समाप्त करना।

   (iv) दलितों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए विशेष योजनाओं को लागू करना।

   (v) दलित वर्गों तथा पिछड़े वर्गों की स्त्रियों की स्थिति में सुधार करना तथा इसके लिए विशेष योजनाओं का निर्माण करना और उन्हें लागू करना।

   (vi) मनुवादी तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करना।

   (vii) डॉ० भीमराव अम्बेडकर के नाम पर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना।

   (viii) दलित वर्गों के विद्यार्थियों के लिए तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध करना।

   (ix) दलितों को प्रशासन में उचित प्रतिनिधित्व देना।

   (x) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के विकास के लिए विभिन्न आयोग गठित करना।

2. **राजनीतिक कार्यक्रम (Political Programme)**– बहुजन समाज पार्टी अवसरवादी राजनीति में विश्वास करती है। इसलिए इस पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम स्पष्ट व निश्चित नहीं है। पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम अग्रलिखित प्रकार से है :

   (i) 12वीं और 13वीं लोकसभा के अवसर पर अनेक स्थानों पर जनसभाओं को सम्बोधित करते हुए पार्टी अध्यक्ष कांशीराम ने कहा था, ''हम अवसरवादी राजनीति करते हैं। हमारा लक्ष्य देश में चलती फिरती मजबूत सरकार देखना है ताकि जल्दी चुनाव हों। अब सत्ता उच्च जाति के लोगों के हाथ से निकल कर हमारे दलित हाथों में आनी चाहिए।'' सितम्बर–अक्तूबर 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव प्रचार के दौरान भी कांशीराम ने कहा था कि ''हम मजबूत नहीं मजदूर सरकार देखना चाहते हैं।'' कांशीराम के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि बसपा का राजनीतिक लक्ष्य केवल सत्ता हथियाना है।

   (ii) बहुजन समाज पार्टी वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में विश्वास रखती है और इसमें लोकतान्त्रिक साधनों द्वारा परिवर्तन लाने के पक्ष में है।

   (iii) पार्टी मजबूत केन्द्र के पक्ष में है।

(iv) लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए चुनाव प्रणाली में सुधार किया जाए।

(v) प्रशासनिक तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए कड़ी कानूनी कार्यवाही करने तथा जनमत को जागृत करने पर जोर दिया जाएगा।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को संवैधानिक तरीकों से हल किया जाना चाहिए।

3. **आर्थिक कार्यक्रम (Economic Programme)** : बसपा का आर्थिक कार्यक्रम अथवा नीतियाँ इस प्रकार हैं:–

(i) उत्पादन के साधनों पर थोड़े से व्यक्तियों के स्थान पर बहुजन समाज का नियन्त्रण स्थापित करना।

(ii) दलितों तथा गरीबों को जमींदारों, साहूकारों तथा रजवाड़ों के शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए विशेष प्रयास करना।

(iii) ऐसी अर्थव्यवस्था की स्थापना करना जिसके अन्तर्गत आर्थिक शोषण न किया जा सके।

(iv) भूमिहीन किसानों और छोटे किसानों की स्थिति में सुधार करने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाना तथा उसे लागू करना।

(v) बेरोजगारी को दूर करने के लिए तथा रोजगार के अधिक अवसर पैदा करने के लिए उद्योगों की स्थापना करना।

(vi) बाल श्रम को समाप्त करना।

(vii) सार्वजनिक क्षेत्र को सुदृढ़ व शक्तिशाली बनाना।

(viii) लघु तथा कुटीर उद्योगों का विस्तार करना।

(ix) देश के भौतिक साधनों तथा प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग इस ढंग से करना ताकि समस्त समाज की भलाई हो।

(x) देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए योजनाओं को अधिक अच्छे ढंग से लागू करना।

विदेश नीति (Foreign Policy)– बहुजन समाज पार्टी गुटनिरपेक्ष नीति का समर्थन करती है और सभी पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के पक्ष में है।

चुनाव सफलताएँ (Election Successes)– बहुजन समाज पार्टी ने दलितों के दबाव समूह के रूप में भारतीय राजनीति में पदार्पण किया था। इस पार्टी का तीव्रता से विकास हुआ और उसका प्रभाव यह है कि यह पार्टी आज राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। इस पार्टी की पकड़ समाज के दलित वर्ग पर है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के अधिकांश मतदाता जो पहले कांग्रेस पार्टी के समर्थक थे अब इस पार्टी के समर्थक बन गए हैं। इसलिए इस पार्टी के विकास से कांग्रेस पार्टी के समर्थक बन गए हैं। इसलिए इस पार्टी के विकास से कांग्रेस को धक्का लगा है क्योंकि कांग्रेस के एक बड़े वोट बैंक पर बसपा का कब्जा हो गया है।

बहुजन समाज पार्टी ने 1985 में पहली बार पंजाब विधानसभा की सभी सीटों के लिए चुनाव लड़ा। परन्तु उसे कोई भी सीट नहीं मिली। 1989 के लोकसभा चुनाव में पार्टी ने पंजाब में 1 सीट प्राप्त की और 1992 में पंजाब विधानसभा के चुनाव में 12 सीटें प्राप्त की। 1989 में बहुजन समाज पार्टी ने समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर

समाजवादी पार्टी के नेता मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में सरकार बनाई। 3 जून 1995 को बहुजन समाज पार्टी की नेता कुमारी मायावती भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से उत्तर–प्रदेश की मुख्यमन्त्री बनी। मायावती के नेतृत्व वालद सरकार 16 अक्तूबर 1995 तक चली।

मई–जून, 1996 के 10वीं लोकसभा के चुनाव में बहुजन समाज पार्टी को 3 स्थान प्राप्त हुए। बहुजन समाज पार्टी ने 1996 का दसवीं लोकसभा का चुनाव शिरोमणि अकाली दल के साथ मिलकर लड़ा था।

इन चुनावों के बहुजन समाज पार्टी को 12 सीटें प्राप्त हुई। मार्च, 1977 में इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ मिलकर कुमारी मायावती के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में तीसरी बार सरकार बनाई। इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ समझौता किया था कि दोनों पार्टियों में से प्रत्येक का नेता छः माह की अवधि के लिए मुख्यमन्त्री बनेगा। समझौते के अनुसार 20 सितम्ब्र, 1997 को मुख्यमन्त्री मायावती ने अपने पद से त्याग–पत्र दे दिया और उसके स्थान पर भारतीय जनता पार्टी के नेता कल्याण सिंह उत्तर–प्रदेश के मुख्यमन्त्री बने। यद्यपि कल्याण सिंह की सरकार में बहुजन समाज पार्टी के कई सदस्यों को सम्मिलित किया गया था, लेकिन फिर भी बहुजन समाज पार्टी ने कल्याण सिंह की सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। इसके परिणामस्वरूप बहुजन समाज पार्टी में फूट पड़ गई और इसके 12 विधायकों ने कल्याण सिंह सरकार को समर्थन दिया।

बहुजन समाज पार्टी को 1997 को पंजाब विधानसभा चुनावों में कोई खास सफलता नहीं मिल सकी। पार्टी को केवल 1 सीट ही मिल सकी। फरवरी–मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनावों में बहुजन समाज पार्टी ने पंजाब में कांग्रेस के साथ हरियाणा में हरियाणा लोकदल (राष्ट्रीय) के साथ मिलकर चुनाव लड़ा। इन चुनावों में पार्टी को केवल 5 सीटें ही मिल पाई तथा यहाँ तक कि पार्टी अध्यक्ष कांशीराम स्वयं भी चुनाव हार गए। 1999 में हुए 13वीं लोकसभा के चुनावों में बसपा को 14 सीटें प्राप्त हुई। 13वीं लोकसभा के साथ हुए पांच राज्य – कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, अरूणाचल प्रदेश और सिक्किम विधानसभाओं में भी बसपा को कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन चुनावों में यद्यपि इस पार्टी को लोकसभा में अधिक सीटें नहीं मिल सकी, लेकिन पंजाब, हरियाणा, उत्तर–प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में इसको प्राप्त वोटों का प्रतिशत काफी ज्यादा था। इस पार्टी को अवसरवादिता, कांशीराम की हठधर्मिता तथा पार्टी का अस्थिरता का नारा पार्टी को कम सीटें दिलाने के लिए उत्तरदायी है।

यद्यपि बहुजन समाज पार्टी की सफलताएँ कोई ज्यादा उल्लेखनीय नहीं है फिर भी इस पार्टी का भारतीय राजनीति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस पार्टी का महत्व इस बात में है कि इसने वर्षों से दलित, शोषित, पीड़ित तथा अपमान सहने वाले उस समाज में एक नई जागृति पैदा की है, जिसके लिए गांधी जी तथा अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों ने पूरा जीवन लगा दिया।

अन्य राज्यों में क्षेत्रीय और राज्य स्तर के दलों के परिदृश्य (The Phenomenon of Regional or State Parties in Other States)

क्षेत्रीय दलों में विशाल हरियाणा राज्य में एक समय अपना अच्छा प्रभाव रखती थी और जून 1977 के हरियाणा विधानसभा चुनावों में इसने 4 स्थान प्राप्त किये। बंसीलाल के नेतृत्व में बनी हरियाणा विकास पार्टी हरियाणा का एक क्षेत्रीय दल है। 11वीं लोकसभा चुनाव तथा हरियाणा विधानसभा चुनाव (1966) में इस पार्टी ने भाजपा के साथ गठबन्धन स्थापित किया और इस गठबन्धन से दोनों दलों को लाभ हुआ। महाराष्ट्रवादी गोमांतक दल का गोवा में प्रभाव है। वहाँ यह दल सत्ता में भी रहा है। मार्च 1977, में इसने लोकसभा में एक सीट जीती। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ

इण्डिया का प्रभाव महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पंजाब में है। इसका एकमात्र ध्येय अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करना है। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में इस दल को 4 स्थान प्राप्त हुए।

केरल राज्य अन्य राज्यों की तुलना में बहुत छोटा है पर वहाँ बहुत–सी क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं। कांग्रेस नाम से कम से कम चार पार्टियाँ हैं – कांग्रेस (आई), कांग्रेस (एस), केरल कांग्रेस (मणिगुट) और केरल कांग्रेस (जीजेफ गुट)। कम्युनिस्ट पार्टी के नाम से दो पार्टियाँ हैं। इसी प्रकार मुस्लिम लीग के नाम पर दो दल हैं। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर जितने दल केरल में है, उतने किसी अन्य राज्य में नहीं। कर्नाटक में स्वर्गीय देवराज अर्स ने कांग्रेस गतिविधियों से निराश होकर 'क्रान्तिरंगा' की स्थापना की। जनवरी 1983 के कर्नाटक विधानसभा चुनावों में जनता–क्रान्तिरंगा गठबन्धन को 224 सीटों में से 95 स्थान मिले।

मेघालय की तीन प्रमुख क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं – आल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेंस, हिल स्टेट डेमोक्रेटिक पार्टी तथा हिल्स पीपुल यूनियन मेघालय की तीनों क्षेत्रीय पार्टियाँ स्थानीय स्वायत्तता की मांग तो अवश्य करती हैं, पर वे देश की एकता व अखण्डता का विरोध नहीं करती। 2 मार्च 1983 को इन दोनों पार्टियों ने मिलकर लिंगदोह के नेतृत्व में एक मिली–जुली सरकार बनायी जो सिर्फ एक महीना चल पायी। इस समय मणिपुर में कई प्रादेशिक दल विद्यमान हैं, जैसे मणिपुर हिल यूनियन (M.H.U.), कूकी नेशनल एसेम्बली (Kuki National Assembly), मणिपुर जनमुक्ति सेना पूरी तरह से आतंकवादियों के नियन्त्रण में है और यह देश की एकता के लिए एक बड़ा खतरा है। नागालैण्ड में इस समय कई प्रादेशिक दल सक्रिय हैं, जिस नागा नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी (Naga National Democractic Party), यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रण्ट (United Democretic Front) तथा नागा नेशनल काउन्सिल (Naga National Council), त्रिपुरा में एक प्रमुख प्रादेशिक दल 'त्रिपुरा उपजाति युवा समिति' है। कांग्रेस (आई) ने 1983 के विधानासभा चुनावों के लिए इस पार्टी के साथ गठबन्धन किया था। मिजोरम में भी कई प्रादेशिक दल विद्यमान हैं, जिनमें पीपुल्स कांफ्रेंस (People's Conference) तथा मिजो यूनियन पार्टी (Mizo Union Party) उल्लेखनीय हैं। ये दोनों दल पूर्णतया राष्ट्रवादी हैं। यहाँ पिछले 15 वर्षों से 'मिजो नेशनल फ्रण्ट' भी सक्रिय है। लाल डेंगा के नेतृत्व में इतने हिंसा तथा तोड़फोड़ की नीति अपनायी थी। परन्तु, जून 1986 में एक समझौता हुआ, जिसके तहत मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिये जाने का आश्वासन दिया गया। फरवरी 1987 में मिजोरम भारत का 23वां राज्य बना और विधानसभा चुनावों में मिजो नेशनल फ्रण्ट को पूर्ण बहुमत मिला और उसके नेता लाल डेंगा ने राज्य की बागडोर संभाली।

2.4.8 निष्कर्ष

कांग्रेस के कमजोर होने से क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। शिव सेना, तेलगूदेशम्, अन्ना द्रमुक, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, लोकशक्ति, तृणमूल कांग्रेस, बीजू जनता दल जैसे दल आज भी अपने–अपने प्रभाव वाले राज्यों में राज्य राजनीति की प्रमुख धुरी हैं। भारत में राजनीतिक दल राजनीतिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। भारत में करीब 2300 से अधिक पार्टियाँ होने के बावजूद केवल 8 राष्ट्रीय पार्टियाँ हैं। 1980 के दशक के बाद से बहु–दलीय प्रणाली के बाद देश में गठबंधन की सरकारों का दौर चला है जो केन्द्र एवं राज्य दोनों में मौजूद है। क्षेत्रीय पार्टियाँ चुनावी राजनीति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

2.4.9 मुख्य शब्दावली

- दलीय व्यवस्था
- अवसरवादिता

- दल–बदल
- अल्पसंख्यक
- मार्क्सवादी
- क्षेत्रीय
- विदेश नीति

2.4.10 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. भारत में चुनाव आयोग द्वारा वर्णित विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रकार क्या है?
2. क्षेत्रीय दलों के गठन के पीछे कौन–कौन से कारण है? इनमें से एक क्षेत्रीय दल/पार्टी के संदर्भ में वर्णन कीजिए।
3. भारत के संदर्भ में 'एक–दलीय प्रभुत्व बनाम बहु–दलीय प्रणाली' से आप क्या समझते हैं?
4. गठबंधन सरकार से आप क्या समझते हैं और 1980 के बाद गठबंधन सरकारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2.4.11 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.

- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

इकाई–3

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Qustions)

निम्न में से सही उत्तर का चयन कीजिए।

1. भारत में संविधान की मांग सबसे प्रथम बार किस वर्ष में की गई थी।

(क) 1920 (ख) 1922

(ग) 130 (घ) 1946

2. ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के लिए संविधान–सभा की मांग को किस वर्ष में स्वीकृत किया था?

(क) 1940 (ख) 1942

(ग) 1946 (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. संविधान–सभा जिसने स्वतंत्र भारत के लिए संविधान निर्मित किया, किस वर्ष में बनी थी।

(क) 1946 (ख) 1947

(ग) 1949 (घ) 1950

4. भारत का संविधान किस वर्ष स्वीकृत किया गया?

(क) 9 दिसम्बर, 1946 (ख) 15 अगस्त, 1949

(ग) 25 नवम्बर, 1949 (घ) 26 जनवरी, 1950

5. निम्न दलों में से भारत क संविधान–सभा में किसको प्रतिनिधत्व नहीं मिला था?

(क) अखिल भारतीय कांग्रेस (ख) हिन्दू महासभा

(ग) अनुसूचित जाति संघ (घ) साम्यवादी दल

6. संविधान–सभा के स्थायी अध्यक्ष निम्न में से कौन थे?

(क) डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (ख) पं. जवाहरलाल नेहरू

(ग) सरदार पटेल (घ) डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

7. सवंधान–सभा में निम्न में से निर्णय लेने की किस प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया था?

(क) सहमति से निर्णय (ख) समायोजन का सिद्धांत

(ग) सर्व–सम्मति से निर्णय (घ) बहुमत से निर्णय

8. निम्न में से संविधा–सभा में कौन–सा निर्णय सहमति द्वारा नहीं लिया गया था?

(क) संघीय ढाँचा (ख) भाषायी प्रावधान

(ग) अल्पसंख्यक विषय (घ) गणतन्त्रीय व्यवस्था

9. समायोजन के सिद्धांत के द्वारा संविधान–सभा में निम्न मेंसे कौन–से विषय का निर्णय नहीं लिया गया था?

(क) संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था के मध्य समन्वय

(ख) गणतन्त्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्रमण्डल की सदस्यता

(ग) केन्द्रीयकरण के साथ विकेन्द्रीयकरण की व्यवस्था

(घ) उपर्युक्त दिये गए सभी विषय

10. भारत का संविधान निर्मित किया गया।

(क) भारत की संविधान सभा द्वारा   (ख) भारतीय ससंद द्वारा

(ग) ब्रिटिश संसद द्वारा   (घ) ब्रिटिश ताज द्वारा

11. भारत का संविधान एक है।

(क) मौलिक संविधान   (ख) व्यावहारिक संविधान

(ग) आदर्शवादी संविधान   (घ) समाजवादी संविधा है

12. भारत के संविधान पर निम्न में से किसका प्रभाव नहीं है?

(क) सोवियत संघ   (ख) ग्रेट ब्रिटेन

(ग) संयुक्त राज्य अमेरिका   (घ) कनाडा

13. ब्रिटेन के संवधान की निम्न में से कौन–सी संस्था भारत के संविधान में नहीं अपनाई गई है :

(क) संसदीय शासन   (ख) कानून का शासन

(ग) एकात्मक शासन   (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

14. भारतीय सवंधिान में कितने अनुच्छेद हैं?

(क) 395   (ख) 7

(ग) 246   (घ) 151

15. भारत में नेहरू रिपोर्ट का प्रकाशन कब हुआ था?

(क) 1927   (ख) 1928

(ग) 1930   (घ) 1932

16. भारतीय संविधान में 1993 तक कितने संशोधन हो चुके हैं?

(क) 50   (ख) 64

(ग) 62   (घ) 77

17. संविधान के अनुसार संघ राज्यों का विभाजन किस राज्य के संविधान के अनुसार हुआ है?

(क) अमेरिका (ख) स्विटजरलैण्ड

(ग) आस्ट्रेलिया (घ) कनाडा

18. "भारत का संविधान विश्व का सबसे विस्तृत संविधान है।" यह कथन किसका है?

(क) सर आइवर जैनिंग्स (ख) डॉ. एम.पी. शर्मा

(ग) के.एम. मुन्शी (घ) के. सन्थानम

19. भारत के संविधान के कितने अनुच्छेद हैं?

(क) 395 (ख) 404

(ग) 402 (घ) 174

20. निम्न में भारत के संविधान के आधार–भत सिद्धांत हैं:

(क) लोक–प्रभुसत्ता (ख) मौलिक अधिकार

(ग) संघीय शासन (घ) ऊपर के तीनों

21. भारत की प्रस्तावना द्वारा भारत को घोषित किया गया है:

(क) प्रभुसत्तासम्पन्न, समाजवादी, गणराज्य (ख) प्रभुसत्तासम्पन्न, लोकतंत्रीय, गणराज्य

(ग) प्रभुसत्तासम्पन्न, समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, लोकतंत्रीय गणराज्य
(घ) एक समाजवादी राज्य

22. भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लेख है

(क) सामाजिक न्याय का (ख) आर्थिक न्याय का

(ग) राजनीतिक न्याय का (घ) ऊपर के तीनों का

23. भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लेख नहीं है :

(क) न्याय का (ख) स्वतंत्रता का

(ग) समानता का (घ) लोक–कल्याणकारी का

24. भारत की संविधान–सभा ने संविधान को किस तिथि को स्वीकार किया?

(क) 15 अगस्त, 1947 को (ख) 26 नवम्बर, 1949 को

(ग) 26 जनवरी, 1950 को (घ) 1946 को

25. भारत के संविधान में कितने अनुच्छेद हैं?

(क) 395 (ख) 404

(ग) 402 (घ) 174

26. 1993 तक भारतीय संविधान में कितने संशोधन हो चुके हैं?

(क) 65 (ख) 70

(ग) 72 (घ) 77

27. भारत में 61वें संशोधन के अनुसार मतदान की आयु कितनी निश्चित की है?

(क) 18 वर्ष (ख) 20 वर्ष

(ग) 21 वर्ष (घ) 25 वर्ष

28. संसार में सबसे विस्तृत संविधान किस राज्य का है?

(क) ग्रेट ब्रिटेन (ख) कनाडा

(ग) आस्ट्रेलिया (घ) भारत

29. भारत का संविधान एक :

(क) अलिखित संविधान है (ख) लिखित संविधान है

(ग) लिखित और निर्मित संविधान है (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

30. भारत में कौन–सी शासन–प्रणाली अपनाई गई है?

(क) संसदीय (ख) अध्यक्षात्मक

(ग) तानाशाही (घ) राजतंत्र

31. भारतीस संविधान में मताधिकार का आधार क्या है?

(क) करदेयता (ख) आयु

(ग) शिक्षा (घ) सम्पत्ति

32. भारत की राष्ट्र–भाषा कौन–सी है?

(क) अंग्रेजी (ख) हिन्दी

(ग) बंगाली (घ) मराठी

33. भारतीय संविधान में कुल कितनी अनुसूचियाँ हैं?

(क) 7 (ख) 8

(ग) 9 (घ) 10

34. संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों का विचार निम्न देशों के संविधानों में से किस से लिया है?

(क) संयुक्त राज्य अमेरिका (ख) ग्रेट ब्रिटेन

(ग) फ्रांस (घ) सोवियत संघ

35. भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन किस भात में किया गया है?

(क) पहले भाग में (ख) दूसरे भाग में

(ग) तीसरे भाग में (घ) चौथे भाग में

36. भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन कितने अनुच्छेदों में किया गया है?

(क) 20 (ख) 22

(ग) 23 (घ) 24

37. निम्न में से कौन–सा अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है?

(क) समानता का अधिकार (ख) काम का अधिकार

(ग) स्वतंत्रता का अधिकार (घ) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

38. निम्नलिखित अधिकारों में से किस मौलिक अधिकार को डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने 'संविधान की आत्मा' का है?

(क) स्वतंत्रता का अधिकार (ख) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

(ग) सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (घ) संवैधानिक उपचारों का अधिकार

39. शोषण के विरूद्ध अधिकार के दुर्बल वर्गों की रक्षा किस प्रकार करता है?

(क) सार्वजनिक हित में अनिवार्य सेवा (ख) कर्मचारियों को न्यूनतम वेतन

(ग) मानव व्यापार तथा बेगार का निषेध (घ) उपर्युक्त में कोई नहीं

40. निम्नलिखित आदेशों में से कौन–सा न्यायालय द्वारा गैर–कानूनी ढंग से नजरबन्द किए गए व्यक्ति को छोड़ने के लिए दिया जाता है?

(क) बन्दी प्रत्यक्षीकरण (ख) परमादेश

(ग) उत्प्रेषण लेख (घ) अधिकार पृच्छा

41. निम्न में से किस आदेश के द्वारा किसी व्यक्ति को उस कार्यवाही को करने से रोक दिया जाता है, जिसके लिए वह कानूनी रूप से उपयुक्त नहीं है?

(क) परमादेश (ख) प्रतिषेध

(ग) उत्प्रेषण लेख (घ) अधिकार पृच्छा

42. भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों के पीछे किसकी स्वीकृति हैं?

(क) स्वतंत्र न्यायपालिका (ख) संसद

(ग) जनमत (घ) संविधान

43. भारतीय संविधान के अनुसार मौलिक अधिकारों को कब स्थागित किया जा सकता है?

(क) लोकसभा के चुनावों के समय (ख) राष्ट्रीय संकटकालीन स्थिति में

(ग) राज्य में संविधान के असफल होने पर (घ) उपर्युक्त में से किसी में नहीं

44. भारत में मौलिक अधिकारों को स्थापित करने का आदेश किसके द्वारा दिया जाता है?

(क) संसद के प्रस्ताव द्वारा

(ख) संघीय मन्त्रि–परिषद् की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा

(ग) संसद की स्वीकृति पर राष्ट्रपति द्वारा

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

45. सम्पत्ति का अधिकार जो मूल संविधान द्वारा दिया गया था, वह किस संशोधन के अनुसार मौलिक अधिकार नहीं रहा।

(क) 42 वें (ख) 43 वें

(ग) 44 वें (घ) 45 वें

46. संविधान में 'स्वतंत्रता का अधिकार'का वर्णन किन धाराओं में किया गया है?

(क) 19से 22 (ख) 14से 18

(ग) 22 से 25 (घ) उपर्युक्त में से किसी में नहीं

47. संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों का वर्णन किन अनुच्छेदों में किया गया है?

(क) 50 (ख) 51

(ग) 51–A (घ) 52

48. संविधान में मौलिक कर्त्तव्य का उल्लेख किस भाग में है?

(क) 40 वें (ख) 41 वें

(ग) 42 वें (घ) 33 वें

49. संविधान में मौलिक कर्त्तव्य का उल्लेख किस भागमें है?

(क) पहले भाग में (ख) दूसरे भाग में

(ग) तीसरे भाग में (घ) चौथे भाग में

50. संविधान–निर्माताओं ने भारतीय संविधान में राजनीतिक के निर्देशक सिद्धांतों का किन विदेशी राज्य के अनुसार ग्रहण किया है?

(क) आयरिश गणतन्त्र राज्य (ख) संयुक्त राज्य अमेरिका

(ग) ग्रेट ब्रिटेन (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

51. भारतीय संविधान के निम्नलिखित में से किस भाग में राजनीति के निर्देशक सिद्धांतों का उल्लेख है?

(क) संविधान का पहला भाग (ख) संविधान का तीसरा भाग

(ग) संविधान का चौथा भाग (घ) संविधान का पांचवा भाग

52. राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों का संविधान की किन धाराओं में उल्लेख किया गया है?

(क) संविधान की धारा 2 से लेकर 16 तक

(ख) संविधान की धारा 14 से 35 तक

(ग) संविधान की धारा 36 से 51 तक

(घ) संविधान की धारा 51–I

53. निम्न में से किसने नीति–निर्देशक सिद्धांतों को संविधान की अनोखी विशेषता कहा है?

(क) श्री वी.एन. राय (ख) पंडित जवाहर लाल नेहरू

(ग) डॉ. अम्बेडकर (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

54. निम्न में से नीति–निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य कौन–सा है?

(क) पुलिस राज्य की स्थापना करना।

(ख) सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना।

(ग) राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना करना।

(घ) समाजवादी राज्य की स्थापना करना।

55. निम्नलिखित में से कौन–सा सिद्धांत गांधीवादी सिद्धांत है?

(क) ग्रामीण पंचायतों और स्वशासन की स्थापना

(ख) स्त्री तथा पुरूषों को समान कार्य के लिए समान वेतन

(ग) देश के सभी नागरिकों के लिए आचार संहित

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

56. नीति–निर्देशक सिद्धांतों के पीछे निम्नलिखित में से कौन–सी शक्ति है?

(क) कानूनी शक्ति (ख) जनमत की शक्ति

(ग) न्यायलय की शक्ति (घ) उपर्युक्त में सेकोई नहीं

57. नीति–निर्देशक सिद्धांतों का लागू किया जाना, किस पर निर्भर करता है?

(क) स्वतंत्र न्यायपालिका पर (ख) शासन की इच्छा पर

(ग) शासन के पास साधन हाने पर (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

प्रश्न 1. भारतीय संविधान को किसने बनाया?

उत्तर : भारतीय संविधान को संविधान सभा ने बनाया।

प्रश्न 2. संविधान सभा प्रथम अधिवेशन कब और किसकी अध्यक्षता में हुआ?

उत्तर : संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के सबसे वयोवृद्ध सदस्य श्री सच्चिदानन्द सिन्हा की अध्यक्षता में हुआ।

प्रश्न 3. संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष कौन था?

उत्तर : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी सदस्य थे।

प्रश्न 4. भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए मसौदा समिति की स्थापना कब और किसकी अध्यक्षता में की गई थी?

उत्तर : मसौदा समिति की स्थापना 29 अगस्त 1947 को डा० बी० आर० अम्बेडकर की अध्यक्षता में की गई।

प्रश्न 5. ग्रानविल आस्टिन (Granville Austin) के अनुसार भारत के संविधान के निर्माण में कौन–सी दो प्रक्रियाएं अपनाई गई?

उत्तर : (i) सहमति से निर्णय, (ii) समायोजन का सिद्धांत।

प्रश्न 6. भारतीय संविधान के स्रोतों की मुख्य दो श्रेणी कौन–सी हैं?

उत्तर : (i) जन्म सम्बन्धी स्रोत, (ii) विकासवादी स्रोत।

प्रश्न 7. किस भारत सरकार अधिनियम की जन्म सम्बन्धी स्रोत में मुख्य भूमिका रही?

उत्तर : भारत सरकार अधिनियम, 1935।

प्रश्न 8. राज्य–नीति के निर्देशक सिद्धान्त किस देश के संविधान से लिए गए?

उत्तर : आयरलैण्ड के संविधान से।

प्रश्न 9. भारती सुप्रीम कोर्ट का कार्य तथा दर्जा किस देश के सुप्रीम कोर्ट जैसा है?

उत्तर : अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट जैसा।

प्रश्न 10. भारतीय संसदीय प्रणाली किस देश के संगठन से प्रभावित होकर ग्रहण की गई?

उत्तर : इंग्लैण्ड के संगठन से प्रभावित होकर।

प्रश्न 11. क्या प्रस्तावना भारतीय संविधान का भाग है?

उत्तर : नहीं, प्रस्तावना भारतीय संविधान का भाग नहीं है।

प्रश्न1 2. भारतीय संविधान के दो मुख्य लक्षण कौन से हैं?

उत्तर : (i) संघीय लक्षण, (ii) एकात्मक लक्षण।

प्रश्न 13. भारतीस संविधान में संघ और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे कितनी सूचियों में किए गए हैं?

उत्तर : तीन सूचियों में – (i) संघ सूची, (ii) राज्य सूची, (iii) समवर्ती सूची

प्रश्न 14. भारतीय संविधान की प्रस्तावना का विचार किस देश के संविधान से लिया गया?

उत्तर : प्रस्तावना का विचार अमेरिका के सवंधान से लिया गया।

प्रश्न 15. प्रस्तावना में 42वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत क्या बदलाव किया गया?

उत्तर : 42वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत प्रस्तावना में दो नए शब्द 'समाजवादी तथा धर्मनिरपेक्ष' जोड़े गए।

प्रश्न 16. मौलिक अधिकार क्या है?

उत्तर : ये वो अधिकार हैं जो एक व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक माने जाते हैं और यह अनुभव किया जाता है कि इन अधिकारों को प्रयोग किए बिना कोई व्यक्ति अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता।

प्रश्न 17. भारतीय संविधन के किस भाग में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है?

उत्तर : भारतीय संविधान में इन अधिकारों का वर्णन तीसरे भाग तथा अनुच्छेद 12 से 35 में किया गया है।

प्रश्न 18. आरम्भ में संविधान में कुल कितने मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया था?

उत्तर : आरम्भ में संविधान में कुल 7 मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया था तथा 44वें संविधान संशोधन में सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों से निकालने के बाद इनकी संख्या छः रह गई।

प्रश्न 19. किस स्थिति में मौलिक अधिकारों का निलम्बन हो सकता है?

उत्तर : संकट काल के दौरान मौलिक अधिकारों को निलम्बित किया जा सकता है।

प्रश्न 20. किस अनुच्छेद के अन्तर्गत संवैधानिक उपचारों का अधिकार दिया गया है।

उत्तर : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों का अधिकार दिया गया है।

प्रश्न 21. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का क्या उद्देश्य है?

उत्तर : इनका उद्देश्य हमारे देश में कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है।

प्रश्न 22. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त संविधान के किस भाग में उल्लेखित है?

उत्तर : इन सिद्धांतों का वर्णन संविधान के चौथे भाग में किया गया है।

प्रश्न 23. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों तथा मौलिक अधिकारों में क्या अन्तर है?

उत्तर : राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को न्यायापालिका द्वारा सुरक्षा प्रदान नहीं की गई है, परन्तु मौलिक अधिकार न्यायपालिका द्वारा सुरक्षित किए गए हैं।

प्रश्न 24. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को हम किन श्रेणियों में बांट सकते हैं?

उत्तर : (i) समाजवादी तथा आर्थिक सिद्धान्त

(ii) गांधीवादी सिद्धांत

(iii) उदारवादी सिद्धांत

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों सम्बन्धी सिद्धान्त

प्रश्न 25. कौन से निर्देशक सिद्धान्तों में भारतीय विदेश–नीति के कुछ मूल आधार मिलते हैं?

उत्तर : अनुच्छेद 51 में अंकित निर्देशक सिद्धान्त में।